In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

# भारतीय दर्शन एवं दिग्दर्शन

By
**Shripad Shastri Hasurkar**
(Nyaya-Vedanta-Meemamsa-teerth, Sankhyasagar
Panditratna, Ex. Principal, Sanskrit College
Indore)

NAG
PUBLISHERS

नाग पब्लिशर्स
११ ए/यू. ए. जवाहर नगर, दिल्ली-७

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

लेखकः प्रकाशकश्च—
न्यायतीर्थ, वेदान्ततीर्थ, मीमांसातीर्थ, सांख्यसागर
पण्डितरत्न श्रीपादशास्त्री हसूरकर
भूतपूर्व प्रिंसिपल, संस्कृत महाविद्यालय, इन्दौर

(अस्याः पुनर्मुद्रणानुवादलेखांशसंग्रहादिषु
सर्वथा ग्रंथकर्तुरेवाधिकारो नान्यस्य।)

मूल्यम् — ५० रु०

मुद्रक—
दि. रा. एकतारे, बी. ए.
सहकारी मुद्रणालय, इंदूर

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi

वजीर-उद्दौला, रायबहादुर, सर

**सिरेमल बापना**

के. टी., सी. आय्. ई., बी. ए., बी. एस् सी., एल् एल्. बी.

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

प्राइम् मिनिस्टर, इंदूर.

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

# अर्पण-पत्रिका

नरपतिहितकर्ता द्वेष्यतां याति लोके ।
जनपदहितकर्ता त्यज्यते पार्थिवेन ॥
इति महति विरोधे विद्यमाने समाने ।
नृपतिजनपदानां कार्यकर्ता य एषः ॥ १ ॥

विद्याविलासी विबुधानुरागी ।
क्षमा-दया-शान्ति-सुशील-शाली ॥
इन्दूरराज्यैकधुरंधरोऽसौ ।
श्रीबापनाख्यः सचिवश्चकास्ति ॥ २ ॥ (युग्म०)

स्मृत्वा तदीयं मयि वर्तमानं ।
गीर्वाणवाण्यां च परानुरागं ॥
अध्यात्मविद्यापथिकप्रदीपः ।
समर्प्यते तस्य करे प्रबंधः ॥ ३ ॥

विद्वदनुचरः,
श्रीपादशास्त्री.

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

वजीर-उद्दौला, रायबहादुर, सर

**सिरेमल बापना**

के. टी., सी. आइ. ई., बी. ए., बी. एस सी., एल एल. बी.

प्राइम् मिनिस्टर, इंदूर.

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

# अर्पण-पत्रिका

नरपतिहितकर्ता द्वेष्यतां याति लोके ।
जनपदहितकर्ता त्यज्यते पार्थिवेन ॥
इति महति विरोधे विद्यमाने समाने ।
नृपतिजनपदानां कार्यकर्ता य एषः ॥ १ ॥

विद्याविलासी विबुधानुरागी ।
क्षमा-दया-शान्ति-सुशील-शाली ॥
इन्दूरराज्यैकधुरंधरोऽसौ ।
**श्रीबापनाख्यः** सचिवश्चकास्ति ॥ २ ॥ (युग्म०)

स्मृत्वा तदीयं मयि वर्तमानं ।
गीर्वाणवाण्यां च परानुरागं ॥
अध्यात्मविद्यापथिकप्रदीपः ।
समर्प्यते तस्य करे प्रबंधः ॥ ३ ॥

विद्वदनुचरः,
**श्रीपादशास्त्री.**

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

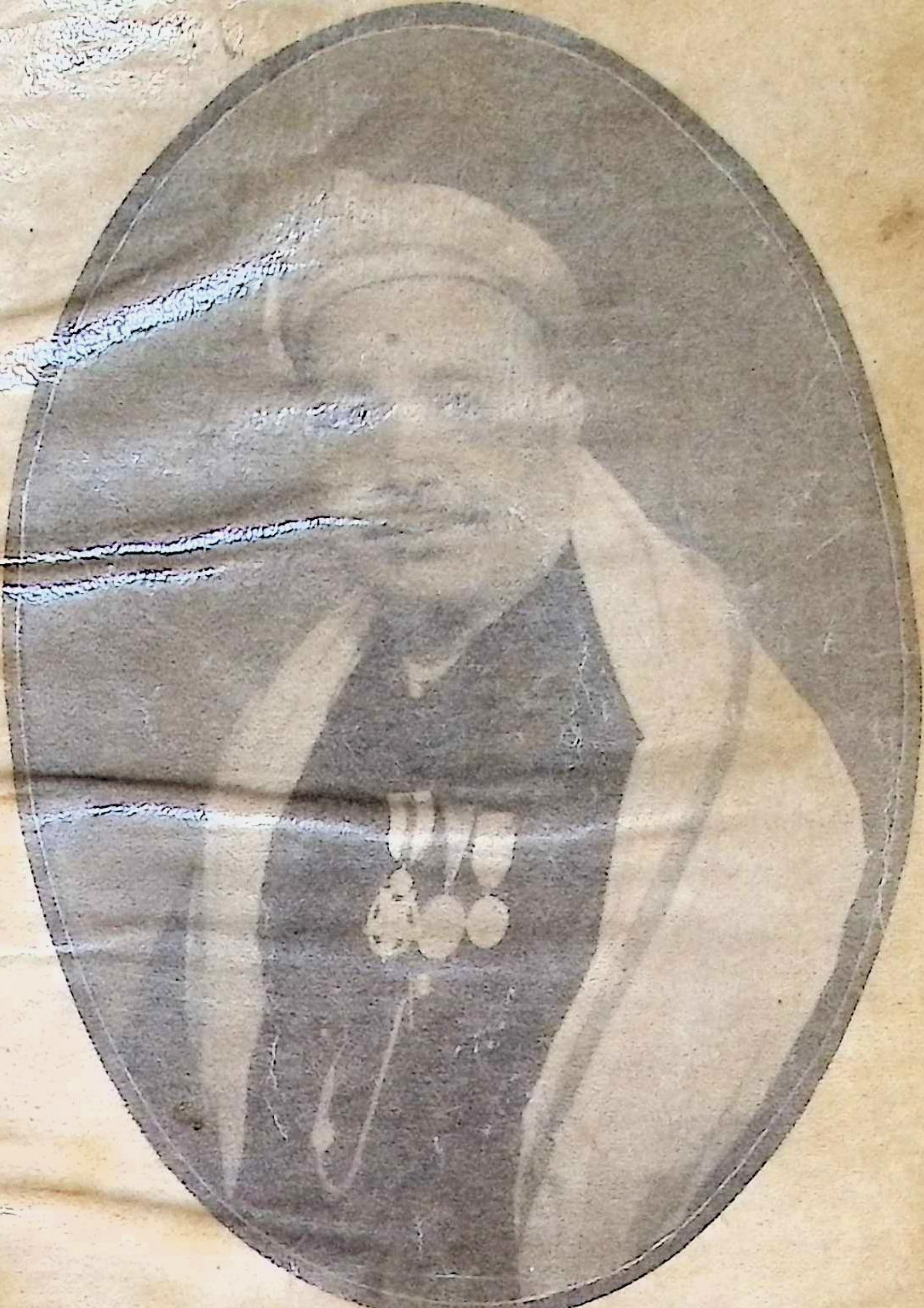

ग्रंथकर्ता

न्यायतीर्थ, वेदान्ततीर्थ, मीमांसातीर्थ, सांख्यसागर

**पण्डितरत्न श्रीपादशास्त्री हसूरकर**

प्रिन्सिपाल संस्कृत महाविद्यालय इंदूर.

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

**ग्रंथकर्ता**

न्यायतीर्थ, वेदान्ततीर्थ, मीमांसातीर्थ, सांख्यसागर

**पण्डितरत्न श्रीपादशास्त्री हसूरकर**

प्रिन्सिपाल संस्कृत महाविद्यालय इंदूर.

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

# विषयानुक्रमणिका

उपक्रमः-


| | | |
|---|---|---|
| १ | चार्वाकदर्शनम् | १–१२ |
| २ | वैभाषिकदर्शनम् | १४–२९ |
| ३ | सौत्रान्तिकदर्शनम् | ३१–३९ |
| ४ | योगाचारदर्शनम् | ४१–५५ |
| ५ | माध्यमिकदर्शनम् | ५७–६७ |
| ६ | जैनदर्शनम् | ६९–८३ |
| ७ | न्यायदर्शनम् | ८७–११५ |
| ८ | वैशेषिकदर्शनम् | ११७–१२७ |
| ९ | सांख्यदर्शनम् | १२९–१५१ |
| १० | योगदर्शनम् | १५३–१६२ |
| ११ | पूर्वमीमांसादर्शनम् | १६४–१७६ |
| १२ | उत्तरमीमांसादर्शनम् | १७९–२६७ |
| | तत्र–श्रीमध्वाचार्यमतम् | १७९–१९५ |
| | ,, श्रीरामानुजाचार्यमतम् | १९७–२०९ |
| | ,, श्रीवल्लभाचार्यमतम् | २११–२२९ |
| | ,, श्रीशंकराचार्यमतम् | २३१–२६७ |
| उपसंहारः | | २६८–२८७ |
| तत्र–समन्वयः | | २६८–२७५ |
| ,, तत्त्वज्ञानस्योपयोगः | | २७६–२८७ |
| दर्शनसोपानक्रमदर्शकं पत्रं— | | |


Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

# OPINION.

It has given me immense pleasure to go through the work, " Dwadasha Darsana Sopanawali ", by Pandit Ratna Shripad Shastri Hasoorkar. It appears to me to be the best modern introduction to Indian Philosophy in Sanskrit. It covers the entire field including not only the latest schools of Vedant but also Jainisum and Buddhisum. The salient features of each system are most impartially and clearly set forth. Even a lay reader can be profitted by a perusal with a little effort. Every page reveals the scholarly author's erudition and deep insight. His summing up at the end is admirable. His long experience as the teacher of various **Darsanas** at the Indore Sanskrit College has enabled him to make this masterly survey, which deserves to be in the hands of every student of Indian Philosophic thought. He is a Sanskrit Pandit of rare attainment.

**V. Subrahmanyam Iyer.**
**Vontikoppal Mysore.**

28-10-38

Formarly Precident of the board of Sanskrit studies & examinations in Mysore.

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

# शुद्धिपत्रम् ।

| पत्र | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| २५ | २३ | विद्यते | विद्येते |
| ३१ | २ | सौत्रांतिकमतं | सौत्रान्तिकदर्शनं |
| ३९ | १८ | प्रतिबिंबतेन | प्रतिबिंबितेन |
| ४३ | २४ | घटनिष्टं | घटनिष्ठं |
| ४७ | १३ | न ह्यन्यद्दृष्टं | न ह्यन्यदृष्टं |
| ५९ | ९ | तावद | तावत् |
| ६४ | १० | असत्त्वापर्यायं | असत्त्वापरपर्यायं |
| ७० | १६ | स्वीकार्यमपि | स्वीकार्यमेव |
| ९७ | १० | बहुनां | बहूनां |
| १०७ | २४ | ज्ञानोपार्त्ति | ज्ञानोत्पत्ति |
| १०८ | ८ | गुणवत्त्वेन | गुणत्वेन |
| १२० | १९ | पदार्थ स्वीक० | पदार्थः स्वीक० |
| १२७ | १० | प्रामण्यं | प्रामाण्यं |
| १२७ | २० | प्रमाण्यं | प्रामाण्यं |
| १३४ | १३ | पंचतन्मात्राणां | पंचतन्मात्राणामिन्द्रियाणां च |
| १३४ | १४ | षोडशविकाराणां | महाभूतानां |
| १४५ | १५ | द्वारा | द्वारेण |
| १६३ | १६ | प्रमाणपि | प्रमाणमपि |
| १६५ | १७ | पदाथः | पदार्थैः |
| १६८ | ६ | विषेशलक्षणं | विशेषलक्षणं |
| १८० | २० | परसत्त्व० | परस्वत्व० |
| १८१ | २ | सत्त्वाप० | स्वत्वाप० |
| २३३ | ११ | न चेदं | ननु चेदं |
| २३५ | ६ | न चेह | ननु चेह |
| २५९ | २० | शशशृंगवद० | शशशृंगपद० |
| २७९ | २० | न च | ननु |
| २८७ | २३ | सुषुप्तीश्च | सुषुप्तानि |
| ,, | ,, | साक्षिणा | साक्षिणा |

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

श्रीः ।

तताय वामनाख्याय ब्रह्मविद्यानुरागिणे ॥
सरस्वत्यै जनन्यै च नमोऽस्तु सततं मम ॥१॥
नित्यानन्दस्वरूपाय नामतो वृत्तितः स्वयम् ॥
नित्यानन्दाख्यचैतन्यरूपाय गुरवे नमः ॥२॥
क्वाहं मन्दमतिर्जीवः क्व च दर्शनसागरः ॥
तथापि तर्तुमिच्छामि गुरुश्रद्धैकनौकया ॥३॥

सकललोकविदितानां परमप्राचीनमुनिजनविहितग्रंथसुज्ञेयानां नास्तिकास्तिकभेदभिन्नानामेषां द्वादशदर्शनानां स्वरूपस्य निरूपणात् प्राक् कथमेषामुत्पत्तिरभूदिति प्राथमिकं किंचिद्विचारणीयमावश्यकं । येन विचारितेन तेषां स्वरूपं स्पष्टतया प्रतीतं भवेत् । अतोऽस्य विचारणाय प्रथममुपक्रम्यते—

## उपक्रमः ।

१ पशुप्रवृत्तेर्मानवप्रवृत्तेर्विशेषफलकत्वं ।

२ तस्मिन्नपि गौणमुख्यविचारः ।

३ दर्शनशब्दार्थः । सर्वदर्शनमूलभूता विचारविषयाः पदार्थाः ।

१

इह सकललोकप्रत्यक्षे, विविधमतिमन्नानाविधप्रवृत्तिव्याप्ते, कामक्रोधादिजनकवासनाजालभयंकरे, परमविस्मयजनकालौकिकवैचित्र्यास्पदे संसारे लब्धजन्मा जन्तुः स्वस्थचित्तः स्वयमेव विचारयति—एते हि मादृशा जीवाः सततं घोरासु तमस्विनीषु रात्रिषु धारासंपातं तथा

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

प्राणहरं विद्युत्पातमपि अगणयित्वा स्वस्वकर्मसु प्रवर्तन्ते। एषां प्रवृत्तिः किं-फला? इत्थं विचार्यमाणे प्रथमत इदमाभाति। एतेषां सर्वेषां प्रवृत्तिः केवलं स्वेन्द्रियतृप्त्यर्था न ततोऽपि विशेषफलेति। तथाहि। कृषीवलाः सततं क्षेत्रेषु वर्षाकाले बीजवापार्थं प्रयतन्ते। तेषामिदमेवैकं कांक्षितं यत् वयमनेन कर्मणा प्रभूतं धान्यं समुत्पाद्य स्वदेहपालनं करिष्याम इति। सर्वथा सर्वेषामेषां प्रवृत्तेः फलं स्वदेहपरिपालनं, स्वेन्द्रियपरितृप्तिः, क्वचिच्च स्वकुटुंबस्य परिरक्षणं फलमिति भाति। नातःपरं किमपि विशेषफलं। युक्तमेवेदं। यथा हि पशवो घोरा अघोरा वा दुर्बलाः सबला वा स्वस्वशक्तिमनुसृत्य स्वेन्द्रियतृप्त्यर्थं प्रयतन्ते, तथैव बुद्धिमन्तोऽबुद्धिमन्तोऽपि जीवा इति नास्ति कोऽपि विशेष इति। आपातत इदं सत्यमिवाभाति परन्तु विचार्यमाणे मानवानां प्रवृत्तेः फलविशेषेण भाव्यमिति बुद्धिपथमापतति। तथाहि। मानवो हि सर्वेभ्यः प्राणिभ्यो बुद्धिमानित्यत्र न कस्यापि संदेहः। इह जगतीतलेऽ-गणितानि एतादृशानि कार्याणि तैस्तैर्मानवरत्नैः कृतानि परिदृश्यन्ते यानि पशवो हि मनसाऽपि कल्पयितुं न शक्नुवन्ति। तेषु च सर्वेषु कार्येषु समाजव्यवस्थाकार्यं तथा कुटुंबव्यवस्थाकार्यं चानन्यसाधारणमिति मन्ये। यद्यपि केषुचिद्वानरादिषु प्राणिषु संघीभूयावस्थानं परिदृश्यते परन्तु न तेषु कुटुंबव्यवस्थामाश्रित्य समाजकल्पना। तेषु च यः प्रबलः स एवान्यान् बलातिरेकेण विजित्य स्वयं तत्र प्रमुखो भवति। सज्जनो मानवो हि स्वगुणैः सर्वानपि स्वानुकूलान्विधाय स्वयमग्रणीर्भवति। यद्यपि मानवसमुदायेष्वपि उपरिदर्शितरीत्या बलातिशयं प्रयुञ्जाना भवन्ति तेषां तेषां जितानां मानवसमुदायानामध्यक्षास्तथापि तादृशी रीतिः पशुरीतिभ्यो नातिरिच्यते। ये खलु मानवा गुणविशेषैः पशुभ्योऽतिरिच्यन्ते ते नैतादृशाः। तस्मात् सामान्यतः समाज-व्यवस्थार्थं तथा कुटुंबव्यवस्थारक्षार्थं खलु सचेतसां मानवरत्नानां प्रवृत्तिरिति तदैव तेषां प्रवृत्तेः फलमिति ज्ञायते। यदि

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi.

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

नैवं तदा समाजव्यवस्थाया रक्षार्थं तथा कुटुंबव्यवस्थायाः पालनार्थं किमिति तैस्तैर्मानवश्रेष्ठैः स्वप्राणा अपि विसृष्टा इति वक्तव्यं । इतिहासे चैतादृशानि सहस्रश उदाहरणानि परिदृश्यन्ते । यदि स्वेन्द्रियतृप्तिरथवा स्वोदरपूर्तिरेव मानवजीवितस्य तथा मानवीयप्रवृत्तेश्च फलं तदा कथं स्वप्राणोत्सर्गस्तेषां मानवरत्नानां युज्यते ? अतः समाजव्यवस्थापरिपालनं तथा तदर्थं कुटुंबव्यवस्थापरिरक्षणमेव बुद्धिमतां मानवानां प्रवृत्तेः फलमिति ज्ञेयं । इदमेव संक्षेपेण बृहदारण्यकोपनिषदि तृतीयेऽध्याये चतुर्थब्राह्मणे प्रतिपादितं । तद्यथा—पुत्रैषणा वित्तैषणा लोकैषणा इति एषणात्रयं जातमात्रस्य मानवस्य भवति । तत्राद्ये साधनीभूतेऽन्त्या च फलीभूतेति । वाचकाः ! यन्मयोपरिष्टात् प्रतिपादितं सचेतसां मानवानां प्रवृत्तेः फलं कुटुंबपरिरक्षणं तत् साधनीभूतैषणाद्वयेऽन्तर्भूतं । तन्मूलकं समाजस्वास्थ्यं च लोकैषणायामन्तर्भूतमिति भवन्तो विदांकुर्वन्तु । एतदेव प्रयोजनमुररीकृत्य तत्रभवद्भिर्मान्यैर्मन्वादिभिः स्मृतिकारैः समाजव्यवस्थार्थं नियमाः कृतास्तत्सिद्ध्यर्थं कुटुंबपरिपालने नियमा अपि विहिताः । एतेषां परिपालने समाजस्वास्थ्यं परिपश्यन्तस्ते ऋषिप्रवरास्तान्नियमान् धर्मशास्त्रत्वेन व्यवाहरन् । तदाचरणं च धर्मोत्पत्तेः कारणमित्यवदन् । कामंदक्यादिनीतिशास्त्रविहितस्यार्थोत्पादनस्य तथा वात्स्यायनादिप्रणीतकामशास्त्रस्यापि समाजस्वास्थ्यपरिरक्षणमेव फलमिति तत्रभवन्तोऽवधारयन्तु । अत एव धर्मार्थकामरूपाणां त्रयाणामपि पुरुषार्थत्वं । तस्मात् धर्मार्थकामरूपपुरुषार्थोद्देशेन विधीयमाना सचेतसां मानवानां प्रवृत्तिः सर्वथा लोकसंस्थितिरूपलोकस्वास्थ्यफलेति निःसंदिग्धमिदं प्रयोजनं तस्या इति सिद्धं ।

२

इत्थं सचेतसां प्रवृत्तेः फलं कुटुंबरक्षणपूर्वकं समाजस्वास्थ्यपरिरक्षणमिति प्रतिपादितं । साम्प्रतं तत् समाजस्वास्थ्यं किं स्वतंत्रं फल-

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

माहोस्विद्गौणामिति विचारयामः। द्विविधं हि फलं लोके दृश्यते। एकं मुख्यमन्यच्च गौणं। यथा क्षुधातुरस्य क्षुन्निवृत्तिर्मुख्यं फलं तत्साधनेषु च स्वयंपाकसिद्ध्यादिषु गौणः फलव्यपदेशः। यदि नैवं तदा स्वयंपाकं कृत्वाऽभुक्त्वाऽपि कश्चित् कृतकृत्यो भवेत्। न भवति चैवं कोऽपि सचेताः। तस्माज्जगति फलपदस्य द्विविधः प्रयोगो दृश्यते। तत्र मुख्यं फलं नाम तत् यदितरेच्छानधीनेच्छाविषयः। यथा क्षुद्दुःखनिवृत्तिर्न किमपि अन्यत् फलं कांक्षति इति सा मुख्यं फलं, भोजनादीनि तु क्षुद्दुःखनिवृत्त्यर्थानीति न तानि मुख्यानि किंतु गौणानि। प्रकृते समाज-स्वास्थ्यं यत् सचेतसाऽपेक्ष्यते तत् किमन्यस्य कस्यापि फलस्य सिद्ध्ये उत स्वयमेव। यदि स्वयमेवेत्युच्यते तदाऽनुभवविरोधः। स हि तस्य समाजस्य स्वास्थ्यं कांक्षति यत्र समाजे स्वकुटुंबेन सह स निवसति। यदि नैवं तदा यः कोऽपि पृथिवीस्थितानां नानाविधानां समाजानां स्वास्थ्यं कामयेत। न तु कामयमानः कश्चन दृश्यते। अत्यल्पमिदमुच्यते। स हि तस्यैव कुटुंबस्य स्वास्थ्यं वाञ्छति यत्र च स्वयं वसति। स्वयं तस्य कुटुंबस्य रक्षणेन स्वास्थ्यं लभते। वाचकाः! उपरितननिरूपणेने-दमायातं यदुपरिकथितं समाजस्वास्थ्यं वा कुटुंबस्वास्थ्यपरिरक्षणं वा न मुख्यं फलं किंतु गौणमिति। यदि तु तद्गौणं तदा तस्याः प्रवृत्तेः किं मुख्यं फलमिति वक्तव्यं।

अत्र केचित्—सचेतसां प्रवृत्तेर्मुख्यं फलं समाजस्वास्थ्यमेव। तदर्थं च देशस्वातंत्र्यादिकं मानवो वाञ्छति। नैवं यदि, तदा कथं समाज-स्वास्थ्यस्य तथा समाजपावित्र्यस्य च रक्षणार्थं तैस्तैर्वीरैः स्वप्राणाः समुत्सृष्टाः? यदि च स्वेन्द्रियतृप्तिरेव सुखापरपर्याया सचेतसां प्रवृत्तेः फलं तदा महता कष्टेन संपादितं धनं व्ययीकृत्यान्येषां मानवानां कृते धर्मशालादिकं कथं मानवो विरचयति। तस्मात् समाजस्य स्वास्थ्यमेव सचेतसां प्रवृत्तेः फलमिति वदन्ति, तन्न विचारसहं। तथाहि। यदि

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

समाजस्वास्थ्यादिकं फलत्वेनोदाह्रियते तन्न सामान्यरूपेण। जगति ये ये भिन्नाः समाजा दृश्यन्ते तेषां सर्वेषां स्वास्थ्यं कामयमानः कश्चन यतत इति न श्रद्धार्हं। अतः स यस्मिन् समाजे जातस्तस्य स्वास्थ्यं कामयमान एव तदनुकूलं चेष्टत इति असकृद्दर्शनात् स स्वसुखं कामयमान एव तथा चेष्टत इति स्वसुखमेव सर्वासां प्रवृत्तीनां मुख्यं फलमिति सुसंगतं। अत एव स हि स्वमातृभूमेः स्वातंत्र्यं वाञ्छति यो हि यत्र जातो यत्र निवसति यत्र च मम वंशजाः स्थास्यन्तीति मन्यते। तथा च कुटुंबेऽपि प्रेम स्वसंबंधादेव। न च कुटुंबस्य तथा देशस्य रक्षार्थं प्राणानपि समुत्सृजन्तो जना दृश्यन्त इति वाच्यं। सत्यं। तथापि तेषां कुटुंबे तथा देशे च यः प्रेमातिशयः स स्वसंबंधादेव। तत्र स्वपदवाच्यत्वं देहस्य वा प्राणस्य वा यस्य कस्य वाऽन्यस्य वेति वयमग्रे निपुणतरमुपपादयिष्यामः। तस्मात् सचेतसां प्रवृत्तेर्मुख्यं फलं स्वसुखमेव नान्यत्किमपि। समाजस्वास्थ्यं, कुटुंबस्य परिरक्षणं, तथा देशस्वातंत्र्यं, स्वसंस्कृतिपरिरक्षणमित्यादीनि तु गौणानि फलानीति विज्ञेयं।

३

निरूपितं मानवप्रवृत्तेर्मुख्यफलं स्वस्मिन्निरतिशयं प्रेम। यद्यपि तत्र स्वशब्दवाच्यः क इति साम्प्रतं विवेचनीयमिति प्राप्तं। तथाप्यस्यैव विचारेणाग्रिमाणि सर्वाणि दर्शनानि व्याप्तानीति तद्विचारोऽग्रे भविष्यति। साम्प्रतं दर्शनशब्दस्यार्थः कथनीयः। उच्यते। दर्शनं दृष्टिरिति व्युत्पत्त्या दर्शनशब्देन ज्ञानमित्यर्थो लभ्यते। ज्ञानेन हि सर्वं विचारयितुं शक्यते नान्यथेति सुप्रतीतं लोके। तथा च चार्वाकदर्शनं नाम चार्वाकज्ञानं चार्वाकविचार इति प्राप्तं। अत्रेदमवश्यमनुसंधेयं। चार्वाकबौद्धप्रभृतिभिर्नामभिरङ्कितानि दर्शनानि क्रमेण व्याचिकीर्षितानि। तेषु च कानिचिन्नामानि तत्तद्धर्मप्रवर्तकाचार्यनामसदृशानि सन्ति। तेन तत्तद्दर्शनविचारास्तेषां तेषामाचार्याणां सन्तीति कस्यचिन्मतिः स्यात्। सा जाय-

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

यतोऽस्मिन् दर्शनविचारे नास्ति धर्मस्यांशतोऽपि संबंधः। केवलं प्रमाणीभूतस्य सत्यस्य पदार्थस्य शोधायेमे विचाराः प्रवृत्ताः सन्ति। यदि नैवं तदा कथमेषां द्वादशदर्शनकाराणां—अज्ञानात् बन्धापरपर्यायं दुःखं, ज्ञानात् बन्धापरपर्यायस्य दुःखस्य नाशः, इत्यत्रैक-मत्यं। न हि धर्मप्रवर्तका एव धर्ममन्यथासिद्धं कार्यविशेषे वक्तुमर्हन्ति। किं च जैनबौद्धनामनी एव कयोश्चित् समाजयोर्वर्तेते इति यदि ताभ्यां तावेव गृह्येते तदा न्यायकणादसांख्ययोगप्रभृतिदर्शनानां का गतिः। न हि तत्तन्नामवाच्याः समाजा उपलभ्यन्ते। न च पूर्वमासन्निति वाच्यं। प्रमाणा-भावात्। अत एवैषां परस्परविरोधित्वेनाप्रामाण्यमपि न। अन्यथा सुन्दो-पसुन्दन्यायेन परस्परप्रामाण्योपहनने दर्शनविचारो विफल एव स्यात्। न च कल्पितकादंबरीकल्पा एवेमे विचारा इति वाच्यं। तेषामप्रामाण्येऽन-नुष्ठेयत्वं स्यात्। अनुष्ठानेऽपि फलं न स्यात्। दृश्यन्ते च बहव आत्मानात्मविवेकेन शान्तस्वान्ताः सुखजीवना जनाः। तस्मात् परस्पर-प्रामाण्यपरिरक्षणायैषां विचाराणामेकध्येयानुवर्तित्वं स्वीकर्तव्यमेव। तच्च तत्त्वज्ञानेन दुःखनाशरूपं पूर्वोक्तमेव। अपि चाग्रे निरूप्यमाणानां दर्श-नानां तत्त्वज्ञानानि यदि भिन्नानि स्युस्तदा तानि तत्त्वज्ञानानि कथं? तथैव तत्त्वज्ञानेषु भेदः कथं भवेत्। न हि सत्यज्ञानात्तत्त्वज्ञानं नामान्यः पदार्थः। सत्यं तथा तज्ज्ञानं चैकरूपमेव, न तत्र भेदस्यावसरः। नन्वेवं तदा चार्वाकादिनाम्नां कोऽर्थ इति चेदुच्यते। संसारदुःखदावा-नलसंतप्तस्य तत्त्वज्ञानरूपतदपनोदकोपायानुष्ठानपरस्य भाग्यशालिनः कस्यचिदेव जीवस्य क्रमेण प्राप्तानां विचाराणां प्रदर्शकानि एतानि नामानि। तेषु च कानिचिद्रूढानि कानिचित् प्रतिपाद्यविषयसं-सूचकानि। यथा चार्वाक इति रूढं नाम लोकायतिकामिति यौगिकं। प्रायो लोकेऽत्र प्रथमतो निरूपितं देहात्मवादरूपं ज्ञानं सुतरामायतमेव। एवमेवान्यत्रापि ज्ञेयं। वाचकाः! संप्रति कियन्तः पदार्था अवश्यं विचार-

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


णीया इति प्रदर्श्येममुपक्रममुपसंहरामि । तत्र विचारणीयाः पदार्था यथा—ज्ञेयम्—दृश्यमानामिदं जगत् कीदृशं ? ज्ञाता—ज्ञानाधिकरणं अस्मत्प्रतीतिविषयः कीदृशः ? सुख-( मोक्ष ) साधनस्य ज्ञानस्य कीदृशं स्वरूपम् ? दुःख-(बंध) साधनस्य भ्रमस्य च कीदृशं रूपमिति प्राधान्येन निरूपयितुमिष्टा इमे विषयाः । गौणतया चान्यदप्येतदुपकारि प्रमाणादिकं । एतच्च तत्तद्दर्शननिरूपणप्रस्तावे स्पष्टीभविष्यति । तदुक्तं योग्यभाष्ये—२ पादे १५सूत्रे चिकित्साशास्त्रवदिदं शास्त्रं चतुर्व्यूहं ज्ञेयं-हेयं, हेय-हेतुः, हानं, हानोपायश्च । तत्र हेयमनागतं दुःखं । तस्य हेतुरविद्या । हानं दुःखध्वंसः, हानहेतुश्च विद्या । यथा चिकित्साशास्त्रे—रोगो, रोगहेतुः, आरोग्यं, आरोग्यहेतुश्चेति । बान्धवाः ! समाप्त उपक्रमः । अनुपदमेव तत्तत्प्रसिद्धनामांकितानां दर्शनानां विचारः प्रस्तूयते । तत्र सुगमतया ज्ञानार्थं प्रारंभ एव विवादविषयांस्तथा संक्षेपेण तत्तद्दर्शनकारमतेनोत्तराणि लिखित्वा विस्तरं तेषां क्रमशः करिष्यामि । येन ज्ञाने सौलभ्यं भवेत् । यद्यपीमे दर्शनविचारविषयीभूताः पदार्था अत्यन्तं सूक्ष्मा अत एव बुद्धिमतामगम्यास्तथापि तेषां ज्ञानं यथाञ्जसा स्यात्तथा कर्तुं प्रयते । तदर्थमेव दर्शनविचारोत्क्रान्तिप्रदर्शकं पत्रमपि निबद्धम् । जगदीश्वरो मे मनोरथं सफलयतु । करोतु च शुभमस्य ग्रंथस्य मुद्रणे निरलसं प्रयतमानस्य मदन्तेवासिनो दत्तवाडकरोपनाम्नः केशवसुतस्य पुरुषोत्तमस्येत्यलमतिविस्तरेण ।

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

## ( चार्वाकदर्शनस्यावतरणिका )

अहं हि सर्वमान्ये सदाचारपरिपूते श्रेष्ठे कुले लब्धजन्मा क्रमेण प्राप्तयौवनः सकला विद्याः पठित्वा कुशाग्रबुद्धिः संवृत्तः। धनमपि अपारं संपादितम्। पत्न्यपि मेऽनुपमलावण्या पतिव्रताऽस्ति। तया सह कालं यापयन् इन्द्रियसुखानि प्रभूतानि अनुभूतानि। पुत्रा अपि स्वस्वोद्योग-प्रवीणा अनेके सन्ति। कन्या अपि गुणशालिभिः पतिभिः समादृता बालकैः परिवृताः समये समये समेत्य मां तोषयन्ति। समये समये परितुष्टेन राज्ञा तथा लोकसमुदायेन कृतं संमानमपि समीचीनतयाऽनुभवामि। एतस्मिन् सर्वस्मिन् सत्यपि नाहं सुखी! मम पश्चात्कथमेतत् सर्वं तिष्ठेदिति चिन्ता मां बाधते। पुत्रा इदानीं सद्वृत्ता अपि पश्चात्परस्परं कलहायमाना महता प्रयत्नेन समार्जितं धनं नाशयेयुः। इमाः कन्यका अथ च तासां कन्यकाः कदाचिदसद्वृत्ताः कुलं कलंकयेयुः। एवं बहुविधचिन्ताग्रस्तः सततं दुःख-मेव भावयामि न सुखं। सत्स्वप्युपरिदर्शितेषु सुखसाधनेषु कुतो न सुखं? प्रत्युत दुःखं। तस्मादस्य दुःखस्य कारणं या चिन्ता सा केनोपायेन नाशनीयेति विचारणीयं। तत्राप्यादौ अहं मदीयधनगृहपुत्रादिकानां का गतिर्भवेदिति चिन्तयामि न पुनः परेषां। अत्र को वा हेतुः। यथा हि परेषां पुत्रा जातास्तथैव ममापि। यथैव मया सर्वमेतत्कष्टेन संपादितं तथैव परैरेभिस्तदीयं गृहादिकं। एवं समानायां कारणसंपत्तौ कुतोऽहं मदीयानामेव चिन्तां धारयामि न पुनः परेषां। एवं भूयो भूयो विचार-यन् ममत्वमेवात्र कारणमवधारयामि। तदेतेषु मदीयेषु पुत्रधनगृहादिषु ममत्वं किं, तद्विचारणीयमिति प्राप्तं। ततोऽप्यहं क इति विचारणा परमावश्यिकेति मन्वानश्चार्वाकः प्रक्रमते।

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

# प्रथमं सोपानम् ।

## चार्वाकदर्शनम् ( देहात्मवादः )

| प्रश्नाः— | उत्तराणि— |
|---|---|
| १ किं ज्ञेयं ? | १ चातुर्भौतिकं जगत् । |
| २ कीदृशो ज्ञाता ? | २ ज्ञानाश्रयो देहः । |
| ३ अज्ञानस्य स्वरूपं किम् ? | ३ पुत्रभार्यादिषु ममत्वं । |
| ४ दुःखस्य स्वरूपं किम् ? | ४ एतेषां वैकल्येन मनोविकारः । |
| ५ ज्ञानस्य स्वरूपं किम् ? | ५ नैते मम किंतु अहमेव मम । |
| ६ दुःखध्वंसस्य ( मोक्षस्य ) स्वरूपं किम् ? | ६ चरमो दुःखनाशः । |
| ७ एतेषु सर्वेषु प्रमाणं किम् ? | ७ प्रत्यक्षमेकमेव नान्यत् । |

**चार्वाकस्य मते चतुष्टयमिदं तत्त्वं पृथिव्यादिकं ।**
**देहोऽयं सुखदुःखवित्तिगुणवानात्मेति संबोध्यते ॥**
**मुक्तिः कालवशात्सुपक्वफलवद्देहस्य पातो मता ।**
**प्रत्यक्षं खलु मानमत्र न परं ज्येष्ठं च सर्वादृतम् ॥ १ ॥**

१

यदिदं जगत् दृश्यते तत्सर्वं चतुर्भ्यो भूतेभ्यो जायते। तानि चत्वारि भूतानि पृथिव्यप्तेजोवायुरूपाणि प्रत्यक्षेण दृश्यन्ते । यद्यद्धि वस्तु प्रत्यक्षेण गृह्यते तत्रैतेषां चतुर्णामुपलम्भात् । तत्र गंधरसरूपस्पर्शरूपा एतेषां धर्माः यथा पुष्पे—गंधः समुपलभ्यते तथा रसरूपस्पर्शा अप्युपलभ्यन्ते । केवलं भूयस्त्वात्तत्तत्पदवाच्यतां भजन्ते। यथा पुष्पे प्राधान्येन बाहुल्येन च गंध उपलभ्यत इति तत् पार्थिवं निगद्यते । एवमेव जलीयतैजसवायवीय-पदार्थेषु बोध्यं । नचाकाशस्याभावे शब्दः कमाश्रयत्विति वाच्यं । शब्दो वायुमेव सावयवं समाश्रयत् । तेन महत्त्वपरत्वादीनामपि संगच्छते ।

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

यदि तु निरवयवमाकाशं शब्दः समाश्रयेत्तदा महत्त्वमल्पत्वं किंमूलकमिति वक्तव्यं। नचाकाशस्यावयवाः सन्ति येन तदाधिक्यान्महत्त्वं तदल्पत्वादल्पत्वं वक्तुं शक्यं। नचोत्तेजकवायुनिमित्तं तदिति वाच्यं, तथा सति उत्तेजकत्वा-श्रयस्य वायोस्तदधिकरणत्वकल्पनयैव सामंजस्ये पृथग्भूतस्याप्रत्यक्षस्या-काशस्य कल्पना न प्रामाणिकी । नचावकाशरूपस्याकाशस्याभावे कार्यस्योत्पत्तिरेव न स्यादिति वाच्यं । अवकाशो नाम वस्तूनामभावः स न द्रव्यं । स न पदार्थः । तस्माद्वस्त्वभावभूतस्यावकाशस्याकाशेन कः संबंधः। एवमेव कालदिशां व्यवस्था ज्ञेया। आत्मा किंस्वरूप इत्यग्रे वक्ष्यते। मनस्तु ज्ञानसाधनं मस्तिष्काख्यं चातुर्भौतिकमिति न पृथक् गण्यते । ये च तत् स्वतंत्रमिन्द्रियं वा द्रव्यं वा तत्त्वं वा स्वीकुर्वन्ति तैस्तदधिकरणं वक्तव्यं । यदि च मस्तिष्कमेव तदा प्रत्यक्षेण समुपलभ्यमानं मस्तिष्कं ज्ञानसाधनं विहायाप्रत्यक्षस्य मनसः कल्पनायां मानाभावः । अतएव दोषैराक्रान्ते, वा समाघातेन ताडिते मस्तिष्के न ज्ञानोदयः। स्वस्थे तु स भवति । इत्यन्वयव्यतिरेकाभ्यां मस्तिष्कमेव ज्ञानसाधनं सिध्यति । तत एव न गुणादयोऽग्रिमा नैयायिकस्वीकृताः पदार्थाः प्रमाणपदवीमध्यासते। ये खलु पटादीनां शौक्ल्यादयो गुणा यानि च धावतिगच्छतिप्रभृति-क्रियापदबोध्यानि कर्माणि तत्सर्वं चत्वारि भूतान्येव । न च श्वेतं रूपमपनीय नीलं रूपं स्थापयितुं शक्यत इति ते द्रव्यादन्ये इति वाच्यं। ये खलु पाकसंभवेन रूपान्तरोत्पत्तिं वदन्ति तेषां मते आश्रयीभूतस्य द्रव्यस्याऽपि अन्यत्वस्यावश्यकत्वात् । किंचैतेषु चतुर्षु भूतेषु वर्तमाना रूपादयो यदि पृथक्पदार्थास्तदोत्तानशायिनोऽधःशायिनोऽपि भेदप्रसंगः। तस्मान्नैतेषां पृथक्पदार्थत्वं प्रमाणपदवीमध्यास्ते । सामान्यं तु बहुषु घटादिषु पदार्थेषु अनुरूपं विद्यमानमाकारं वीक्ष्यानुगता बुद्धिर्जायत इति न पृथक् पदार्थः । विशेषसमवायाभावास्तु स्वकपोलकल्पनारूपा इति न तेषां निराकरणे प्रयत्यते। न च घटादिकार्यैः सह तदारंभककपालादीनां

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi.

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

कः संबंध इति वाच्यं । कार्यकारणभावस्यैवास्वीकारात् । तथाहि । कार्यकारणयोः सापेक्षतया पूर्वं कस्याप्येकस्य ज्ञानं न भवितुमर्हति । यथा बीजांकुरयोः । तथाच कावपि द्वौ पदार्थौ स्वीकृत्यानयोः कार्यकारणभावोऽस्तीति व्यवहारो गतानुगतिकतया प्रचलितो न प्रमाणपरीक्षां सहते । तस्मात्प्रत्यक्षप्रमाणबोध्यानि चत्वार्येव भूतानि ज्ञेयपदवाच्यानि नान्यत्किमपीति सिद्धं ।

२

निरूपितानां चतुर्णां भूतानां ज्ञाता ज्ञानाश्रयो देह एव । तथाहि । इन्द्रियाणामर्थैः सह संनिकर्षे जाते ज्ञानं जायत इति सर्वेषामनुभवः । श्वापि स्वस्वामिनोऽनुकूलां वाचं श्रुत्वा समागतो महताऽवधानेन तद्धस्ते स्थितं भक्ष्यं साक्षात्कृत्यैव पुच्छं समालोडयति नान्यथा । ननु इन्द्रियैः सममर्थस्य संनिकर्षे जाते मस्तिष्के वेदना जायत इति ज्ञानं मस्तिष्कस्य धर्मो न तु देहस्येति चेत् मैवं। देह एव स्थितं मस्तिष्कं तथा चक्षुरादयो ज्ञानकार्यं जनयन्तीति सर्वेषामनुभूतत्वेनान्वयव्यतिरेकाभ्यां देहस्यैव ज्ञानाधिकरणता समुचिता। ननु देहो हि चतुर्भ्यो भूतेभ्यः समुत्पन्नः। तथाच तदारंभकेषु चतुर्षु भूतेषु चैतन्यस्यानुपलंभात्कथं देहे चैतन्यं। नच भूतेष्वपि चैतन्यं वर्तते परन्तु तदनुत्कटतया प्रतीतिविषयो नेति वाच्यं। एवंसत्यव्यवस्था स्यात् । तस्माद्यो हि गुणो यत्रोपलभ्यते तत्कारणेष्वपि तेन भाव्यं। सत्यं। यद्यपि देहसाधकेषु चतुर्षु भूतेषु चैतन्यं नास्ति तथापि तत्परिणामभूते देहे चैतन्यस्य सत्वे का क्षतिः । अस्ति हि परिणामस्य वैलक्षण्यं तदारंभकेभ्यः। तण्डुलेभ्यो मद्यं जायते । घासादिभ्यो दुग्धं जायते। मानुषपुरीषादिभ्यः शाकादयो जायन्ते। मृत्तिकादिभ्य इक्षवो जायन्ते । तेषु अस्ति वा कार्यकारणसमानगुणत्वं ? अत्यल्पमिदमुक्तं। वस्तुतस्तु कुत्रापि कार्यकारणेषु सर्वगुणवत्वं न वर्तते। यत्किंचिद्गुणवत्वं तु ममापि अस्ति-यथा रूपरसगंधस्पर्शा गुणाः समाना दृश्यन्ते। यथाहि

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

मद्यस्य मादकत्वं मद्य एव। स हि परिणामस्य विशेषो गुण इति स परिणामे एव तिष्ठेन्नारंभकेषु । तथा चैतन्यं देहस्य चतुर्भूत-परिणामभूतस्य विशेषगुण इति स तत्रैव तिष्ठेन्नान्यत्रेति ज्ञेयं। यदि तु चैतन्यसंपादनयोग्यतोच्यते तदा सा चतुर्षु भूतेष्वव्याहतैव। यथा हि गर्दभमूत्रपुरीषमेलने वृश्चिकादयः प्राणिनो जायन्ते, यथा वा वर्षासु कृमिकीटकादयो भूमितः समुत्पद्यन्ते तथैवायं देहोऽपि पित्रोः शुक्रशोणि-ताभ्यां क्रमेणोपचीयमानो लब्धजन्मा संवेदनां लभत इत्यस्यैव ज्ञानाश्रयत्वं। अयमेवात्मपदवाच्यः । ये तु अस्मत्प्रतीतिविषयीभूतां बुद्धिमेवात्मपदेन व्यपदिशन्ति तैर्वक्तव्यं कोऽयं बुद्धिपदार्थः ? यदि चातुर्भौतिकस्तदा किम-पराद्धं प्रत्यक्षेण देहेन । ये च नित्यं तं पदार्थान्तरं स्वीकुर्वन्ति वदन्त्य-नित्यज्ञानाश्रयं। विवदन्ते च स च स्वयंप्रकाश इत्यादि। तदेतत्सर्वं कल्प-नाजालं तेषामेव शोभते येऽसत्पदार्थकल्पनयैवात्मनो बुद्धिवैभवं ख्यापयि-तुमिच्छन्ति । नहि कल्पनया पदार्थाः सिध्यन्ति । ये तु महता संरंभेण नित्यमात्मानं साधयन्ति तान् प्रति 'यदि नित्य आत्मा तदा जन्म कस्येति' पृष्टे किमुत्तरं। वस्तुतस्तु न कस्यापीत्येव तैः प्रत्युत्तरणीयं तदा चिरं जीव! सिद्धं ते पाण्डित्येनेत्येवोक्त्वाऽस्माभिर्विरमणीयं। यो हि प्रत्यक्षमपि नानुमन्यते तेन सह विवाद एव कथं। ननु चैतन्यस्य देहाश्रयत्वे तस्य नाशेन सममेव तन्नाशस्यापि आवश्यकतया पुनर्जन्मनोऽभावे सिद्धे जगति यद्वैचित्र्यं दृश्यते तस्य कारणं किं ? मैवं वैचित्र्यं प्रति कर्मवैचित्र्यमेव कारणमिति त्वया साधितः सिद्धान्त एव भ्रान्तिमूलः। पाषाणेषु यद्वैचित्र्यं दृश्यते तत्रापि कारणं किं चेतनवैचित्र्यं ? अत्यल्पमिदमुक्तं—हंसानां श्वेतत्वे मयूराणां विचित्र-पक्षशालित्वे किं कर्मवैचित्र्यमेव कारणं ? ननु स च स्वभावः स्वतःसिद्ध इति चेत्स एव ममाप्यस्तु किं काल्पनिकेन कर्मवैचित्र्येण । ननु यदि देहस्य चैतन्याश्रयत्वं तदा बाल्ये विलोकितस्य स्थाविरे स्मरणानुपपत्तिः। बालस्थविरयोर्देहभेदस्य प्रत्यक्षसिद्धत्वात् । मैवं बालस्थविरदेहयोर्नात्यन्तं

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


भेदः । किंतु संकोचविकासरूपशाली । यथा मागधीकलिकाकुसुमयोः स्वल्पे भेदेऽपि गंधः पुनः स एव। तथैव बालस्थविरदेहयोः परिमाणभेदेऽपि समानेन चैतन्येन स्मृतिरप्युपपद्यत एव। बालस्य प्रथमस्तनपानप्रवृत्तिश्च स्वभाववर्णनेनोपपादितकल्पैवेत्यास्तां तावत् । तस्माद्देह एवात्मा, स एव सुखदुःखादिभाक् अज्ञानाश्रयश्चेति सिद्धं ।

३

साम्प्रतमज्ञानस्य स्वरूपं वक्तव्यं । अज्ञानस्य लक्षणं तु ‘ अतस्मिंस्तद्बुद्धिः’ इत्येव सर्वसम्मतं निर्दुष्टं च। तथाच जीवो पुत्रादींस्तथा धनादिकान् स्वयंक्लेशेन संपादितानर्थान् ममत्वेन यन्मनुते तदेव तस्याज्ञानं सर्वदुःखकारणमिति चार्वाकसम्मतं । तथाहि । पुत्रभार्यादयस्तथा धनगृहादयः पदार्था वस्तुतोऽन्यपदार्थवत् स्वतंत्रा एव । तेऽपि हि देहवच्चतुर्भूतेभ्यः समुत्पन्नाः । नाप्युत्पत्तौ परस्परमपेक्षन्ते । किंतु परस्परकार्यार्थं । कुत्रचित् कस्यचित् पुरुषस्य पुत्रो जातः । कुत्रचित् कस्यचित् कन्या जाता । स पुत्रो युवा सन् कन्यां कामयते, कन्या च पुरुषं । तयोर्यः संबंधो भवति तं संबंधमाचारप्रधानाः पुरुषा विवाहशब्देन व्यपदिशन्ति । वस्तुतो यथा पशूनां संबंधः कायिकसुखार्थं एवमेव मानवयोरपीति न कश्चिद्विशेषः । तौ च मानवौ स्वसुखार्थं प्रयतमानावपत्यं लभेते । तस्मिन्नपत्ये ममत्वं मन्यमानावनल्पेन दुःखेन दुःखभाजौ भवतः। एवमेव संसारे नानाव्यवहारान् कुर्वन्तो धनमर्जयन्ति। वस्तुतस्तु इदं धनं न कस्याप्येकस्य । किन्तु सर्वत्र व्यवहारार्थं प्रचलत् व्यवहारसौकर्यं समुत्पादयति । यथा कस्यापि निकटे एको रूप्यको वर्तते तेन स धान्यं वांच्छति । अन्यश्च कृषीवलः प्रभूतधान्यराशिर्नृपाय करदानार्थं धनमिच्छति। तावेतौ धनधान्यविनिमयं कुरुतः । अत्रेदं विचारणीयं । कस्य वा स रूप्यकः कस्य वा तत् धान्यं । यदि कृषीवलस्य धान्यं तदा कथमन्यस्य वणिजस्तदभूत् । अथ स रूप्यको यदि वणिजस्तदा स कथं कृषीवलस्याभूत् । तस्मादाभिमानिक-

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

संबंधं विना नान्यः कोऽपि अनयोः संबंधो भवितुमर्हति। एवमेव सर्वत्र व्यवहारे बोध्यं। एकः पृथिवीपतिरन्यं पृथिवीपतिं समाक्रम्य युध्यते। चिरं युध्वा तं पराजित्य तदीयं राज्यं स्वीयं करोति। गते कियति समये स पराजितो नृपो वाऽन्यः कश्चन बलाढ्यो वा भूपतिः पुनरपि तदीयं राज्यं स्वहस्तगतं करोति। अत्रेदं विचार्यते कस्य वैतद्राज्यं। कस्य वा धनराशिः कस्य वा सेनादिकं। यदि विजयिनस्तदाऽधुना पराजितो भूपः पूर्वं विजयी बभूवैव। साम्प्रतं पराजित इत्यन्यदेतत्। परन्तु साम्प्रतं न तस्य सर्वमेतत्। सर्वमेतन्ममेति मन्यमानः खलु अयं भूपः पूर्वं तेन राज्ञा युयुधे। सोऽपि तेन। तस्मादनयोर्द्वयोरपि मध्ये न कस्याऽपि स भूप्रदेशः। किंतु स च स्वतंत्रः सर्वदा तिष्ठत्येव। ममत्वदोषाच्छादितबुद्धय ईदृशा अगणिता भूपालाः सैन्यबलमदान्धा अत्र ममत्वस्थापनार्थं युयुधिरे युध्यन्ते योत्स्यन्ते च। बान्धवाः! इदमेवाज्ञानं यन्ममत्वाभाववति पदार्थजाते ममत्वबुद्धिः। कश्चन बुद्धिमान् परमचातुर्येण दीनान् वंचयित्वा स्वल्पं धनं संगृण्हाति। ततोऽपि धनमधिकं संपादयितुमिच्छुः स यंत्राणि संपादयति। तेभ्यश्च मानवानां स्वल्पं बलं प्रयुज्यागणितानि वस्त्राणि समुत्पादयति। तानि विक्रीय प्रभूततमं धनराशिं लभते। तेन धनराशिना स स्वेच्छाचारं कुर्वाण आत्मानं सुखशालिनं मन्यते। तस्य धनराशिमपहर्तुमन्ये दायादा वा पुत्रा वा सेवका वाऽन्ये सर्वे जनाः स्वस्वबुद्धिमनुसृत्य भिन्नान् भिन्नानुपायान् प्रयुंजाना प्रयतन्ते तेनायं सततमुद्विजते। बान्धवाः! तदेतत्सर्वं विज्ञाय भवद्भिर्ज्ञातमेव स्यात् यन्ममत्वाभाववत्सु पदार्थेषु ममत्वबुद्धिरेवाज्ञानमिति।

४

निरूपितं दुःखस्य कारणमज्ञानं। साम्प्रतं दुःखस्य स्वरूपं वर्णयामि। पूर्वोक्तरीत्या स्वस्वसुखप्राप्त्यर्थं मिलितेषु पुत्रभार्यादिषु ममत्वमध्यस्य तेषां सुखमेव स्वसुखं मन्यमानो जीवो यदा तान् विपरीतमतीन्

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



स्वानभिमतानि कर्माणि कुर्वाणान् पश्यति तदा द्वेष्टि । ततो दुःखायते । दुःखोद्वेगेनापहतमतिर्म्रियते उन्मादी वा भवति । कश्चन ब्राह्मणत्वाभिमानशाली स्वपुत्रं ब्राह्मण्यविरोधि कर्म कुर्वाणं पश्यति तदा स दुःखायमानस्तस्य पुत्रस्य मरणं वांच्छति न जीवनं । भार्यां च स्वस्मिन्नेवानुरक्तां मन्यमानो यदा तामन्यासक्तां पश्यति तदा खड्गं हस्ते गृहीत्वा हन्तुमेवेच्छति हत्वा चात्मानमपि हन्ति । वाचकाः ! पश्यताज्ञानस्य प्रभावं ! स्वसुखार्थं संगताया भार्याया नास्ति ममत्वस्य संभवः । यथाहि खलु व्यवहारार्थं प्रयुज्यमानानां रूप्यकाणां व्यवहारो, नास्ति तेषु कस्याप्येकस्य ममत्वं तथैव सुखार्थं संगतेषु पुत्रभार्यादिषु न कस्याप्येकस्य ममत्वं । तथा सत्यपि अज्ञानात्तेषु ममत्वमारोप्य सुखमनुसंधीयमानो जीवो यदा ममत्वविरुद्धं ते चेष्टन्ते तदा दुःखायते । एवमेव ममत्वानर्हे राज्ये ममत्वमध्यस्य स्वस्यैव तत्र शासनाधिकारं मन्वानो राजा यदा स्वप्रजाजनान् स्वाज्ञाप्रतिकूलवर्तिनः पश्यति तदा क्रोधाक्रान्तस्तानेव हन्तुं सेनापतिप्रभृतीन् स्वसेवकानादिशति । अथ तेऽपि तैः समं यदा संगच्छन्ते तदा ते सर्वे तमेव राजानं घ्नन्ति । तेन स भूपोऽपारे दुःखसागरे निमज्जति एवमेव परकीयं राज्यं स्वायत्तं कर्तुमीहमानोऽपारसेनाबलसमन्वितो भूपो दुर्बलं राजानमाक्रामति । आक्रान्तश्च स भूपः स्वराज्यं रक्षयितुं चेष्टमानः प्रतीकारमारभते । तत्र प्रवृत्ते युद्धेऽगणिता जनाः प्राणान् मुंचन्ति । असंख्या बालका आश्रयविहीना जायन्ते । परस्परसैनिकानां प्राणघातकानां शतघ्नीत्यादीनां यंत्राणां संपादने धनव्ययो भवति । एवं दुःखशतानि सहमानोऽपि यो विजयते सोऽपि जितेभ्यो वाऽन्येभ्यो बलाढ्येभ्यो वा भयमाशंकमानः सदैवोद्विग्नमना एव जीवति । चिन्ताशतेन व्याकुलचेता यानि दुःखानि भुंक्ते तद्वक्तुमपि अशक्यं । इभ्यो वणिगपि यंत्रसाहाय्येन यथेच्छं धनं संपादयन्ननेकान् सेवकान् पीडयति । धनमदान्धो हि अनेकेषां कुटुंबानां समूहं नाशयति । अत्यल्पमिदमुक्तं । वस्तुतस्तु

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


धनमदोन्मत्तो मानवराक्षसः किं किं करोतीति वक्तुमपि कोऽपि न शक्नोति। तेन ते दुर्मनायमानास्तं द्विषन्ति। अस्याविनयं दूरीकर्तुं प्रयतमाना दरिद्रा जनाः संधीभूय तं नाशयितुं प्रयतन्ते। एकाकिनं तं घातयितुं चेष्टन्ते। तेन भीतः स कथंकथमपि जीवति। विषसंपर्कभिया यथेच्छमपि अन्नं भोक्तुं न पारयति। रात्रावपि प्राणापहारभिया प्रकामं प्रवाते स्थले न शेते। किंतु सर्वतो रुद्धे पिहितकपाटे मध्यगृहे। तत्रापि गाढं न स्वपिति किंतु तेषां तेषां दरिद्राणां सेवकानां कोपप्रयुक्तानि कर्माणि स्वप्ने पश्यन् सततमुन्मनायते। अन्ततस्ते सर्वे संधीभूय तं धनिकं नाशयन्ति वा स्वसादृश्यं प्रापयन्ति वा उभयथाऽपि स दुःखसागरस्याधस्तलं गच्छत्येव। धननाशे तस्य दुःखेनाकुल आत्मानं मृतमेव मन्यते। यदि च म्रियते तदा तु स मृत एव। तस्मात् सर्वमिदं दुःखमज्ञानमूलकमिति सिद्धं। तच्च प्रतिकूलवेदनीयमिति च।

५

निरूपितमज्ञानं तत्कार्यं दुःखं च। अधुना ज्ञानस्वरूपं वर्णयामि। तद्धि दुःखस्य नाशकत्वेनाभिमतं। सर्वे हि दुःखं नेच्छन्तीति प्रत्यक्षं। तत्र ज्ञानस्य सामान्यलक्षणं—'तस्मिंस्तद्बुद्धिः' इत्येव निर्दुष्टं। तथा च ममत्वाभाववत्सु पुत्रभार्यादिकेषु ममत्वाभाववत्त्वज्ञानं यथार्थज्ञानं। तदेव दुःखस्य नाशकं। क्व तर्हि ममत्वमितिचेद्देह एव ममत्वमित्यवगच्छ। यावत्पर्यन्तमयं देहस्तावदेव सर्वं कार्यमहं करोमि। देहाभावे च कार्याभाव इत्यन्वयव्यतिरेकाभ्यां देहस्यैव ममत्वास्पदत्वावगमः। ननु कस्मिंश्चित् स्वकीये मृते वा नदीवेगादिना नाशितेषु वा गृहादिषु चौरेणापहृतेषु धनादिषु एतादृशं ज्ञानं जायत एव। परन्तु क्षणादूर्ध्वं पुनरपि तत्सर्वं विस्मृत्य तदेवाज्ञानं पुनरपि नूतनेषु तेषु तेषु पदार्थेषु ममत्वमुत्पादयद्दुःखाकुलं मानवं करोत्येव। तत्कथमस्य ज्ञानस्य दुःखनाशकत्वमितिचेच्छ्रूयतां। मानवो हि जन्मन आरभ्य तेषु तेषु पदार्थेषु ममत्वमनुसंदधानो मध्ये

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi.

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

कतिपयसमये तादृशं दुःखं ममत्वमूलकमिति जानन्नपि न बुध्यते । पुनरपि तदेव ममत्वमनुसंधत्ते । तेन खलु ममत्वज्ञानं दृढीभवदेनं दुःखसागरे पातयति। कश्चिदन्वयव्यतिरेकग्रहणकुशाग्रबुद्धिः सकृदेव ममत्वे वर्तमानं दुःखकारणत्वमवबुध्य तत्त्यागे प्रवर्तमानः सदैव तदेवानुसंदधद्-दुःखादात्मानं मोचयति। सुखी भवति च। ननु च त्वन्मते देहस्यैवात्म-त्वाद्देहोत्पत्तिमारभ्यैवाज्ञानस्य संबंधो वाच्यः । तथाच तस्योच्छेदोऽशक्य इति चेन्न भवन्मतेऽनादेरात्मनोऽविद्यायाः संबंधः कथमुच्छेत्तुमर्हति ? अनादिभावस्य नाशासंभवनियमस्त्वयैव स्वीकृतः । मन्मते तु जायमानस्य भावस्य नाशः सुसंगत एव । वस्तुतस्तु यथा त्वन्मते ज्ञानबलस्य न्यूनत्वे-नाज्ञानसंबंधो दुरुच्छेद्यस्तथा ममापि मते ज्ञानसंवेदनाया अल्पत्वादज्ञान-संबंधो दुरुच्छेद्य इति ज्ञेयं । इदमेव दुःखध्वंसकारणीभूतं ज्ञानं तत्त्वज्ञानत्वेन सर्वैः स्वीकरणीयं प्रमाणपरायणैः ।ये तु अन्येऽसंगो ह्ययमात्मा नित्यचैतन्यरूप इत्यादिज्ञानं तत्त्वज्ञानपदेन व्यवहरन्ति तैः श्रद्धाजडैः कस्यापि मनःकल्पितस्य ज्ञानस्येदं तत्त्वज्ञानमिति नाम स्थापितं । न तत्र प्रामाणिकानामादरः। यो हि पदार्थो नास्त्येव तद्विषयकं ज्ञानं तत्त्वज्ञानमित्युच्यते चेत्तदा तत्त्वज्ञानस्योपहासः स्यात् । कथं च तेन कल्पितेन ज्ञानेन सत्यस्य दुःखस्य ध्वंसः । नहि काल्पनिको वन्हिः सत्यं शीतदुःखमपनेतुमलं । तस्मात् प्रदर्शितात्तत्त्वज्ञानस्वरूपादन्यन्न तत्त्वज्ञान-मिति बोध्यं ।

६

साम्प्रतं दुःखध्वंसस्य पुरुषार्थत्वेनाभिमतस्य कीदृशं रूपमिति वक्तुं प्रक्रमे । तदेव हि ज्ञानस्य फलं । दुःखस्य ध्वंसस्तु विषयान्तरज्ञानेन वा निद्रया वा स्वयंकालापगमेन वा जायत एव । परन्तु अज्ञानिनः पुनस्तद्विषयाणि दुःखानि प्रादुर्भवन्त्येव । तथाहि । ममत्वास्पदस्य स्वपुत्रस्य दुष्कर्म वीक्ष्य पिता दुःखायते क्षणमात्रं रोदिति च परन्तु

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

पुनर्ममत्वाज्ञानेन समाकृष्टचेतास्तस्मिन् स्निह्यति । पुनरपि दुःखाक्रान्तः शोचति । इत्येवमहर्निशं यावद्देहपातं तस्य प्रवर्तते दुःखं । तत्त्वज्ञानेन नष्टममत्वबुद्धिर्न कदाऽपि शोचति न पुनर्दुःखायते च । एतदेव दुःखस्य पुनरजननं प्रमाणीकृत्य दुःखध्वंसाख्यस्य मोक्षस्य नित्यत्वं वदन्ति सर्वे दर्शनकाराः । ननु देहपाते दुःखध्वंसो जायेतैव । तथाच त्वन्मते मोक्षस्यानायाससिद्धतया न तदर्थमुपायानुष्ठानस्यावश्यकत्वं । किंचानन्तानि पापानि कृत्वा मरणे त्वन्मते सर्वे मुक्ता भवेयुः । नचैतन्न्याय्यं । पापिनः कस्याऽपि मोक्षो न भवतीति सर्वसंमतं । उच्यते । ये खलु मोक्षं नित्यं स्वीकुर्वन्ति तेऽपि तत्र साक्षादुपायानुष्ठानं नांगीकुर्वन्त्येव । चित्तशुध्यर्थमुपायानुष्ठानं च न मोक्षस्य कारणं किंतु चित्तशुद्धेरेव । चित्तशुद्धिद्वारा मोक्षं प्रति कारणमिति तु निरर्थकं वचः । मोक्षनित्यत्ववादिनामुपायानुष्ठानं मम माता वंध्येतिवाचमनुसरति । यत्तु पापिनामपि मोक्षप्राप्तिः स्यादित्यापादनं तत् खलु भावानवबोधमूलकं । यो हि पापी पापान्याचरति स तदानीमेवाकीर्तिभीत्या यानि दुःखानि अनुभवति तेनैव तस्य पापस्य भोगः संजायते । यदि नैवं तदा पापिनां पापफलभोगार्थं नरकलोको नाम कश्चित्केनचिन्निर्मितः केन दृष्टोऽस्ति किं ? किंच नरकलोके पूर्वपापसंचयेन तदुपभोगार्थं पापिनो जायन्ते, ते च तत्र महान्तं क्लेशमनुभवन्ति इति ये श्रद्धाजडा मन्यन्ते तान् पृच्छामि । तत्र जायमानानां तेषां देहैर्भोगानुकूलैरेव भवितव्यं । तथाच यथाऽस्माकं विषयेभ्यः सुखं दुःखं च जायते तथैव तेषामिति को विशेषो नरकलोकस्य । तस्मात् सर्वैरपि दर्शनकारैरगत्या पापजन्याकीर्तिभीतिमूलकं यद्दुःखं तदेव तत्फलत्वेन स्वीकरणीयं । तथाच तेन भोगे वृत्ते क्षीणपाप एव देहः पततीति सिद्धं मोक्षाख्यस्य चरमदुःखध्वंसस्य मोक्षत्वं । एतेन कैश्चिदुक्तमंगनालिंगनजन्यं सुखमेव मोक्षत्वेनाभिमतं चार्वाकस्येति तत् प्रत्युक्तं । तत्सुखस्य पश्वादिसाधारणतया दर्शनकारत्वेन संमतस्य कस्यापि

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


असंमतत्वादिति ज्ञेयम् ।

७

बान्धवाः ! निरूपितं प्रमेयं । साम्प्रतमत्र प्रमाणं किमिति जिज्ञासामारभे । यद्यपि सर्वत्र मानाधीना मेयसिद्धिरिति सिद्धान्तमुररीकृत्य प्रथमतः प्रमाणनिरूपणमेव क्रियते तथापि मेयनिरूपणानन्तरं तत्साधनी-भूतस्य प्रमाणस्य निरूपणं रोचकं बुद्धिपथं झटित्यवतरतीति मया पश्चान्निरूपयितुमिष्टं । अस्तु । बालोऽपि दूराद्यदा मातुर्हस्ते मोदकं पश्यति तदैव तस्यास्तित्वं निश्चित्य तद्ग्रहणाय प्रवर्तते । लब्ध्वा सुखी भवतीति नः सर्वेषां विदितमेव । स एव बालो दूरान्मोदकस्य गंधं वा समाघ्राय मातुर्वा 'जात ! गृहाण मोदकं ' इति शब्दं श्रुत्वा वा तथा न प्रवर्तत इत्यपि स्वीक्रियत एव । प्रवर्तते च कुत्रचित्संदिग्धचेताः । लभतेऽपि च तेन प्रवृत्तो मोदकमपि कदाचित् । परन्तु पश्यन् यथा निःसंदिग्धो भूत्वा प्रवर्तते तथाऽनुमानशब्दयोर्नेति सर्वसंमतं । तथा च संदेहं समूलं नाशयतः प्रत्यक्षस्यैव प्रामाण्यमंगीकर्तुमुचितं न संदेहदूषित-योरनुमानशब्दयोः । किंच–अनुमानस्य प्रामाण्यं व्याप्तिज्ञानप्रामाण्य-मूलकं । तच्च व्याप्तिज्ञानमशक्यं । तथाहि । व्याप्तिज्ञानस्य कारणं भूयोदर्शनं। तदेव दूषितं चेत्कथं ततो व्याप्तिज्ञानं प्रमाणं भवेत् । कस्मिंश्चिद्ग्रामे वसन् कश्चित् तद्ग्रामस्थान् सर्वानेव जनान् मूढान-वलोक्य यदि व्याप्तिं गृण्हीयात् ' यावन्तो नरास्तावन्तस्ते सर्वे मूढा ' इति तदा सा व्याप्तिः प्रमाणं वा भवेत् । यत्र धूमस्तत्र वन्हिरिति वर्तमानकाले द्वित्रेषु स्थलेषु दृष्ट्वा भाविनोर्वा नष्टयोर्वा धूमवन्ह्योर्व्याप्तिः कथं स्वीकरणीया ? नच सामान्यं प्रत्यासत्तिरिति वाच्यं। असतः सामान्यस्य यदि प्रत्यासत्तित्वमिष्यते तदा वंध्यापुत्रस्यापि तदिष्यताम् । अस्य दोषस्य परिहाराय यदि धूमवन्हिव्यक्त्योरेव व्याप्यव्यापकभावः स्वीक्रियते तदा व्याप्तिग्रहणार्थं प्रत्यक्षमेव ते ... स्यान्तु

Padma Shri Ratna Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


तदाऽनुमानस्य संभवः। समानविषये प्रत्यक्षसामग्री कामिनीजिज्ञासावत् स्वातंत्र्येण प्रतिबंधिकेति न्यायसिद्धान्तस्य जागरूकत्वात्। ननु मृत्तिकाघटयोस्त्वया कारणकार्यभावः स्वीक्रियते न वा? यदि न स्वीक्रियते तदाऽनुभवबाधः। यदि स्वीक्रियते तदाऽनुमानप्रमाणस्वीकारः। यत्र कार्यं तत्र कारणमिति व्याप्तेर्निर्दुष्टत्वादिति चेन्न—इमौ हि कार्य-कारणशब्दौ भिन्नौ। पदार्थस्तु एक एव। यदि भिन्नौ तदा तथा प्रतीतिः स्यात्। तस्मादेकमेव घटं पदार्थं पश्यतो मानवस्य मानसिकी कल्पना कार्यकारणभावो नाम। किंच पुरोवर्तिन एव घटस्य मृदवस्था तथा घटावस्था सामान्यविशेषरूपा त्वया कारणत्वेन कार्यत्वेन स्वीकार्या। तथाच कथमेकस्मिन् पदार्थेऽवस्थाद्वयं। एक एव मानवस्तरुणः स्याद-थवा वृद्धः स्यान्नतु तरुणश्च वृद्धश्च। तस्मादनुमानकल्पनमप्रामाणिकमेव। शब्दस्तु तद्वक्तरि आप्तत्वसिद्धिं विना प्रमाणभावमभजमानः सुदूरापेत एव। किंच ध्वनिस्फोटनित्यादिभेदेन भिन्नानां शब्दानां मध्ये कस्य शब्दस्य प्रामाण्यं। अपिच शक्तिग्रहं विना शाब्दबोधो न भवतीति तत्संमतः सिद्धान्तः। तत्र वर्तमानकालिकाः सर्वे घटा नैकेन केनापि कथयितुं शक्याः। दूरे चानागतातीतकालवर्तिनः। नच जातौ शक्ति-रिति स्वीकारेण नेयमनुपपत्तिरिति वाच्यं। सर्वेषु घटेषु वर्तमानाया जातेरेवाभावात्। नहि वर्तमानकालिका घटा इवानागतकालीनास्तथा-ऽतीतकालीना घटा वर्तन्त इति कोऽपि प्रामाणिको मन्यते। येन तत्र जातिर्घटत्वाख्या तिष्ठेत्। तस्मात् शब्दस्य प्रामाण्यकल्पनं गतानुगतिक-मूलकं नानुभवमूलकमिति ज्ञेयं। अपिच प्रमाणोपासना प्रमेयलाभफलिकेति सर्वे जानन्ति। तथाच फललाभात् पूर्वं विसंवादकानां तथा संवादकानां शब्दानां समानानुपूर्वीकत्वेन तेषां स्वरूपं न निर्णेतुं शक्यं। फललाभा-नन्तरं निर्णयेन न किंचित्प्रयोजनमिति वृथैव शब्दस्य प्रामाण्यकल्पना। तस्मात् प्रत्यक्षमेवैकं प्रमाणं विहाय नान्यत्किमपि प्रमाणमिति सिद्धम्।

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

—:०:—

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


वाचकाः ! निरूपितं चार्वाकदर्शनकथितं तत्त्वज्ञानं। यद्यपि अनेन पुत्रभार्यादिषु तथा धनगृहादिषु वर्तमानं ममत्वं निराकृत्य तद्देह एव स्थापयता प्रथमभूमिकायां महदुपकृतं तथापि तावतैव दुःखस्य समूलं नाशो न भवत्येव। संदेहोऽपि अद्यापि बद्धमूल एव। तथाहि। यदि चत्वारि भूतान्येव तत्त्वानि तदा बीजसंभूते अंकुरे तथा देहे च जीवनरसस्य प्रसारणार्थं योऽवकाशो दृश्यते स किंमूल इति कथनीयं। नहि स वस्त्वभावमूलक इति वाच्यं। तथा सति अंकुर एव न जायेत। जीवनरसस्य सर्वत्रांकुरेऽनुस्यूतत्वात्। तथैव यदि ज्ञानाश्रयो देहस्तदा कथं स्वप्नज्ञानं स्मृतिर्वा ? स्वप्ने व्याघ्रादिदेहकृतस्य कर्मणः कथं मानुषे देहे ज्ञानं ? यदि च न कार्यकारणभावः किमपि तत्त्वं तदा घटार्थिनो मृत्तिकानयने प्रवृत्तिः कथं ? अतएव न केवलं प्रत्यक्षमेव प्रमाणं। अनुमानमपि प्रमाणत्वेन स्वीकुर्वन्तो जनाः सफला दृश्यन्ते। तस्मान्नेदं चार्वाकतत्त्वज्ञानं सर्वथा प्रमाणमिति मत्वा बौद्धतत्त्वज्ञानं प्रवर्तते। अत्रेदमवधेयं-यद्यपि अग्रे निरूपिता बौद्धदर्शनसिद्धान्ता भगवता बुद्धेनोपदिष्टेषु धर्मग्रंथेषु दृश्यन्ते तथापि नैतावता तेषां बुद्धकथितधर्ममूलकत्वं। दर्शनशास्त्रे आचारधर्मस्यासंबंधात्। तस्माद्बौद्धदर्शनमित्यस्य तत्संज्ञकं दर्शनं बुद्धितत्त्वप्रधानं वा दर्शनमित्येवार्थोऽवधारणीयः। अत्र चत्वारो विचारप्रवर्तकाः सन्ति। तेषां नामान्यपि वैभाषिक, सौत्रान्तिक, योगाचार, माध्यमिक, इति भिन्नानि सन्ति। प्रधानसिद्धान्ताश्च क्षणिकं, दुःखं, स्वलक्षणं, शून्यं इति सन्ति। कथमेतत्सर्वं सिध्यतीति वयं क्रमेण विचारयामः। अत्रेदं बोध्यं। अत्र बौद्धदर्शने पूर्वदर्शनस्वीकृताः सिद्धान्ताः संमता एव। अत्यल्पमिदमुक्तं। वस्तुतस्तु येषां पूर्वदर्शनस्वीकृतानां सिद्धान्तानां निराकरणमग्रिमदर्शने न कृतं ते सर्वेऽग्रिमदर्शनस्य संमता एवेत्यवधेयं। यथा प्रत्यक्षस्य प्रमाणत्वं बौद्धदर्शनस्य संमतमेवेत्यादि।

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

# द्वितीयं सोपानं ।

## बौद्धदर्शने वैभाषिकदर्शनम् (क्षणिकात्मवादः)

| प्रश्नाः— | उत्तराणि— |
|---|---|
| १ किं ज्ञेयं ? | १ भूतं भौतिकं चित्तं चैत्यं च । |
| २ कीदृशो ज्ञाता ? | २ क्षणिकविज्ञानरूपः । |
| ३ अज्ञानस्य स्वरूपं किं ? | ३ स्थिर एक आत्मा, स्थिरमेतत्सर्वमिति ज्ञानं । |
| ४ दुःखस्य स्वरूपं किं ? | ४ स्थिरमिदमिति भ्रान्तिजन्यश्चेतोविकारः । |
| ५ ज्ञानस्य स्वरूपं किं ? | ५ क्षणिकं सर्वमिति भावना । |
| ६ दुःखध्वंसस्य (मोक्षस्य) स्वरूपं किं? | ६ चरमो दुःखध्वंसः । |
| ७ एतेषु सर्वेषु प्रमाणं किं ? | ७ प्रत्यक्षमनुमानं च ? |

**भूतं मानबलेन सिध्यति यथा चित्तं तथैवान्तरं ।**
**आत्माऽहंमितिभाजनं क्षणिकविज्ञानस्वरूपो मतः ॥**
**मुक्तिर्वित् पररूपहानविमला तत्कारणं भावना ।**
**सर्वं च क्षणिकं प्रमाणमनुमाऽप्यस्तीह वैभाषिके ॥ १ ॥**

१

वाचकाः ? यथा वयं गंधरसरूपस्पर्शाश्रयीभूतानि पृथिव्यप्तेजोवायुरूपाणि भूतानि पश्यामस्तथैवावकाशरूपगुणाश्रयमाकाशं नाम पंचमं भूतमपि समुपलभामहे। तथाहि । लोके पृथिव्यां बीजे निक्षिप्ते ततोऽकुरो जायत इति सर्वैर्दृष्टमेव । तत्र पृथिवीधातुस्तस्य जायमानस्यांकुरस्य गंधकृत्यं करोति संग्रहकृत्यं च विधत्ते । अब्धातुस्तत्र क्लेदिमानं निर्वर्तयति । तेजोधातुश्च तत्र तेजस्वितामापादयति । अस्या अभावे जातोऽप्यंकुरोऽसमर्थ इव भवति । वायुधातुस्तं चालनेन वर्धयति । इदानीं तस्यांकुरस्य समग्रे देहे जीवनरसस्य संचालनार्थं योऽवकाशः सुषिरपदवेदनीय आवश्यकस्तस्य

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


निर्वर्तकः को वेति विचारणीयं। नहि पूर्वोक्ताश्चत्वारोऽपि धातव एतस्य निर्वर्तकाः। भिन्नगुणाश्रयत्वात्। तस्मात् सुषिरात्मकोऽत्यन्तं सूक्ष्मो य आकाशधातुरस्ति स एव तस्मिन्नेनं निर्वर्तयति। तेन जाता अंकुरा जीवन्तीत्यवश्यमभ्युपेयं। नच वस्त्वभावमूलकः स इति वाच्यं। जीवनरसपरमाणूनां सततं सर्वत्र विद्यमानत्वेन वस्त्वभावो दुरुपपाद इत्यवश्यमाकाशधातुरभ्युपेयः। एवमृतुधातुरपि कालापरपर्यायः फलस्य कारणं स्वीकर्तव्यः। अन्यथा वसन्त एवाम्राणां संभवः कथं? कथं च न हेमन्त इति दुरुपपादं स्यात्। एतेभ्यो मूलभूतेभ्योऽणुरूपेभ्यः सर्वमिदं प्रत्यक्षेण दृश्यमानं भौतिकं जगत् सिध्यति। न चाणूनां सत्वे किं प्रमाणमिति वाच्यं। अनुमानमेवेति जानीहि। तथाहि। लोके यज्जातीयं कार्यं दृश्यते तत्तज्जातीयैरेव कारणीभूतैरणुभिरुत्पाद्यते। यथा गोधूमानां धान्यराशिः खलु गोधूमैरेव क्रियते। ते च भौतिककार्योत्पादका अणवः सावयवा अपि चक्षुरादिभिरिन्द्रियैर्न गृह्यन्ते। ते च क्रमेण संहतिमापन्ना घटादिबुद्धिं जनयन्ति। ते च घटादिबुद्धिजनकाः संहतिमापन्नाः परमाणव एव शास्त्रे भूतपदेनोच्यन्ते। घटादयश्च भौतिकपदेन व्यवह्रियन्ते। सर्वेऽप्येते क्षणिका एव। अन्यथाऽर्थक्रियाकारित्वमेषां न स्यात्। तथाहि। यस्य कस्यापि पदार्थस्यास्तित्वमर्थक्रियाकारित्वेन स्वीकर्तव्यं। अर्थक्रिया नाम सुखदुःखान्यतरसाक्षात्काररूपभोगकारित्वमेव नान्यत्। घटोऽस्तीति तेन जलमानीय पिपासां शमयति। सर्पोऽस्तीति ततो दंशभिया जनः पलायते। तथा च यः पदार्थो दुःखमपि न ददाति सुखमपि न जनयति तस्य सत्वमपि जनो नांगीकरोत्येव। तथाच पदार्थस्य सत्वमर्थक्रियाकारित्वमेवेति सिद्धं। तच्चार्थक्रियाकारित्वं युगपत् वा क्रमेण वा सिध्येत् नान्यथा। तत्रार्थपदवाच्ययोः सुखदुःखयोः परस्परविरुद्धत्वाद्युगपदनयोरनुभवस्तु न भवत्येव। यदि युगपदनयोरनुभवः स्यात्तदाऽनयोर्विरोध एव न स्यात्। तस्मादगत्या क्रमेण

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

स्यात्। स च क्रम उत्पत्तिस्थितिलयात्मकत्रितयव्याप्तः। यो हि पदार्थः सुखं वा दुःखं ददाति स तु एतदवस्थात्रयभागेव भवेत्। अथेमा उत्पत्तिप्रभृतयोऽवस्थाः परस्परविरोधशीला नैकत्र युगपद्भवितुमर्हन्ति। ततश्चासामपि क्रम इष्टः। तथाचासामाश्रयाद्भेदे आश्रयो नित्यः स्यान्न स्याद्वा। यदि आश्रयो घटो नित्यस्तदा स क्रमेण सुखदुःखे दातुमसमर्थः स्यात्। न स्यादिति तु प्रत्यक्षबाधितमतस्तस्याभिः सहाभेद एव भवितुमर्हति। तथा सति आसां क्रियारूपाणामवस्थानां क्षणिकत्वात्तदाभिन्नस्य घटस्याऽपि क्षणिकत्वं गले पतितमेव। ननु घटस्य क्षणिकत्वं प्रत्यक्षबाधितमिति चेन्न प्रत्यक्षं हि स्थितस्य स्यान्नानुत्पन्नस्य। उत्पतिरपि स्थितेः स्याद्यदि स्थितिः पदार्थः स्यात्। एवमेव लयस्याऽपि उत्पत्तिस्थिती स्यातामिति तिसृणामपि आसामवस्थानां परस्परात्मकत्वमगत्या स्वीकार्यं। तथाच स्थितस्य प्रत्यक्षमिति रिक्तं वचः। किंच योऽयं क्षणात्मकः कालः प्रसिद्धः यत्र चासामवस्थानां संबंधः स किं जायमानात् घटाद्भिन्नोऽभिन्नो वा! यदि भिन्नस्तदा तस्य प्रत्यक्षं कथं? ततश्चाभिन्न एव स इति वक्तव्यं। तथा चाधारभूतः क्षणः, उत्पत्त्यादयोऽवस्थास्तथा घटश्च सर्वेऽप्येतेऽभिन्ना इति सिद्धं क्षणभंगवादेन। न च क्षणभंगवादे स्वीकृते घटस्योत्पत्तिरित्यादिर्व्यपदेशः कथमिति वाच्यं। राहोः शिर इतिवदस्य व्यपदेशस्य भ्रान्तत्वमेव। नच लोकबाध इति साम्प्रतं प्रमाणसिद्धस्यार्थस्य लोकेनाबाधनात्। नहि लोको नाम स्वतंत्रं प्रमाणं? येन ततो बाधः संभवेत्। तस्मात् भूतं भौतिकं च सर्वमपि क्षणिकमिति सिद्धं। एवमेव चित्तं चैत्यं च पदार्थजातं स्वतंत्रमेव स्वीकरणीयं। तत्र चित्तं नाम मस्तिष्कमिति चार्वाकेण यदुक्तं तन्न समीचीनं। ज्ञानस्य जडधर्मत्वासंभवात्। तथाहि। लोके हि द्विविधा पदार्था दृश्यन्ते। केचन स्वसत्तायां परमपेक्षन्ते केचन नेति। तत्राद्या घटादयस्तथा तद्धर्मत्वेन भासमाना नीलादयः। ते च स्वसत्तायां ज्ञानरूपं कारणान्तरमपेक्षन्ते। न च तथा ज्ञानं वा सुखं वा वेदना वा संस्कारो वा स्वसत्तायां

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



कारणान्तरमपेक्षते । तस्मान्नीलादिधर्मेभ्य एतेषां स्वानुभवसिद्धस्य वैलक्षण्यस्योपपादनाय कारणविशेषो वक्तव्यः । स च विशेषश्चैतन्यधर्मत्वं विनाऽन्यो दुरुपपादः। ननु मस्तिष्कमिति चित्तस्यैव नामान्तरमस्तु इति वाच्यं। ज्ञानं यदि मस्तिष्कस्य धर्मः कमलस्य गंध इवाग्नेरौष्ण्यमिव तदा तस्यैकरूपतैव स्यात् । तथाच जन्मतः कश्चन ज्ञान्येव वा भवेदज्ञानी वा । नतु जन्मतोऽज्ञानिनो निरतिशयबोधेन ज्ञानोत्पत्तेः संभवः । मस्तिष्कस्य विद्यमानत्वात् । यथा हि नीलरूपाश्रयस्य घटस्य नाशं विना न तत्र रक्तोत्पत्तेः संभवस्तथैव मस्तिष्कस्य विना नाशं नाज्ञानस्य नाशस्तथा ज्ञानोत्पत्तेः संभवः । धर्मनाशं प्रति धर्मिनाशस्य प्रयोजकत्वात् । अस्तु वा यद्यपि मस्तिष्क एव ज्ञानमुत्पद्यमानमिव दृश्यते तथापि न ज्ञानं तस्य धर्मः किंतु तदन्तर्वर्तिनोऽतिनिर्मलस्य चित्ताख्यस्य तत्त्वस्य। यथा हि दीपभाण्डे ज्वलति प्रदीपे सर्वत्रप्रसारी प्रकाशो न भाण्डस्य धर्मोऽपितु दीपस्यैव तथैव मस्तिष्के जायमानमपि ज्ञानं न मस्तिष्कस्य धर्मः किंतु चेतसः । तच्च चेतः सततं परिणामशीलं तत्तदिन्द्रियेभ्यो बाह्यपदार्थानामाकारान् गृण्हत्तदाकारपरिणामि भवति । तानेवातिचंचलान् परिणामान् वयं ज्ञानत्वेन व्यपदिशामः । यदि नैवं केवलं मस्तिष्कमेव ज्ञानजनकं तदा स्वप्नस्य संभवः कथं । नच मस्तिष्के संस्काराणां संभव इति वाच्यं । तत्र तेषां कल्पने सततमेकविषयिण्याः स्मृतेर्दुर्वारत्वात् । तस्माद्यथेच्छं ज्ञानोत्पत्तिसंभवानुभवान्यथानुपपत्त्या सततं परिणामशीलं चित्तनामकं तत्त्वान्तरं गले पतितमेव। ननु तज्जडं वाऽजडं वा ? आद्ये न वैलक्षण्यं । द्वितीये नित्यत्वापत्तिरिति चेन्मैवं तस्य जडत्वेऽपि कार्यतोऽत्यन्तं वैलक्षण्यात् । यथा हि शर्करायाःपृथिवीत्वेऽपि न मृत्समानत्वं। यथा वा दीपस्य जडत्वेऽपि न घटेन साम्यं तथैव प्रकृतेऽपि ज्ञेयं। अयं भावः-यथा खलु दुग्धस्य घासपरिणामस्य परिणामो घृतं तत्रैव च प्रज्वालितो दीपः प्रज्वलति तथैवात्यन्तं शुद्धस्य पंचभूतसमुदायस्य सारभूतोंऽशश्चित्तं । तत्रैव ज्ञानं प्रकाशते । निरूपितं

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



चित्तं। अधुना चैत्या निरूप्यन्ते। ते च 'रूपविज्ञानवेदनासंज्ञासंस्कार'-भेदेन संक्षेपतः पंचविधाः सन्ति। तत्र रूप्यन्त एभिरिति विग्रहेणेन्द्रियाणि तैर्हि विषया निरूप्यन्ते। विज्ञानपदेन घटपटारूपपदेन गृह्यन्ते। दिविषयं ज्ञानं गृह्यते। वेदनापदेन सुखदुःखान्यतरसाक्षात्काररूपो भोगो गृह्यते। तदर्थं खलु सर्वेषां सर्वा प्रवृत्तिः। घटादिविज्ञाने जाते ततः सुखमनुभूयते। सर्पादिविज्ञाने जाते ततो दुःखमिति सर्वेषामनुभव एवात्र प्रमाणं। अनुभवे जाते सम्यग्ज्ञानरूपः साक्षात्कारः संभवति। येन दृढोऽग्रिमप्रवृत्तिनिवृत्त्यन्यतरकारी संस्कारो जायते। स एव साक्षात्कारः संज्ञापदेनोच्यते। संस्कारस्तु स्मृतिकारणं पुनरपि रूपस्कंधस्य प्रवर्तने हेतुभूतः सर्वविदित एव। तदिदमनिशमावर्तते चक्रं। एतदेव मानवेनानुभूयमानस्य सुखदुःखान्यतरस्य कारणं ज्ञेयं। अयमाशयः—आदौ दूरतो हि बिडालो दुग्धं चक्षुषा वीक्षते। ततो दुग्धमित्यध्यवस्यति। ततः प्रवृत्तो यथेच्छं पिबति। तेन सुखायते। ततः दुग्धस्य पानं मे हितकरमिति चेतसि संस्कारो जायते। ततश्च पुनर्दुग्धे दृष्टे स प्रवर्तते। तस्य बिडालस्य दुग्धदर्शनमारभ्य दुग्धपानं मे हितकरमिति संस्कारजननपर्यन्तं पंचस्कन्धात्मकं चक्रमनिशमावर्तमानं तस्य बिडालस्य प्रवृत्तेः कारणं। एवमेव सर्वत्र बोध्यं। त इमे पंचप्रकाराश्चैत्या निरूपिताः। एतेऽपि क्षणिका एव। अर्थक्रियाकारित्वात्। एतेषामर्थक्रियाकारित्वं तु स्पष्टमेव।

२

निरूपिताः भूतभौतिकास्तथा चित्तचैत्याः पदार्थाः। अधुना तेषां ज्ञातुः स्वरूपं निर्णेतुं प्रयतामहे। तत्र यच्चार्वाकेणोक्तं देह एव ज्ञानाश्रयो ज्ञातेति तदतीव स्थवीयः। कस्य वा देहस्य ज्ञानाश्रयत्वं। किं जाग्रतः किं वा स्वाप्नस्य, अथ वा गाढं स्वपतः। ननु किं त्रयो देहा भिन्नाः? अथ किम्। यद्यभिन्ना एव देहास्तदा कथं मानुषदेहेन स्वप्ने पशुदेहकार्यं कृतं। कथं वा ज्ञानरहितस्य सुषुप्तावागमनं। ननु सुषुप्तौ

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


ज्ञानमेव नास्तीति वक्तव्यं । तथा सति सुप्तोत्थितस्य सुखानुभवो न स्यात् । किंच सुषुप्तौ ज्ञानसामान्यनाशे यथा नूतनो न किंचन वेत्ति तथैव सुप्तोत्थितोऽपि न किंचन विद्यात् । नचैवं दृश्यते । तस्माद्यत् खलु जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्याख्यासु तिसृष्वपि अवस्थासु वर्तते यच्च तासां तिसृणामप्यवस्थानामनुभावकं तदेवात्मपदेनात्र वक्तव्यं । तच्च ज्ञानादन्यन्न संभवति । तथाहि । द्विविधं ज्ञानं । आलयविज्ञानरूपं, प्रवृत्तिविज्ञानरूपं च । तत्राद्यं अहमास्पदं । द्वितीयं च ममकारास्पदं । यथा हि वातप्रेरिते तडागे तरंगाः संजायन्ते तथा रूपादिपंचस्कंधप्रेरिते चेतसि भिन्नभिन्नविज्ञानरूपास्तरंगा जायन्ते । तान् तरंगान् वयं वृत्तिरूपान् प्रवृत्तिविज्ञानपदेन व्यपदिशामः । यच्च निर्वाते तडागस्य स्वरूपावस्थानं तत् खलु तडागपदेन यद्यपि बोध्यते तथापि तत्र सूक्ष्मास्तरंगाः सन्त्येव । तथैव निर्विषयकल्पे चेतसि यत् स्वरूपेण स्वरूपाकारावस्थानं तदालयविज्ञानपदेन व्यपदिश्यते । इदमालयविज्ञानमेव बौद्धमतेऽस्मच्छब्दप्रत्ययविषयतया प्रवृत्तिविज्ञानमूलकतया चात्मत्वेनाभ्युपेतुमर्हति । नच देहः । तस्य व्यभिचारादित्युक्तमुपरिष्टात् । ननु अहमिदं जानामीति प्रत्ययबलादात्मा हि ज्ञानाश्रय इति प्रतिभाति । तथाहि । चक्षुषा घटेन सह संनिकर्षे जातेऽयं घट इति ज्ञानं जायते । ततो घटविषयकज्ञानवानहमित्यध्यवस्य द्रष्टा प्रवर्तते । तत्र ज्ञानमेव यदि ज्ञाता भवेत्तदा ज्ञानमेव कर्मत्वेन न सिध्येत् । नहि कर्ता कर्म भवति कर्म वा कर्ता । तस्माद्यो हि ज्ञानस्याश्रयः स एव कर्तेति युक्तं । नचालयविज्ञानं कर्तृ प्रवृत्तिविज्ञानं कर्मेति स्वीकारेण निस्तारः । आलयविज्ञानस्य क्षणिकत्वेन प्रवृत्तिज्ञानकाले तत्सत्त्वस्य वक्तुमशक्यत्वात् । मैवं । एकस्मिन्नेव ज्ञानतत्त्वे कर्मकर्तृत्वव्यपदेशस्याविरुद्धत्वात् । यथा हि अहं देवदत्त आत्मानं जानामीत्यत्रैक एव देहो विषयस्तथैव प्रकृतेऽपीति ज्ञेयं । अयमत्र गूढो भावः । निर्वातस्तडागः सूक्ष्मलहरीसंयुतोऽपि यथा निस्तरंग

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

इव भाति तथा सुषुप्तावालयविज्ञाननाम्ना व्यपदिश्यमानं ज्ञानतत्त्वं भाति। तदेव रूपादिपंचस्कंधप्रेरितं घटपटादिविषयग्राहकं प्रवृत्तिविज्ञाननाम्ना व्यपदिश्यमानं भवति तरंगकल्लोलव्यापृतस्तडाग इव। तत्र चित्तस्य सूक्ष्म-तरंगवृत्त्यवस्थाऽऽलयविज्ञानं, विशालतरंगवृत्त्यवस्था प्रवृत्तिविज्ञानं ज्ञेयं। नच तडागस्थानीयं स्थिरं तत्त्वं स्वीकरणीयमिति वाच्यं। स्थिरस्यार्थ-क्रियाकारित्वाभावेन स्वीकर्तुमशक्यत्वात्। तथाचाहमिदमाकारमेकं विज्ञानं जायते यत्र कर्तृत्वेनाहमस्तथा कर्मत्वेनेदम उपलब्धिर्भवति। युक्तं चैतत्। अन्यथा कर्मभासकाले कर्मणोऽभावादहमिदं जानामीति ज्ञानस्यानुदय एव भवेत्। येऽपि नैय्यायिकादयो नित्यमात्मानं स्वीकृत्य तस्य धर्मं ज्ञानं व्यपदिश्य पुनस्तस्य ज्ञानस्यानित्यत्वं स्वीकुर्वन्ति तदतीव हास्यास्पदं। आश्रयं नित्यं स्वीकृत्य धर्मास्यानित्यत्वं कथमपि उपपादयितुमशक्यं। तस्मादनित्यज्ञानाश्रय आत्माऽपि अनित्यः स्वीकरणीयः। तथाच द्वयोरनित्ययोः कल्पनापेक्षया ज्ञानस्यैवैकस्य कल्पनया सामंजस्ये किं वृथाऽऽश्रयकल्पनया। तस्मात्सिद्धं ज्ञानमेवात्मेति। किंच सुखदुःखयोः परस्परविरुद्धयोरनुभविता कथमेकः। यदि अनयोः सामानाधिकरण्यं तदा विरोधः कथं? तस्मात् प्रत्यक्षासिद्ध-स्यानयोर्विरोधस्य परिहारायात्माऽपि भिन्न एव स्वीकार्यः। तथाच नाखण्डत्वं। ननु सुखानुभवकर्तुर्दुःखानुभवकर्तुश्च भेदे दुःखपरिहारार्थं प्रवृत्तिर्न स्यात्। अतीतस्य दुःखानुभवितुरिदानीमभावादिति। सत्यं। नष्टज्ञानवासनावासितस्यैवोत्तरज्ञानस्य स्वीकारेणानुपपत्तिविरहात्। यथा हि न्यायनये 'अयमेकः, अयमेकः,' इति द्वयेकत्वविषयिणी बुद्धिर्द्वित्वबुद्धिं जनयति तथैव पूर्वज्ञानवासनावासितमेवोत्तरं ज्ञानं जायत इति न काप्यनुपपत्तिः। इदं च ज्ञानं स्वयंप्रकाशं। स्वसत्तायां प्रमा-णत्वेनान्यस्य कस्याऽपि अनपेक्षणात्। नहि ज्ञानमुत्पन्नमज्ञातमिति कस्याप्यनुभवः। अतोऽपि ज्ञानमेवात्मा।

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

३

निरूपितमात्मनो ज्ञातुः स्वरूपं । अधुनाऽज्ञानस्य स्वरूपमुच्यते । अज्ञानमेव हि बन्धस्य कारणं । तन्नाशेन हि परः पुरुषार्थः सिध्यति । तत्राज्ञानस्य यल्लक्षणं चार्वाकदर्शने कृतं 'अतस्मिंस्तद्बुद्धिः' इति तदेवात्रापि निर्दुष्टत्वेन स्वीक्रियते । केवलं विषय एव विमतिः । यद्यपि तत्र ममत्वाभाववति पुत्रकलत्रादौ ममत्वबुद्धिरज्ञानमेव तथापि देहे ममत्वबुद्धिरपि अज्ञानं । तथाहि । देहो हि भौतिकः पूर्वदर्शितरीत्या क्षणिक एव । नहि अक्षणिकस्यार्थक्रियाकारित्वं संभवतीत्यसकृदवोचाम । तथाचास्थिरे देहे स्थिरत्वबुद्धिरज्ञानमेव । ननु स्थैर्यबुद्धिरज्ञानं स्यान्न ममत्वबुद्धिरिति चेन्न ममत्वबुद्धेः स्थैर्यबुद्धिमूलकत्वात् । तथाहि । इह संसारे ये खलु पुत्रभार्यादीन् वा गृहधनादीन् वा ममत्वेन मन्यन्ते ते खलु तांस्तान् पदार्थान् स्थिरानेव मन्यन्ते । आत्मानं तेषां संबंधिनं स्थिरं । तत एव तेभ्यः सुखमृगतृष्णाव्याकुलास्तेषां लाभेन मोदन्ते । तेषां वियोगेन दुःखायन्ते । इदमेव दुःखकारणीभूतमज्ञानं जीवानां यत्तेऽस्थिरान् स्थिरान् मन्यन्ते । यदि नैवमथ स्थिराश्च गृहपुत्रादयः पदार्थास्तदा तेषु ममत्वज्ञानमज्ञानं कथं ? ममत्वाभावादिति चेत् स एव कुतः ? ननु पश्यतो मे ते विनश्यन्तीति चेदस्थिरत्वमेव तेषां ममत्वाभावे कारणमित्युक्तं भवति । तथा देहोऽपि अस्थिर इति ममत्वाभाववान् कुतो नेति वद ? ननु यद्येवं तदा ममत्वं कुत्रेति वक्तव्यं ? उच्यते । तदिदं ममत्वं स्थैर्यकल्पनामूलकमिति विद्धि। स्थिराः पुत्रादयः, स्थिरा एते सर्वे विषयाः, स्थिरश्चाहं तेषां भोक्तेति मन्यमानः खलु संसारे प्रवर्तमानस्तानस्थिरस्वभावानज्ञात्वा तेषां नाशे शोचति दुःखायते । मुहुर्मुहुः दुःखसागरे मज्जन्नपि न दुःखकारणमस्थिरेषु एतेषु स्थिरबुद्धिं त्यजति । यदा तु भूयोदर्शनाद्वा गुरूपदेशादिना वा सर्वमेतदस्थिरं क्षणिकं वेत्ति तदाऽस्य वैराग्यमुपजायते । वैराग्यं नाम विषयेषु अनासक्तिः । सा

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



चास्थिरेषु नोपपद्यत इति युक्तिसिद्धमपि । ननु कस्याप्येकस्य स्थिरस्य पदार्थस्य स्वीकृतिं विनाऽस्थिरत्वं प्रसिद्धं न स्यादिति चेन्न नहि अस्थिरत्वं स्थैर्याभावो येन प्रतियोगिनोऽप्रसिद्धया तस्याप्रसिद्धिः स्यात् किंतु क्षणिकत्वापरपर्यायमस्थिरत्वं पदार्थधर्म एव। स च प्रत्यक्षानुमानाभ्यां प्रमाणाभ्यां ज्ञायत एव। अतोऽस्थिरेषु भूतभौतिकेषु तथा चित्तचैत्येषु च पदार्थेषु स्थैर्यबुद्धिरेवाज्ञानमिति सिद्धं ।

४

निरूपितं दुःखकारणस्याज्ञानस्य स्वरूपं। इदानीं तत्कार्यस्य दुःखस्य स्वरूपं निरूपयामि। पूर्वं यत् प्रतिकूलवेदनाविषयत्वेन दुःखस्य लक्षणं कृतं तत्सर्वेषां सम्मतमेव । परन्तु तस्य देहधर्मत्वं यदुक्तं तदसमंजसं। यतोऽपमानदुःखदग्ध आत्मानमपि हन्तीति सर्वे जानन्ति । तत्र विचारयामः। यदि देहस्य सौख्यं तथा तत्परिपोषणमेव सुखस्य साधनं तदा कथं स देहस्य त्यागाय चेष्टते । न हि देहत्यागेन तस्य कोऽपि लाभः। न हि देहादतिरिक्तः कश्चन दुःखस्य वा सुखस्य वा भोक्ता त्वन्मते वर्तते। मन्मते तु प्रतिकूलवेदनैव दुःखं। सा च चित्तधर्मः। चित्तं च संस्कारवासनाप्रचालितं सततं परिवर्तते। यथा हि धनुषो निर्गतो बाणो यावद्वेगं प्रधावत्येव तथैवानादौ संसारे पूर्वदर्शितस्कंधपंचकप्रेरितं चित्तं विपरिवर्तत एव । तत्तद्वासनाजन्यभोगानुकूलं देहमपि लभत एव। इदमेवास्य पुनर्जन्म। यदि च चार्वाकमत इव देहपात एव मोक्षस्तदा कृतानां कर्मणां सामग्र्येण फलालाभान्नैष्फल्यं स्यात्। तस्मात् सा प्रतिकूलवेदना चित्तस्यैव धर्मो नतु देहस्य। किंच यं कमपि पदार्थमापाततः प्रतिकूलमिति ज्ञात्वा दुःखायमानोऽपि नरस्तं तत्त्वतः सम्यग्विज्ञायानुकूलमित्यवगच्छति। यथा बालो मात्रा दत्तं कषायं प्रतिकूलं विदन्नपि मातृबोधेन सुखकरमेव मन्यते। तत्र यदि देहादीनां स्थिराणां पदार्थानां दुःखं धर्मः स्यात्तदा तद्विकारिण्येव सुख-

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi.

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


बुद्धिः कथमुत्पद्यते । तस्मात् परिवर्तनशीलस्य क्षणिकस्य कस्यापि पदार्थस्य दुःखं धर्म इति अगत्या स्वीकरणीयमेव। इदं दुःखं चैत्यपदार्थान्तर्गतवेदनायामन्तर्भवति । अत्यल्पमिदमुक्तं । वस्तुतस्तु सर्वे एव सुखेच्छादयः फलत्वेनाभ्युपगम्यमाना वेदनापदार्थे एवान्तर्भवन्तीति ज्ञेयं।

५

निरूपितमज्ञानफलस्य दुःखस्य स्वरूपं । इदानीं ज्ञानस्य स्वरूपं वर्णयामि । तद्धि परमभ्यर्हितं । सकलपुरुषार्थसाधनं हि ज्ञानमिति सर्वतंत्रसिद्धान्तः। तत्र ज्ञानस्य स्वरूपं यच्चार्वाकेणोक्तं इन्द्रियार्थसंनिकर्षोत्पन्नमिति तत्खलु न पर्याप्तं । स्वाप्नज्ञाने इन्द्रियसंनिकर्षस्याभावात् । न च स्वप्नज्ञानमप्रमेति वाच्यं। तस्य ज्ञानस्य स्वाप्नकालीनबाधाविषयतयाऽप्रामाण्यासिद्धेः। यदि तु अन्यकालीनबाधविषयत्वमंगीकृत्याप्रामाण्यमापाद्यते तदा स्वाप्नकालीनबाधविषयत्वं स्वीकृत्य जाग्रत्कालीनस्य पदार्थजातस्य कुतो न बाधः? तस्माद्यस्मिन् काले यस्याप्रामाण्यं सिषाधयिषितं, तस्मिन् काले तस्य बाधोऽपेक्षित इति नियमः कर्तव्यः । तथा च स्वप्ने न स्वाप्नपदार्थस्य बाध इति कुतस्तस्याप्रामाण्यं। किंतु इन्द्रियार्थसंनिकर्षेण वा संस्कारेण वा, भावनातो वा या चित्तस्य वृत्तिः संजायते सैव ज्ञानपदेन स्वीकर्तव्या। वस्तुतस्तु यस्मिन् संजाते विषयः सम्यक् प्रकाशते एतादृशश्चेतोव्यापारविशेषो ज्ञानमिति तु लक्षणं योग्यं। तच्च ज्ञानं स्वयंप्रकाशं। न हि अन्धो यथा स्वगमनाय चक्षुष्मन्तमपेक्षत एवं चक्षुष्मानपि अन्यं चक्षुष्मन्तमपेक्षत इति दृष्टचरं। तथैव प्रकृतेऽपि घटादयः स्वप्रकाशार्थं ज्ञाननाम्नीं चेतोवृत्तिं कांक्षमाणा यथा दृश्यन्ते तथा न ज्ञानं ज्ञानान्तरमपेक्षत इति वक्तुं शक्यं। अनवस्थापत्तेः। प्रकृते च बौद्धमते मोक्षसाधनीभूतं तत्त्वज्ञानं 'अस्थिरमेतत्सर्वं' इति भावनमेव। वाचकाः! सर्वत्रेह दर्शनशास्त्रे तत्त्वज्ञानपदेन वस्तुस्वरूपबोधकं प्रमाज्ञानमेव गृह्यते। तथाचास्थिरेषु एतेषु अस्थिरत्वबुद्धिः प्रमैव

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



तच्चास्थिरत्वभावनमसकृदनुभवेन वा गुरुवाक्योपदेशद्वारा वा भावितं अनादिकालसंचितां पदार्थेषु स्थिरत्वबुद्धिं समूलमुच्छिनत्ति। तेनायं दुःखान्मुक्तमात्मानं मन्यते। ननु प्रस्तुतमते नास्ति पंचस्कंधादतिरिक्तः कश्चनात्मा नाम पदार्थः। येन तस्य बद्धत्वं वा मुक्तत्वं वा स्यात्। पंचस्कंधा अपि क्रमेणोत्पादविनाशशीलाः क्षणिका एव। तत् कस्य वा बंधः कस्य वा मोक्ष इति चेत्—न कस्यचिद्बन्धः न कस्याऽपि मोक्ष इत्यवगच्छ। एतच्चानुपदमेव दुःखध्वंसस्वरूपनिरूपणप्रस्तावे वयं सविशेषमुपपादयामः।

६

उपपादितं तत्त्वज्ञानस्य स्वरूपं। सम्प्रति तत्फलस्य दुःखध्वंसस्य स्वरूपं निरूपयामि। यतोऽयमेव दुःखध्वंसो मोक्षपदेन दर्शनशास्त्रेषु तत्र तत्र व्यपदिश्यते। इममेव सर्वे दर्शनशास्त्रकाराः परमं पुरुषार्थं वदन्ति। यतो नायं पुनरपि नश्यति वा समुत्पद्यते वा। तत्र दुःखस्योत्पादविनाशशीलतया तस्य ध्वंसोऽसकृज्जायत एव। यदि दुःखं नाम सततं वर्तमानं स्यात्तदा सर्वेषां तदभीप्सितमेव जायेत। न तु तथाऽनुभूयते। तस्मात्तस्य ध्वंसो नियतकालात् क्षणरूपादूर्ध्वं जायेतैव। परन्तु पुनरपि दुःखं यथा नोत्पद्येत तथोपायानुष्ठानमेवेप्सितं। तत्र संसारे घटीयंत्रस्थाः कुंभा इव सुखदुःखे सततं विपरिवर्तेते। सुखादूर्ध्वं दुःखं दुःखस्यानन्तरं सुखमिति नित्यं वयमनुभवामः। तत्र ज्ञानोत्तरं जायमाने दुःखध्वंसे चरमत्वं च स्वसमानाधिकरणदुःखप्रागभावासमानकालीनत्वमेव। एतच्च सर्वसम्मतमित्यपि सत्यं तथापि चार्वाकस्य मते देहस्यैवात्मत्वेन देहनाशे तदाश्रितस्य दुःखस्य नाशः सहसैव भवेदिति ज्ञानस्यैव कुतो दुःखनाशकत्वं तन्मते स्यात्। न च पुनर्दुःखस्य संभवः। देहस्यैवाभावात् कुत्र दुःखं समुपत्द्येत? किं च तन्मतेऽज्ञानस्योत्पत्तिर्देहेन सहैव वक्तव्या। देहश्च सादिरिति तदाश्रितमज्ञानमपि सादि स्यात्। ततश्च सादिपदार्थस्य नाशं प्रति ज्ञानस्य प्रयोज्यत्वं कथं? स च कारणान्तराद्वा स्वयमेव

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


वा स्यादिति ज्ञानस्यान्यथासिद्धत्वमेव भवेत् । अतो दुःखध्वंसस्य चरमत्वसिध्यै तत्कारणस्याज्ञानस्य समूलमुच्छित्तिरवश्यं वक्तव्या । सा च ज्ञानं विना नेति तद्विनाश्यमज्ञानमनादीति सिद्धं । तस्याज्ञानस्यानादित्वसिद्धये तदाश्रयोऽपि अनादिः स्वीकर्तव्य एव । न च प्रत्यक्षोत्पादविनाशस्य देहस्यानादित्वं संभवति । अतः कश्चन देहादन्यस्तदाश्रयोऽनादिः स्वीकर्तव्य इति प्राप्तं । तस्य चाज्ञानाश्रयस्यैकान्तनित्यत्वे तस्य पूर्वोक्तरीत्याऽर्थक्रियाकारित्वासंभवेन तस्य सत्त्वमेव न स्यात् । ततश्च स सततं परिणमनशील एव स्वीकरणीय इति प्राप्तं । स च चित्तमेव नान्यदिति अस्मत्सिद्धान्तासिद्धिः । ननु त्वन्मतेऽपि चित्तस्य निरन्वयपरिणामितया कथमज्ञानस्यानादित्वमिति चेच्छ्रूयतां । लोके मृत्तिकायाः सकाशात् घटादयो जायन्ते । तत्र मृत्तिका कारणं घटादयो हि कार्यं । तत्र घटं प्रति मृत्तिका कथं कारणं भवतीति विचारयामः । घटे चिकीर्षिते कुलालो वनान्मृत्तिकामानीय तत्र जलं निक्षिपति । ततः पादाभ्यां भूयोभूयो निपीड्य घटाकारग्रहणयोग्यां तां करोति । ततश्च क्रमेण दण्डजनितभ्रमिशालिनि चक्रे मृच्चयमारोप्य क्रमेण स्थूलीभावमापादयन्नन्ते जलाहरणोपयोगिनमाकारं प्राप्तं तं यदा पश्यति तदा तं घटं मन्यमानस्तस्माच्चक्रादवतारयति । अत्रेदं विचारणीयं । वनान्मृत्तिकानयनमारभ्य घटस्योत्पत्तिपर्यन्तमनेका अवस्था मृदः संवृत्ताः । तासां घटं प्रति कारणत्वं स्वीकर्तव्यं न वा ? अथवा मृद एव कारणत्वं स्वीकर्तव्यं वा ? तत्र कारणस्य अव्यवहितपूर्ववृत्तित्वलक्षणतया घटोत्पत्तेः प्रागव्यवहिता या कपालाकारावस्था सैव घटस्य कारणं भवितुमर्हति । तत्रापि सा नष्टा वा कारणं विद्यमाना वा ? विद्यमानायास्तस्याः कपालावस्थायाः कारणत्वं तु अनुभवविरुद्धं । नहि संभवति कपालावपि विद्यते घटोऽपि जायत इति । न च का क्षतिरिति वाच्यं । तथा सति कपालाभ्यां जातस्य घटस्य परिमाणाधिक्यं स्यात् । न चैतत् दृश्यते । तस्मात् कपालनाशे जाते


Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


घटो जायत इति वक्तव्यं। अयमेव निरन्वयो नाशो निरन्वयश्चोत्पाद इति बौद्धसंमतः सिद्धान्तः। न च तथा सति कपालयोः कारणत्वं कथमिति वाच्यं। ध्वंसप्रतियोगित्वेनेति अवगच्छ। तत्र वनान्मृत्तिकानयनमारभ्य घटोत्पत्तिपर्यन्तं मृत्तिका कारणमिति व्यपदेशमात्रं न तु तास्ता अवस्था विहाय मृत्तिका नाम किमपि वस्तु अस्ति यत् कारणं स्यात्। अवस्थानां च क्षणभंगुरत्वात्तदभाव एव कारणमिति स्वीकर्तव्यमेव। इत्थमेव चित्तस्य वेदनासंज्ञासंस्काररूपावस्थाविशेषेषु कारणत्वं ज्ञातव्यं। कामक्रोध-सुखदुःखेच्छादीनां विकाराणां कारणं चित्तमिति व्यपदिश्यते केवलं। न तु तत् मृत्तिकावत्किमपि वस्तु। विकारा एव तु अनुभूयन्ते। त एवार्थक्रियां कुर्वन्तीति तेषामेव सत्त्वं। ज्ञानाज्ञाने अपि विकारावेव। नन्वेवं बंधः कस्य? मोक्षः कस्य? किं च बंधोऽन्यस्य मोक्षश्चान्यस्येति असंग-तिर्भवेत्। मैवं। यद्यपि ज्ञानाज्ञाने बंधमोक्षौ सुखदुःखे सर्वमेतद्विकार एव तथापि तेषु व्यपदिश्यमानं चित्तं नामावस्त्वपि भासते। अहमिति प्रतीतिरपि तत्रैव जायते। यथा मृत्तिकायामवस्तुभूतायामपि घटाद्या-श्रयत्वव्यपदेशः, तथैवावस्तुभूते चित्तेऽहंप्रतीतिविषयतया भासमाने बंधमोक्षाश्रयत्वव्यपदेशः सुखदुःखाश्रयत्वव्यपदेशोऽपि। एतेन बौद्धमते कस्य मोक्षः कस्य वा बंध इति प्रश्नो व्याकृतः। न चैवं बंधस्य तथा मोक्षस्यावस्तुत्वेन तुच्छत्वादपुरुषार्थत्वप्रसंगः। ज्ञानपर्यन्तं तस्य सत्यत्वेन भासमानस्याज्ञानस्य तथा बंधस्य तथा तज्जन्यस्य दुःखस्य सत्त्वेन तन्निवृत्त्या पुरुषार्थत्वोपपत्तिः। यदि नैवं तदा सत्यस्य बंधस्य निवृत्तिः खकुसुमकल्पैव भवेत्। तस्मान्मोक्षवादिभिर्बन्धस्य मिथ्यात्वं स्वीकर्तव्यमेव। तदेतच्चित्ततत्त्वं पूर्वोक्तपंचस्कंधात्मना सततं परिवर्तमानं तत्तद्वासनावशात्त-त्तदुपभोगयोग्यं शरीरादिकमादाय भोगं समनुभवति। इदमेवास्य पुनर्जन्मेत्युच्यते। यदि प्राक्तनं जन्म न स्वींक्रियते तदा वासनादीनां निर्हेतुत्वं स्यात्। तस्मादधुनाऽनुभूयमाना वासना जन्मान्तरानुभूतवासना-

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi.

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

मूलिका वासनात्वात् नक्तमनुभूतवासनाजन्यदिनवासनावदिति अनुमानेन जन्मान्तरं सिध्यत्येव । यदा च जीवः सततं दुःखमनुभवन्ननुभवबलाद्वा गुरूपदेशादिना वा पूर्वोक्तरीत्या बंधस्य मिथ्यात्वं जानाति तदा तस्य दुःखध्वंसश्चरमः संपद्यते । न पुनस्तेन दुःखमनुभूयते । अयमेव तस्य मोक्षः । न च पुनर्जननं कस्मान्न भवति तस्येति वाच्यं । जननकारणीभूतस्य पंचस्कंधप्रेरकत्वेनाभिमतस्यादृष्टनाम्ना तत्र तत्र व्यपदिष्टस्य वासनाजालस्य तथा तत्कारणीभूतस्याज्ञानस्य तत्त्वज्ञानेन समूलमुच्छेदात् । तथा च कारणाभावादेव कार्याभाव इति बोध्यं । ननु मोक्षावस्थायामपि चित्तं क्षणिकविकारान् जनयति न वा ? यदि न जनयति तदा तस्य स्थिरत्वप्रसंगः । यदि जनयति तदा पुनर्बन्धः कुतो नेति वक्तव्यं । उच्यते । चित्तस्य चलस्वभावतया यद्यपि तत् मोक्षावस्थायामपि विकारान् जनयति तथापि न ते प्रवृत्तिविज्ञानरूपाः । आलयविज्ञानरूपा एव विकारास्तत्र जायन्त इति बोध्यं । प्रवृत्तिविज्ञानरूपविकारसत्त्व एव दुःखोत्पत्तिरिति सुषुप्त्यनुरोधात् स्वीक्रियते । तथा च न कापि अनुपपत्तिरिति सिद्धं नः समीहितं ।

७

सर्वमिदं विविधं प्रमेयं निरूपितं । परन्त्वत्र प्रमाणोपन्यासस्तु आवश्यकः । प्रमाणेन हि प्रमेयं सिध्यति नान्यथेति सम्प्रति प्रमाणं विचारयामः । यदुक्तं चार्वाकेण प्रत्यक्षमेकमेव प्रमाणं नान्यदिति तदनुभवविरोधान्न युज्यते । तथाहि । गृहीतधूमधूमध्वजसाहचर्याः कृषीवला अपि धूमस्य दर्शनेन धूमध्वजं लभन्ते । यदि न कश्चन धूमधूमध्वजयोः परस्परं संबंधस्तदा कथं ते धूमध्वजं लभन्ते नान्यं कंचन पदार्थं । यदि तु संभवतः स लाभ इत्युच्यते तदा संभवस्य प्रमाणत्वं कुतो नेति वक्तव्यं । क्वचित् व्यभिचारादित्युच्यते तदाऽत्र व्यभिचारो दर्शनीयः । ननु गोपालघुटिकादौ व्यभिचारः सुलभ इति

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

वाच्यं । येन रूपेणानयोः संबंधो गृहीतः तन्न गोपालघुटिकादौ वर्तमाने धूमे वर्तते । तच्च रूपं अविच्छिन्नमूलत्वं । व्यभिचारी धूमस्तु च्छिन्नमूल इति न दोषः । ननु अविच्छिन्नमूलत्वं यदा ज्ञायते तदा वह्नेः प्रत्यक्षमेव स्यात्तथा च नानुमानस्यावसर इति चेन्न प्रत्यक्षेऽपि वह्नौ धूमकारणत्वेन सोऽनुमानविषयो भवितुमर्हति । न हि कारणत्वं प्रत्यक्ष-विषयः । तथा च धूमकारणत्वेन वह्नेर्ज्ञानमनुमानमेव न तत् प्रत्यक्षं । किंचौदनतण्डुलयोः कार्यकारणभावं गृहीत्वौदनार्थी तण्डुलानयने प्रवर्तते । अत्यल्पमिदमुक्तं । वस्तुतस्तु सर्वमेव कार्यजातं तत्तत्कारणेभ्यः संभवतीति निश्चित्य तत्तत्कार्यार्थी तत्तत्कारणानां संपादने प्रवर्तते । तत्र प्रवृत्ति-कारणीभूतं कार्यं कारणजन्यमिति ज्ञानमनुमानमेव न प्रत्यक्षं । तस्य सद्वस्तुमात्रविषयत्वात् । अपि च निंबं दृष्ट्वा वृक्षत्वं निश्चिनोति तत्र निंबत्ववृक्षत्वयोः कः संबंधः येन निंबत्वे ज्ञाते वृक्षत्वं ज्ञायते । न च निंबत्वं वृक्षत्वमेकमेवेति वाच्यं । वृक्षत्वस्य निंबत्वाभाववति चंपकवृक्षेऽपि सत्त्वात् । न च कदापि निंबत्वं वृक्षत्वमतिक्रामति । यदि निंबत्वं वृक्षत्वमतिपतेन्नूनं निंबो वृक्षो न स्यात् । तस्मान्निंबत्वस्य योऽयं वृक्षत्वेन सहाविनाभावः संबंधः स एव वृक्षत्वस्य ज्ञापक इति समागतमनुमान-प्रमाणेन । अविनाभावसंबंधः खलु अनुमानं । तदेव प्रमाणं च । परं च यद्यनुमानं प्रमाणं न तदा भूतभविष्यत्कालयोर्ज्ञानमेव न स्यात् । न च तौ न स्त इति वाच्यं । तयोरभावे वर्तमानकालस्याप्यभावे कालो न स्यादेव । तथाहि । कुलालो हि घटं करिष्यामीति निश्चित्य मृत्तिकानयने प्रवर्तते । मृत्तिकां च समानीय घटमुत्पादयति । तेन च जलमाहृत्य स्वशरीरयात्रां कुरुते । तत्र घटनिर्माणकालेऽग्रिमं सर्वमपि मृत्तिकानयनमारभ्य घटनिर्माणपर्यन्तं कार्यजातं भविष्यत्कालसंबंधि । तत्र यदि भविष्यत्काल एव नास्ति तदा कुतस्तत् कार्यजातं । यदि कार्यजातमेव न मनसि कल्पयति तदा कुलालस्तत्कथं कुर्यात् ।

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

तदभावे च कुतो वर्तमानकालः। तस्मादस्य सर्वस्योपपत्तये भविष्यत्काल-संबंधोऽवश्यं वाच्यः। तथाचानुमानं प्रमाणं सिद्धमेव। अपरं च यदि नानुमानं प्रमाणं तदा प्रत्यक्षमपि कथं प्रमाणं भवेत्? प्रत्यक्षस्य हि इन्द्रियार्थसंनिकर्षजन्यत्वेन तस्य प्रामाण्यं वक्तव्यं। तत्रेन्द्रियाण्यतीन्द्रियाणीति किं तेषां सद्भावे प्रमाणं। नन्विन्द्रियाणि प्रत्यक्षाणि कुतो नेति चेन्न तथा सति अनुभवापलापः स्यात्। एकस्यां नर्तक्यामैक्यभावमापन्नानां चक्षुषां समुदायस्याऽपि प्रत्यक्षं स्यात्। तस्मात् प्रत्यक्षरूपज्ञानसाधनत्वेन तदनुमानमेव कर्तव्यं नान्या गतिः। अन्यच्च—प्रत्यक्षप्रमाणसिद्धस्यैव पदार्थस्य स्वीकारे चार्वाकस्य व्यवहार एव दत्ततिलाञ्जलिर्भवेत्। तथाहि। कस्यचिद्वस्तुनः समानयनार्थमापणं गतश्चार्वाकः कथं स्वगृहस्य वा पुत्रादीनां वाऽस्तित्वं स्वीकुर्यात्। पुत्रस्य ग्रामान्तरं गतस्य कथं वा सत्त्वं स्वीकुर्यात्। नचापणस्य सत्त्वं प्रत्यक्षसिद्धं। विदूरत्वादापणस्य। दूरात् प्रतिकूलं शब्दं साक्षात्कृत्य व्याघ्रागमनं निश्चित्य कथं कृतं पलायनं चार्वाकः समर्थयेत्। कथं च महानसे पच्यमानानामपूपानां गंधमाघ्राय तल्लाभसंभावनाजन्यं हर्षमुपपादयेत्। किंबहुना—सर्वक्लेशकारणं जठरानलं कथं वा साधयेत्। पृष्ठमपि कथमस्तीति कथयेत्। तस्मादगत्याऽनुमानं प्रमाणमेषितव्यमेव। प्रत्यक्षं हि वर्तमानकालविषयं, त्रैकालिकं चानुमानं। अनुमानेन हि अनागतमनर्थं चिन्हैरनुमाय तत्प्रतिकाराय प्रयतन्ते बुद्धिमन्तः। अतोऽनुमानं प्रमाणं सिद्धं। ननु अविनाभावसंबंधो वर्तमानयोर्धूमधूमध्वजयोः स्यान्नातीतभविष्यतोरिति चेत् तत्र धूमत्वधूमध्वजत्वघटितोऽविनाभावः संबंधोऽस्त्येव नचातीतेऽनागते धूमे वा धूमध्वजे वा धूमत्वस्य वा धूमध्वजत्वस्य वा सत्त्वे किं प्रमाणमिति वाच्यं। तत्र धूमपदस्य धूमध्वजपदस्य प्रयोग एव प्रमाणं। अन्यथाऽस्य पदस्य यत्र कुत्रापि प्रयोग आपद्येत। अस्मादनुमानप्रमाणात् कथितानि सर्वाणि प्रमेयाणि सिध्यन्तीति ज्ञेयं।

—:o:—

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

## [ सौत्रान्तिकदर्शनावतरणिका ]

निरूपितो वैभाषिकसिद्धान्तः क्षणभंगवादप्रधानः। तत्र घटादिपदार्थानां सत्त्वमंगीकृत्य क्षणिकत्वमुपपादितं। तत्रेदं चिन्त्यते। पूर्वं घटादीनां सत्त्वं ततो ज्ञानं वा पूर्वं घटज्ञानं ततो घटो वेति। वैभाषिकसिद्धान्तमनुसृत्य तु प्रथमं घटादीनां सत्त्वं ततो घटज्ञानमिति सिद्धान्तः संभवति। अनुभवस्तु—पूर्वं घटज्ञानं ततो घट इति अस्ति। तथाहि। कूपाज्जलमुद्दिधीर्षुः कुलालो मृदि भाण्डाकारग्रहणयोग्यतां वीक्ष्य मृदि तादृशमाकारमुत्पादयितुं प्रयतमानः प्रथमं स्वचेतसि तादृशमाकारं कल्पयति। तादृशमाकारमनुसृत्य बाह्यं घटं रचयति। एवं च प्राथमिको घटः स एव यश्चेतासि कल्पितः। तथा च कथं ज्ञानस्य पश्चात्तनत्वं। यदि तु घटेन साकं चक्षुःसंयोगे जाते ततो घटज्ञानं जायत इति सार्वत्रिकमनुभवं प्रमाणीकृत्य पूर्वं घटस्य सत्त्वं ततो घटज्ञानमित्युच्यते तदापि तज्जायमानं ज्ञानं घटज्ञानं कथं? केवलं तज्जायमानं ज्ञानमित्येव भवेत्। नैवमनुभवः। अतोऽपि घटज्ञानं पूर्वं बाह्यो विषयो घट इति सिध्यति। किं च यदिदं दुःखं नाम जायते तत्किं प्रतिकूलविषयसंसर्गाज्जायते उत विषया एव दुःखरूपाः। यदि विषयाणां दुःखरूपत्वं नास्ति तदा बालः सर्पकल्पनया कथं बिभेति रोदिति च। स च मनसि तादृशं सर्पं कल्पयति येन दुःखं जायते। नचैवं योगाचारमतप्रवेश इति सिद्धान्तहानिरिति वाच्यं। तन्मते तु विषयाणामसत्त्वमेव। मन्मते तु विषयाः सन्त्येव। अतो विषयाणामनुमितसत्ताकत्वं तथा दुःखरूपत्वं चावश्यं स्वीकर्तव्यमिति सौत्रान्तिकविचारः प्रवर्तते। तत्र येषु साम्यं तत्र संक्षेपेण लिख्यते। यत्र तु भिन्ना मतिस्तत्र सविस्तरं स्वसिद्धान्तप्रातिपादनं क्रियते।

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

# तृतीयं सोपानं ।

## बौद्धदर्शने सौत्रान्तिकमतं (दुःखविज्ञानात्मवादः)

| प्रश्नाः | उत्तराणि— |
|---|---|
| १ किं ज्ञेयम् ? | १ चित्तं चैत्यं भौतिकं च। |
| २ कीदृशो ज्ञाता ? | २ क्षणिकदुःखविज्ञानरूपः। |
| ३ अज्ञानस्य स्वरूपं किं ? | ३ एतेषु ज्ञेयेषु सुखदत्वमतिः। |
| ४ दुःखस्य स्वरूपं किं ? | ४ सुखदत्वभावनाजन्यश्चित्तविकारः। |
| ५ ज्ञानस्य स्वरूपं किं ? | ५ दुःखमिति भावना। |
| ६ दुःखध्वंसस्य (मोक्षस्य) स्वरूपं किं ? | ६ चरमो दुःखध्वंसः। |
| ७ एतेषु सर्वेषु प्रमाणं किं ? | ७ प्रत्यक्षमनुमानं च। |

**चित्तं मानबलेन सिध्यति यथा नैवाऽपि भूतं तथा।**
**भातीहाखिलभौतिकं तु हृदये स्यात्स्वप्नवत्तत्ततः॥**
**आत्मा पूर्ववदेव मुक्तिरपि च स्यात्कारणं भावना।**
**सर्वं दुःखमिहापि मानमखिलं सौत्रान्तिकानां मतम्॥ १॥**

१

ननु भूतं भौतिकं चित्तं चैत्यमिति चतुर्विधं पदार्थजातं स्वतंत्रसत्ताकमुपपादितं। तन्न विचारं सहते। प्रायः सर्वो हि जनो यत्किंचिदभिलषन् कार्यं करोति। न हि प्रयोजनमनुद्दिश्य मन्दोऽपि प्रवर्तते। तथा च तादृशप्रयोजनसिद्धये साधनमावश्यकं। तेन स तादृशप्रयोजनसिध्दावुपयोगिनं पदार्थमपि कल्पयति। सिध्दायां कल्पनायां स तादृशं भौतिकं बाह्यं पदार्थमपि विरचयति। यथा कश्चन धीमान् मानवो वर्षातपाभ्यां दुःखमनुभवंस्तत्परिहारेणात्मरक्षणं प्रयोजनमभिलक्ष्य यदा चिन्तयति तदा गृहं मनसि कल्पयति। तदपि तथा कल्पयति यथा तेन वर्षातपदुःखं परिहृतं भवेत् सुखेन स्वनिवासश्च स्यात्। तत् सर्वं चेतसि

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

परिकल्प्य ततस्तद्बोधकमाकारविशेषं पत्रे समारोपयति । अथ च तादृशपत्रसमारोपितं तं तमाकारमभिलक्ष्य गृहनिर्माणकुशलैर्गृहं निर्मापयति । भूयो भूयः परीक्षते च भौतिकं गृहं चैत्यं गृहं नातिक्रामति इति । यदि अतिक्रामति तदा तन्निःसार्य पुनरपि स्वचित्तवृत्तिगृहानुरूपमेव तन्निर्मापयति । अत्रेदं विचार्यं । तान्येतानि त्रीणि गृहाणि क्रमेण चित्तपत्रभूमिषु वर्तन्ते । तत्र कस्य वा सत्यत्वं? कस्य वाऽर्थक्रियाकारित्वं? यदा भूमिष्ठस्य गृहस्य तदा तन्नाशेऽपि पत्रस्थं गृहमवलोक्य पुनरपि नूतनं भूमौ गृहं निर्मातुं शक्नोति । अथ पत्रस्थस्य तदा नष्टेऽपि तस्मिन् पत्रे चित्तस्थं तद्गृहं संस्मृत्य पुनरपि पत्रस्थं भूमिष्ठं च गृहं विधातुं शक्नोति । तस्मात् सर्वेषामपेक्षया चित्तस्थं गृहं सत्यं तदेवार्थक्रियाकारीति सिद्धं । ननु चित्तस्थेन गृहेण कथं वर्षातपयोर्निवारणं शक्यं नहि ओदनकल्पनयोदरपूर्तिरनुभूतपूर्वेति चेन्न चित्तस्थेन गृहेण चित्तस्थयोर्वर्षातपयोर्निवारणसंभवात् । यदि तु चित्तस्थौ वर्षातपावेव न स्तस्तदा कयोर्निवारणाय गृहं कल्पयतीत्यपि वक्तव्यं । तस्माच्चित्तस्थेन गृहेण चित्तस्थौ वर्षातपौ निवारयति भौतिकेन भौतिकौ । नचैवं भौतिकस्य स्वतंत्रमस्तित्वं समागतमिति वाच्यं । भौतिकवर्षातपयोस्तथा तद्वारकस्य भौतिकस्य गृहस्य चित्तस्थवर्षातपाभ्यां तथा चित्तस्थगृहेण चोपपत्तौ पृथक्सत्ताकल्पने प्रमाणाभावात् । पृथक्सत्ता भौतिकस्य तदा स्याद्यदि ज्ञानं विना भौतिकः पदार्थः सिध्येत् । ननु ज्ञानं हि भौतिकस्य पदार्थस्य सत्त्वे कारणमिति तद्विना भौतिकं कार्यं कथमुत्पद्येत । अत्रोच्यते । भौतिकस्य सत्त्वे कारणत्वेन नेष्टं ज्ञानं । तथाहि । तत् ज्ञानं तस्य भौतिकस्य निमित्तकारणं वा? उपादानकारणं वा! न तावत् प्रथमः पक्षः । तथा सति तन्नाशात्तन्नाशो न स्यात् । ननु न भवत्येव नाशो भौतिकस्य ज्ञाननाशादिति चेन्न पूर्वदर्शितरीत्या क्षणिकत्वं तु भौतिकस्य सिद्धमेव । तथाच यस्मिन् क्षणे ज्ञानं तस्मिन्नेव क्षणे तस्य भौतिकस्य सत्ता स्वीकार्या ।

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

अन्यस्मिन् क्षणे ज्ञानं विहाय तस्य वृत्तौ प्रमाणाभावात्। अतो ज्ञानसमसत्ताकतया भौतिकपदार्थानां ज्ञानाभेद एवोचितः परन्तु बुद्धिवैचित्र्यस्य कारणं किमपि वक्तव्यमिति भौतिकाः पदार्थाः कल्प्यन्ते। तथाच न तेषां प्रत्यक्षं। किंतु ते चक्षुरादीन्द्रियद्वारा बुद्धिं चित्तापरपर्यायं तत्त्वं प्रविष्टाश्चैत्यपदार्थरूपं धारयन्तश्चित्ते वैचित्र्यमुत्पादयन्तीति तत्कल्पनं। अयं भावः—चित्तं स्वयंप्रकाशं तत्त्वं। तत्संबंधाच्चैत्यानां पदार्थानां प्रकाशः। तदभिन्नत्वाच्च भौतिकानामपि प्रकाशः। अनुभवोऽपि। अत्रास्ते घटो यतोऽहमेनमनुभवामीति। किंच भौतिकाः पदार्थाः सुखं वा दुःखं वा जनयन्तीति तेषां सत्ताऽवश्यं स्वीकार्येति येषामाग्रहस्तैरित्थं विचारणीयं। भौतिकाः पदार्थाः साक्षादेव सुखं जनयन्ति किंवा चित्तविकारीभूतचैत्यपदार्थभेदं प्राप्य। आद्येऽनुभवविरोधः। विविधचिन्ताक्रान्तमनाः पृथिवीपतिस्तूलशयनेऽपि स्थितोऽप्सरःप्रतिरूपाभिरंगनाभिरतिशीतलचन्दनपंकेनासिच्यमानोऽपि न सुखलेशमनुभवति प्रत्युत खदिरांगारराशिपतितमिवात्मानं मन्यमानः शोचति। यदि तूलशयनादीनां सुखजनकत्वं तदा कुतो न तस्य पृथिवीपतेः सुखं। प्रत्युत निश्चिन्तो दरिद्रोऽपि खरतरपाषाणखण्डे सुप्तोऽपि आत्मानं तूलशयनालंकृते पर्यंके शयानं मन्वानः सुखं शेते। तस्माद्भौतिकापेक्षया सुखदुःखान्यतरजनने चैत्यानां प्राबल्यं समनुभूयते। प्रथमस्थले पृथिवीपतेर्मनसश्चिन्ताक्रान्तत्वात्तूलशयनादिकं भौतिकं चैत्यरूपतां न प्राप, येन सुखं नाभूत्। द्वितीयस्थले तु खरपाषाणखण्डो दुःखजनकस्तथापि न चैत्यरूपतां प्राप। स्वयंकल्पितपर्यंकरूपचैत्यरुद्धत्वाच्चेतसः। तस्मात् सुखस्य वा दुःखस्य वा जनने भौतिकानां चैत्यत्वस्वीकारं विना नान्या गतिः। ननु यद्येवं तदा किमर्थं भौतिकानामपि स्वीकारः। चैत्यपर्यंकस्य खरतरभौतिकपाषाणशायिनोऽपि सुखजनकत्वदर्शनादिति चेत् सत्यं। बुद्धिगतवैचित्र्यान्यथानुपपत्त्या भौतिकस्य कल्पनात्। तस्माद्यथा चैत्यानां पदार्थानां सत्ता प्रत्यक्षसिद्धा,


Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

न तथा भौतिकानां । व्यवधानात् । चैत्यपदार्थैर्व्यवहितास्ते । तथाच व्यवहितानां केनापि हेतुना ज्ञानमनुमानमेव । यथा शिखरेण व्यवहितो वह्निर्धूमेनानुमीयते तथैव चैत्यैर्व्यवहितानां भौतिकानां ज्ञानमनुमानेनैव । यथा वा दर्पणाभिमुखो द्रष्टा दर्पणे प्रतिबिंबितानि तेषां तेषां वृक्षादीनां प्रतिबिंबानि वीक्ष्य तांस्तान्पदार्थाननुमिनोति एवमेव दर्पणवन्निर्मले चित्त-तत्त्वे तत्तदिन्द्रियद्वारा प्रतिबिंबितानि तेषां तेषां भौतिकानां प्रतिबिंबानि वीक्ष्य तांस्तान् भौतिकान् पदार्थाननुमिनोति । तस्माद्भौतिकानां प्रत्यक्ष-प्रमाणसिद्धा पृथक्सत्ता न किंतु बुद्धिवृत्तिवैचित्र्यहेतुना कल्पिता तेषां सत्तेति निर्विवादम् । तेषां यथा दुःखरूपत्वं तथा दुःखनिरूपण-प्रस्तावे वक्ष्यामः ।

२

ज्ञाता च वैभाषिकसिद्धान्ते निरूपितः क्षणिकविज्ञानरूप एव । एतावानेवात्र विशेषो यत् स दुःखरूपोऽपि । ननु किमिदमनुभवविरुद्ध-मुच्यते । अस्मत्प्रतीतिविषयो हि सर्वेभ्योऽपि प्रियेभ्यो वस्तुभ्यः प्रिय इति हालिकोऽपि जानाति । तन्मूलत्वाच्च सर्वासां प्रवृत्तीनां । तथाच लौकिकोक्तिः—

आपदर्थं धनं रक्षेत् । दारान् रक्षेत् धनैरपि ॥
आत्मानं सततं रक्षेत् । दारैरपि धनैरपि ॥ इति.

शास्त्रमपि—तदेतत् पुत्रात् प्रेयो वित्तात् प्रेयः सर्वस्मादन्यस्मादपि प्रेय इति । उच्यते । सुखमिति योऽयं प्रतिभासो जायते स नास्त्येव पदार्थः । तथाहि । कदलीफले भक्षिते बालस्य सुखं जायत इति तवानुभवः । तत्र विचार्यते । किं कदलीफलस्य वा धर्मः सुखं, उत बालस्य वाऽथ भक्षणस्य वा ? तत्र न तावत् प्रथमः पक्षः । केनापि तथात्वेनास्वीकारात् । नाप्यन्तिमः । किंतु बालस्येति मध्यमः पक्षोऽवशिष्टः । तत्र ब्रूमः । बालस्य कदलीफलभक्षणसमये तस्य कदलीफलस्य क्षणिकत्वं विनाशित्वापरपर्यायं विज्ञातमस्ति न वा ?

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


नास्तीति प्रत्युत्तरमनुभवापलापं प्रकटयति। तस्य विनाशं प्रत्यक्षमनुभवन् कथमेवं सचेता वदेत्। अथास्तीत्युच्यते तदा कुतो वाऽस्य सुखं। क्षणिकत्वविज्ञानस्यैव दुःखजनकत्वात्। ननु क्षणमात्रं सुखं स्यादेवेति चेन्न दुःखस्यैष स्वभावो यत्तत् ज्ञातं सुखकल्पनां समूलमुच्छिनत्ति। यथा हि विषसंपृक्तं मध्वन्नं न कोऽपि भक्षयति तथा दुःखकल्पनासंकीर्णं सुखमपि न ग्राह्यपक्षे कस्याऽपि। नचैवं विपरीतमेव किं न स्यादिति वाच्यं। पदार्थानां हि क्षणिकत्वं महता संरंभेण वैभाषिकमते साधितं। क्षणिकत्वं च यथा तेषां स्वभावोऽस्ति तथैव दुःखदत्वमपि। वस्तुतस्तु यथा क्षणस्वरूपा एव ते तथैव दुःखस्वरूपा इमे इति बोध्यं। अहंप्रतीतिविषयोऽपि ज्ञेयान्तर्गत इति सोऽपि दुःखरूप एव। आस्तामेतावदेवेह। सविस्तरं दुःखस्वरूपनिरूपणप्रस्तावे वक्ष्यामः।

२

साम्प्रतमज्ञानस्य स्वरूपं निरूपणीयं। तदेवेह सर्वानर्थस्य कारणं। तत्र दुःखकारणेषु वा दुःखस्वरूपेषु वा ज्ञेयेषु सुखकारणत्वज्ञानं तथा सुखस्वरूपत्वज्ञानं वाऽज्ञानमत्र विवक्षितं। यतस्तदेव दुःखं जनयति। तथाहि। संसारे परस्परद्वेषातिरेकवह्निज्वालाजालसमाकुले जीवः केवलं सुखाभासेन समाकृष्टचेतास्तथा चेष्टते यथा वक्तुमपि अशक्यं। भार्या मे स्यात्प्रजायेयेति हि प्रथमा वांछा। यदि भार्यां लब्ध्वा प्रजा न जायते तदाऽपि शोचति। अथ भार्या सुवृत्ता न चेत्तदाऽपि शोचति। अथ भार्याऽपि सुवृत्ता, प्रजाऽपि जाता, तथापि धनं न मे पर्याप्तमिति शोचति। अथ धनमपि पर्याप्तं तथापि जगति न मे मान इति शोचति। परांश्च राज्ञा वा लोकसमुदायेन वा सत्कृतान् सन्मानदर्शिकाभिरुपाधिभिर्वा विभूषितान् वा वीक्ष्य परं शोचति परं दुःखायते। ये च सत्कृतास्तान् निंदति। अथ सन्मानमपि संतोषजनकं लभते तदाऽऽत्मनो जन्म सफलं मन्वानः क्षणमात्रं सुखाभासमनुभवति न वा ता-

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



वदेव "हा हन्त ! हतोऽस्मि मन्दभाग्यः ! पिता मे कुबेर इव धनाढ्य ईश्वर इव सर्वमान्यः पूर्वसंचितैः सुकृतैः सकलसुखसागरमग्न एतानस्मान् सर्वानिहैव विहाय परलोकमगात्" इत्यादीनाक्रोशान् शृणोति। शृण्वन्नेव समूलमुच्छिन्नसुखाभासपटल आत्मानमपि मृत्युना केशपाशे गृहीतं मन्यमानस्तेषां स्वकीयानां सुखसाधनत्वेनाभिमतानां पुत्रादीनां तथा धनादीनां वियोगं समुत्प्रेक्ष्य तथा दुःखायते यथा नान्यः कोऽपि दरिद्रः। दरिद्रो हि प्रथमत एव सुखसाधनशून्यो वियोगदुःखं नानुभवति। नैतावता दरिद्रो दुःखहीन इति मन्तव्यं। स वासनाजालसमाक्रान्तः सुखाभासमपि अलभमानः परं दुःखायते। तस्मात् न दरिद्रो नापि धनाढयो दुःखान्मुच्यते किंतु केवलं स एव दुःखान्मुच्यते यः खलु एतान् सतोऽपि विषयसमूहान् दुःखदान् मन्यते दुःखस्वरूपान् वा भावयति। स एव शान्तचेताः न शोचति। शोको हि अज्ञानस्य फलमिति सर्वतंत्रसिद्धान्तः। तस्मात् दुःखदेषु वा दुःखस्वरूपेषु वा सुख-दत्वमतिः सुखस्वरूपत्वमतिर्वाऽज्ञानमिति निर्विवादम्।

४

अधुना दुःखस्य स्वरूपं निरूप्यते। तत्कथं जायते इति तु अज्ञानस्वरूपवर्णने वर्णितं। अधुना तस्य दुःखस्य ज्ञेयस्वरूपत्वं वा चेतोविकारविशेषत्वं वा भवितुमर्हतीति वयं विचारयामः। ज्ञेया विषयाश्च चैत्यतामापन्ना एव ज्ञानगोचरा भवन्तीति पूर्वमुपपादितमेव। ये तु अनुमितसत्ताका बाह्या घटादयस्तेषां ज्ञानगोचरत्वाभावात्तेषां दुःखस्वरूपत्वं वा दुःखदत्वं वेति विचारेण नास्ति प्रयोजनं। तत्र चैत्यानां कीदृशः स्वभावः ? क्षणिकत्वं तु निर्विवादं। ततश्च दुःखदत्वं तु प्राप्तमेव। नच सुखदत्वं तेषां संभवतीति निरूपितं। अथ दुःखं चेतोविकारस्तमेते जनयन्तीति दुःखदत्वमेवैषामुचितं नतु दुःखस्वरूपत्वमिति चेदत्रोच्यते। बुद्धौ यथा घटादयः प्रतिबिंबन्ति तथैव तद्धर्मा नीलादयोऽपि।

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



तत एव तेषामपि ज्ञानं। तथैव सुखदुःखान्यतरस्याऽपि प्रतिबिंबनं वक्तव्यमेव। अन्यथा ज्ञानानुपपत्तेः। नच बाह्यानां प्रतिबिंबनमावश्यकं। जडत्वात्तेषां। नत्वेवमान्तराणां। तेषां स्वत एव ज्ञानेन संबंधस्य संभवात् इति वाच्यं—चैत्यतां प्राप्तानामेव पदार्थानां ज्ञानेन संबंधो नान्येषामिति सिध्दान्तस्य साधितत्वेन बाह्याभ्यंतरभेदस्यैवासंभवात्। तथाचान्यतरस्य प्रतिबिंबस्वीकारं विना गत्यन्तराभावादनुभवाच्च दुःख-प्रतिबिंबनमेव स्वीकार्यं। तथाच दुःखस्वरूपत्वमेषामनायासेन सिध्दं। नच सुखं यदि नास्त्येव तदा कथं तस्य प्रतिभासः? अज्ञानस्यै-वेदं सामर्थ्यं यदसतोऽपि पदार्थांस्तद्भासयति। यदि नैवं तदा कथं मरुषु जलावभासः? नच तद्गंगास्थं भासत इति वाच्यं। तथा सति गंगायां जलमिति भासेत नत्विह जलमिति। अतोऽपूर्वमेव जलं तत्र भासत इत्यभ्युपेयं। तत्र जलारंभकाभावे सत्यपि अज्ञानमेव स्वसामर्थ्येन मरुषु तेजोवीचीस्तिरोभाव्य जलं भासयति। तथा चाज्ञानस्य सुखाव-भासो नाशक्य इति विज्ञेयं। एतेन दुःखदत्वज्ञानमपि तत्त्वज्ञानं भवतीति बोध्यं।

५

साम्प्रतं तत्त्वज्ञानस्य स्वरूपं वर्णनीयं। यद्यपि तत्त्वज्ञानस्याज्ञान-परिपन्थित्वादज्ञाननिरूपणेन ज्ञानस्य स्वरूपं निरूपितकल्पमेव तथापि पुनः स्पष्टतया लिखितं मन्दमतीनामपि बोधाय भवतीति लिख्यते। सर्वेषां ज्ञेयपदार्थानां दुःखरूपता कथमस्तीति दुःखनिरूपणे निरूपितं। तेन तेषां दुःखरूपता सिद्धा। ननु यदि सुखं तत्त्वमेव नास्ति तदा कथं जीवानां प्रवृत्तिरिति चेदेतत् दत्तोत्तरमपि पुनर्दुर्बोधतया सविस्तरमु-त्तरामि। मद्यपायिनः खलु मद्यं पीत्वा नानाविधानि दुःखान्यनुभवन्तीति सर्वेषां प्रत्यक्षमेव। तेऽपि मद्यपानसमये चषकात्तन्मद्यं पिबन्तो महता कष्टेन मुखचर्यां दुःखाकुलां विधाय व्याकुलीभवन्ति। एवमन्येऽपि

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



व्यसनासक्ताः । अत्र विचार्यते । यदि तेषामस्य मद्यस्य पानेन सुखलेशोऽपि न लभ्यत इति निश्चयस्तदा कथं तेषां प्रवृत्तिः? तत्रेत्थं भवति । मद्यदर्शनात् प्राक् स ततो दुःखं भावयति । परन्तु मद्ये दृष्टेऽज्ञानातिरेकापनीतदुःखस्मृतिः क्षणिकमोहाक्रान्तचेताः सुखकल्पनामारूढो मद्यं गृह्णाति । तस्य मद्यस्य तीक्ष्णतया तत् कण्ठं दहति परन्तु मनसा तादृशसुखमग्नो न तद्दुःखं गणयति । तेन मुखं वक्रयन्नपि मद्यपो मद्यं पिबत्येव । तथैव संसारी जीवो विषयाणां भोगेनाऽनेकानि जन्मानि यापयन् प्रतिक्षणं तेभ्यः स्पष्टतया दुःखान्यनुभवन्नपि कल्पितसुखसमाक्रान्तचित्तः समागतान् विषयान् सुखदत्वेन भावयन्नेव प्रवर्तते । कश्चित् धीरः परमभाग्यशाली स्थिरमतिः समागतान् विषयान् दुःखत्वेन भावयन् न तेषु सज्जते । न तेन दुःखं लभते । एवं च दुःखं दुःखमिति विषयस्वरूपज्ञानं तत्त्वज्ञानं । दुःखस्वरूपत्वात्तेषां । तत्त्वज्ञानस्य लक्षणं तस्मिंस्तद्बुध्दिरिति पूर्वोक्तमेव। निर्दुष्टत्वात्।

६

निरूपितं ज्ञानस्य स्वरूपं । इदानीं तत्फलस्य मोक्षस्य स्वरूपं निरूपयामि । ज्ञाननिरूपणे प्रतिनिर्दिष्टमद्यपायिदृष्टान्तवदिह संसारे सर्वे जीवाः सततं दुःखसागरे निमज्जन्तः केवलं सुखाभासमोहितस्वान्ता अनन्तानि दुःखानि सहन्ते । दुःखस्य च क्षणिकत्वात् तत् क्षणादूर्ध्वं नश्यत्येव। परन्तु सा सुखवासना पुनरपि दुःखानि उत्पादयति। एवमनिशं दुःखचक्रमिदं प्रचलितमास्ते । पूर्वोक्ततत्त्वज्ञानेन सुखवासनायां समूलमुच्छिन्नायां दुःखवासनायां च दृढीकृतायां तत् दुःखं यदा नश्यति तदा पुनर्नोत्पद्यते । तस्य दुःखस्य मूलं हि सुखवासना। सा च तत्त्वज्ञानेनापनीता । ननु यदि ज्ञेयपदार्थानां दुःखरूपत्वं तदा कथं चरमदुःखध्वंसात्मकस्य मोक्षस्य संभवः? तथाहि । पूर्वोक्ततत्त्वज्ञानेन विषयेषु वर्तमाना सुखवासना यस्य समूलमुच्छिन्ना तस्य कुतो न पदार्थ-

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi.

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


संबंधः ? स जीवन् व्यवहारं तु कुर्यादेव। स हि जीवधारणार्थं व्यापारमनुतिष्ठन् पदार्थैः सह संसृजेदेव। संबंधे च विषयैः सह दुःख-संबंधो दुर्वारः। यथा हि कंटकेषु पतितस्य मानवस्य कण्टकतोदनदुःखं निवारयितुमशक्यं, एवमेव पदार्थसंसर्गशालिनः पुरुषस्य दुःखं दुर्निवार्यं। नच मृतस्य तु दुःखासंभवात्तत्र मोक्षोपपत्तिरिति वाच्यं। मृतस्य प्रत्यक्षा-संभवान्न तत्र दुःखध्वंसस्य चरमत्वं निरूपयितुं शक्यमिति चेन्न। सत्यपि दुःखस्वरूपसंबंधे स ज्ञानी जीवस्तान् चैत्यान्न भावयति। यथा हि खरतरपाषाणसुप्तस्याऽपि तूलशयनसुखं पाषाणस्य चैत्यत्वाभावात्तथैव प्रकृतेऽपि ज्ञेयं। तथा च विषयाणां चैत्यत्वाभावमूलको यो विघ्नध्वंसः स एव चरम इति ज्ञेयः। इयमेवावस्था जीवन्मुक्तावस्थेत्युच्यते तत्र तत्र शास्त्रे। तस्मान्मोक्षरूपचरमदुःखध्वंसो नासंभवीति बोध्यं।

७

अत्र निरूपिते प्रमेयजाते प्रमाणं यद्यपि प्रत्यक्षमनुमानं च तथापि प्रत्यक्षं 'इन्द्रियार्थसंनिकर्षोत्पन्नं ज्ञानं' न किंतु ज्ञानाभिन्नत्वमेव। तथाहि। इन्द्रियद्वारा चित्तदर्पणे प्रतिबिंबितानामेव विषयाणां ग्रहणं भवति न बाह्यानां पदार्थानामिति पूर्वमेव प्रतिपादितं। तथा च चित्ते प्रतिबिंबितस्य विषयजातस्य ज्ञानं यज्जायते तत् प्रत्यक्षमित्येव वक्तव्यं। तत्र चेन्द्रियसंनिकर्षाभावस्तु सिद्ध एव। चित्ते प्रतिबिंबतेन वस्तुजातेन खलु बाह्यानामनुमानं कर्तव्यं। अनुमानं च प्रत्यक्षमूलकं अतो मनसि प्रतिबिंबस्य ज्ञानं प्रत्यक्षमेव। ज्ञानं तु स्वयंप्रकाशमेव। स्वसत्ताया-मितरस्यानपेक्षणात्। यथा हि ज्ञानं स्वसत्त्वे इतरन्नापेक्षते तथैव चित्त-वृत्तीनि विषयप्रतिबिंबान्यपि स्वसत्तायां प्रमाणत्वेनेतरत्किमपि नापेक्षन्ते। तस्मात् ज्ञानाभिन्नत्वमेव प्रत्यक्षं वक्तव्यं। अनुमानं च पदार्थानामविना-भावसंबंधमूलकं ज्ञानं यत् पूर्वोक्तं तत् तथैवाभ्युपगम्यते। निर्दुष्टत्वात्।

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

## [ योगाचारदर्शनावतरणिका । ]

निरूपिताः सौत्रान्तिकसिद्धान्ताः । यद्यपि तत्र बाह्यानामनुमेयत्वप्रतिपादनेनान्तर्मुखीकृता जीवास्तथापि संदेहो न समूलमुच्छिन्नः । तथाहि । यदिदं बाह्यानामनुमेयत्वमंगीक्रियते तत् खलु चैत्यानां वैचित्र्योपपादनाय। बाह्यपदार्थस्वीकारं विना चैत्यगतवैचित्र्यस्यासंभवादिति खलु तेषां स्वीकारः । अत्र विचारयामः । बाह्यपदार्थस्वीकारं विना चैत्यानां संभवो नानुपपन्नः । 'इह वटे यक्षस्तिष्ठति तत्र मा गच्छ अन्यथा स त्वां भक्षयेत्' इति पितुरुक्तिं निशम्य बिभ्यद्बालस्तत्र न गच्छति । तत्र बालो यतो बिभेति स यक्षः किं बहिरस्ति ? केन वा वीक्षितः ? केन वाऽनुमितः ? तथापि अर्थक्रियां भीतिरूपां करोतीति तस्य सत्ता स्वीकार्या । तस्मादसत्यपि बाह्ये पदार्थे चैत्यानामुत्पत्तिः संजायत एव । यदि तु समवलोकिते विचित्रवेषभयंकरे कस्मिंश्चित् नरविशेषे तदीयभीतिसंस्कारशाली बालस्तादृशवाक्यश्रवणेन समुद्बोधितसंस्कारो बिभेतीत्युच्यते तदा संस्कारस्यैव भीतिजनकत्वरूपार्थक्रियाकारित्वं समागतं न यक्षस्य वा तादृशनरस्य वा । संस्कारश्चैत्य इत्यत्र न कस्यापि विवादः । किंच पदार्थस्य सुखदत्वं नास्तीति सिद्धान्तितं तत् संमतमेव । परन्तु दुःखरूपत्वं कुतः ? सुखदुःखशब्दयोः परस्परसापेक्षत्वात् । यदि तु सुखं नास्ति तदा दुःखरूपत्वमपि नास्तीति स्वीकर्तव्यमेव । नच बाह्यानां सुखदत्वं न संभवत्येवेति सम्यगुपपादितं । यदि तु भवदुक्तरीत्या दुःखदत्वमपि तेषां न स्यात् तदा तेषां सत्त्वं कथं भवेत् । अर्थक्रियाकारित्वरूपसत्त्वस्य तत्राभावादिति वाच्यं । बाह्यानामसत्त्वमेवेष्टमस्माकमितिवादिनो योगाचारस्य सिद्धान्तः प्रस्तूयते । तत्र यत्र साम्यं तत्र संक्षेपः । यत्र च मतिभेदो नूतनाश्च सिद्धान्तास्तत्र विस्तर इति पूर्ववदेव ज्ञेयं ।

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

# चतुर्थं सोपानं ।

## बौद्धदर्शने योगाचारदर्शनं ( स्वलक्षणविज्ञानात्मवादः )

| प्रश्नाः | उत्तराणि— |
|---|---|
| १ किं ज्ञेयम् ? | १ चित्तं चैत्यं. न भौतिकं बाह्यम् । |
| २ कीदृशो ज्ञाता ? | २ क्षणिकस्वलक्षणविज्ञानरूपः । |
| ३ अज्ञानस्य स्वरूपं किं ? | ३ विषयाणां दुःखदत्वमतिः । |
| ४ दुःखस्य स्वरूपं किं ? | ४ दुःखदत्वभावनाजन्यश्चेतोविकारः । |
| ५ ज्ञानस्य स्वरूपं किं ? | ५ स्वलक्षणमिति भावना । |
| ६ दुःखध्वंसस्य (मोक्षस्य) स्वरूपं किं ? | ६ चरमो दुःखध्वंसः । |
| ७ एतेषु सर्वेषु प्रमाणं किं ? | ७ प्रत्यक्षमनुमानं च । |

चित्तं मानबलेन सिध्यति यथा भान्तीह चैत्यास्तथा ।
बाह्यानां न हि भानमस्ति असतां सन्त्येव नो ते ततः ॥
आत्मा पूर्ववदेव मानमखिलं मोक्षः परं भावना ।
हेतुः सर्वमिदं स्वलक्षणमदो वैज्ञानिकानां मतं ॥ १ ॥

१

सौत्रान्तिकैर्महता संरंभेण बाह्यानामनुमानेन सत्ता स्वीकृता । कारणं च तत्र चैत्यानां वैचित्र्यान्यथानुपपत्तिः प्रदर्शिता । यदि चित्तमेव तत्त्वं तदा चित्ते या विविधा वृत्तयो जायन्ते या वयं प्रयोगसौकर्याय चैत्यपदेन व्यपदिशामः तासां वैचित्र्यस्य कारणं किमिति वक्तव्यं । नच भौतिकपदार्थस्वीकारं विना गत्यन्तरमस्ति । उचितमपीदं । दर्पणे यानि विविधानि प्रातिबिंबानि दृश्यन्ते तेषां बिंबस्वीकारं विनोपपत्तिरेव न भवतीति सोपपत्तिकं निरूपितं । तत् सर्वं न प्रमाणपदवीं समारोढुमर्हति । तथाहि । वृत्तिवैचित्र्यं प्रति बाह्यपदार्थवैचित्र्यं प्रयोजकमिति सिद्धान्ते



Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

एव भ्रान्तिमूलकः। स्वप्नेऽदर्शनात्। स्वप्ने ये पदार्था दृश्यन्ते ते किमनुभूतपूर्वा वा? अथ किमिति चेत् कदा वा स्वशिरश्छेदादिकमनुभूतं। कदा वा कृष्णदन्तः पुरुषो जगति दृष्टः? कदा वा पंचशुंडाकरमण्डितो गजः समवलोकितः। नच लोके शिरश्छेदोऽपि दृश्यते स्वदेहोऽपि दर्पणे। तद्वैशिष्ट्यमेव केवलं स्वप्ने भासते। अत एव स्वप्नज्ञानस्य भ्रान्तित्वं। एतेन शुक्तिरजताभासोऽपि व्याख्यात इति वाच्यं। स्वप्नज्ञानस्य भ्रान्तित्वेऽपि तद्विषयस्य स्वशिरश्छेदादिवैशिष्ट्यस्य सत्त्वं स्वीक्रियते वा। न स्वीक्रियतेऽसत्त्वात्तस्येति वक्तव्यमेव। तथाच तेषां स्वशिरश्छेदादीनामसत्त्वेऽपि यथा स्वाप्नं ज्ञानं जायते तथैव घटादीनामभावेऽपि कुतो घटादिविज्ञानस्यासंभवः। किंच मनोरथस्थले पदार्थानामसत्त्वं त्वयाऽपि स्वीकार्यं। अनुपलंभात्। अप्राप्तेष्टवस्तुविषयको हि मनोरथः प्रसिद्धो लोके। नच वस्त्वभावे तस्यार्थक्रियाकारित्वं न स्यादिति वाच्यं। मनोरथे स्मृतौ च व्यभिचारदर्शनात्। मनोरथो हि वस्तुरहित इति सर्वसम्मतं तथापि मनोरथविधाने प्रयतमाना जना दृश्यन्ते एव। यदि मनोरथविधाने सुखं वा दुःखाभावो वा न लभ्यते तदा तत्र प्रवृत्तिः कथं? स्मृतावपि विषयाभावेऽपि सुखादिसंवेदनं संभवत्येव। तस्मात् ज्ञानातिरिक्तस्य विषयस्यानंगीकारेऽर्थक्रियाकारित्वं न स्यादिति रिक्तं वचः। ननु ज्ञानातिरिक्तस्य बाह्यस्य पदार्थस्यानभ्युपगमे अहमिमं घटं पश्यामीति ज्ञानविषययोर्भेदबोधकोऽनुभवो बाधितः स्यात्? मैवं। यथा शुक्ताविदं रजतमिति ज्ञाने भेदेन बोध्यमानोऽपि विषयो ज्ञानान्नातिरिच्यते तथा सर्वत्रेति बोध्यं। ननु शुक्ताविदं रजतमिति ज्ञानं भ्रमो न तथाऽयं घट इति चेन्नाविशेषात्। बाह्यस्य विषयस्याभावेन बाह्यविषयावगाहिज्ञानस्य भ्रमत्वं युक्तमेव। नच शुक्तौ रजतज्ञानानन्तरं प्रवृत्तो रजतं न लभते। अयं घट इति ज्ञानानन्तरं प्रवृत्तो घटं लभते इति वैषम्यमेव विशेषः। किंच बाह्यपदार्थस्यानंगीकारे बाह्याभिसन्धयः प्रवर्तेरन् कथं?

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi.

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


असति बाधके ज्ञानस्य भ्रान्तित्वकथनमप्ययुक्तमिति चेदुच्यते । यथा स्वप्ने समुपस्थितं घटं वीक्ष्य प्रवृत्तस्तमुपलभते तथापि तत्र घटसत्ता भवता न स्वीक्रियते भ्रान्तित्वं च निगद्यते तथैव घटलाभोऽपि भ्रमकल्पित इति वक्तव्यमेव । यदि नैवं तदा बाह्यघटेन सह चक्षुःसंनिकर्षे ततस्तस्य मनसा संनिकर्षे ज्ञाने जाते ततः प्रवृत्तिः । प्रवृत्त्यनंतरं घटोपलब्धिस्ततो जलाहरणं, जलपानेन पिपासायां शान्तायामर्थक्रियाकारित्वस्यानुमानं । अत्र विचार्यते । कस्य वा घटस्येदमर्थक्रियाकारित्वं ? घटस्य क्षणिकत्वात् प्रतिक्षणभिन्नत्वं सिद्धमेव । तत्र चक्षुःसंनिकर्षमारभ्यार्थक्रियाकारित्वानुमानपर्यन्तं बहवः क्षणाः । तादृशक्षणभेदेन घटा अपि भिन्ना एव । तथाच यश्चक्षुषा प्रथमं दृष्टो घटोऽथ च येन जलमानीय पिपासाऽपनीता तयोर्भिन्नत्वात् कथमर्थक्रियाकारित्वेन घटस्य सत्त्वं साध्यते ? नच यः पिपासामशमयत्तस्य सत्त्वं तु स्यादिति वाच्यं । तस्य चाक्षुषप्रत्यक्षाविषयत्वात् । तस्माद्यदि चाक्षुषस्य सत्त्वं साध्यते तदाऽर्थक्रियाकारित्वं व्यभिचारी हेतुः । अथ यत्रार्थक्रियाकारित्वं तत्र चाक्षुषत्वस्याभावाद्बाधः । एवं च प्रत्यक्षस्यार्थक्रियाकारित्वं दृष्टमिति निरर्थकं वचः ।

किंच–योऽयं बाह्यः पदार्थो ज्ञानस्यालंबनत्वेन भवता स्वीक्रियते स किमणुरूपो वा स्थूलरूपो वा समुदायरूपो वा ? नाद्यः–तथा सति तस्य प्रत्यक्षं न स्यात् । किंच तस्याणुरूपत्वेऽर्थक्रियाकारित्वं न स्यात् । नहि अणुना जलमानेतुं शक्यं । न मध्यमः–तथा सति अणुकार्यत्वानुपपत्तिः । कारणगुणाः कार्यगुणानारभन्त इति न्यायेन तत्रापि अणुत्वस्य वर्तमानत्वात् स्थौल्यानुपपत्तेः । नच तत्र स्थौल्यं संख्याजन्यमिति कथनं न्याय्यं । तथा सति कारणगुणाः कार्यगुणानारभन्ते इति सर्वानुभवसिद्धो न्यायो दत्ततिलांजलिः स्यात् । किंच–तत्र स्थौल्यं घटनिष्ठं वक्तव्यं तथाच घटोऽपि परमाणुभ्यो भिन्न इति वक्तव्यं । यद्येवं तदा पटं विहाय

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

घटोऽन्यत्र यथा तिष्ठति तथा परमाणून् विहाय घटः कुतोऽन्यत्र न तिष्ठतीति वक्तव्यं ? अथ न तिष्ठतीति सर्वानुभवप्रामाण्यरक्षणाय भवता संबंधाविशेषस्तेषां परस्परं समवायनामा वक्तव्यस्तदा तस्याऽपि संबंधान्तरं वक्तव्यमित्यनवस्था । अथैतद्दोषपरिहाराय यदि स्वरूपसंबंधः कल्प्यते तदा कार्यमेव स्वरूपसंबंधत्वेन कुतो न कल्प्यं । तथास्तु इति च्चेदणव एव संबंधत्वेन कुतो न कल्प्या इति न बाह्यस्य पदार्थस्य सिद्धिः । अत एव न तृतीयः । अप्रत्यक्षसमूहस्याऽपि अप्रत्यक्षत्वात् । नहि संभवत्यंधानां समुदायश्चक्षुष्मानिति । परं च–अवयविरूपो वा समुदायरूपो वा बाह्योऽर्थः किं स्वावयवेषु प्रत्येकं वर्ततेऽथवा सर्वेषु ? नाद्यः–तथा सति प्रतिपरमाणु कार्योपलब्धिः प्रसज्येत । अथ सर्वेष्ववयवेषु तदा सर्वावयवप्रत्यक्षं विना तस्य प्रत्यक्षं न स्यात् । तस्मादपि बाह्यार्थकल्पनाऽनुपपन्ना । अपि च बाह्यपदार्थसत्त्वे प्रमाणं किमिति वक्तव्यं । न तावत् प्रत्यक्षं । तस्येन्द्रियसंनिकर्षोत्पन्नतया तावत्पर्यन्तं कस्यापि बाह्यार्थस्यासत्त्वात् । किंच–इंद्रियस्यातीन्द्रियतया स्वल्पपरिमाणस्य तस्य कथं पर्वतादिभिः संनिकर्षः । नच काचे यथा प्रतिबिंबं महतोऽपि पदार्थस्य पतति तथेदं भविष्यतीति वाच्यं । तथा सति बाह्यपदार्थसत्त्वे प्रत्यक्षं प्रमाणमिति रिक्तं वचः । नहि काचे पतितस्य पर्वतप्रतिबिंबस्य प्रत्यक्षं पर्वतस्य भवति । नाप्यनुमानं तस्य प्रत्यक्षमूलकत्वात् । तस्मान्न सन्ति बाह्या अर्थाः ।

अन्यच्च– ज्ञानज्ञेययोरभेद एव न्याय्यो न भेदः । सहोपलंभात् । ज्ञाने उपलब्धे ततो घट उपलभ्यत इति नानुभवः । नापि ज्ञानोपलब्धिं विना घटोऽपि उपलभ्यत इति । नापि घटोपलब्धिं विना ज्ञानमुपलभ्यत इति । अनुभवश्च ज्ञानोपलंभो घटोपलंभेन सह समुपलभ्यतेऽहं घटं जानामीति । तस्मात् सहोपलंभनियमादनयोरभेद एव भवितुं न्याय्यः । व्याप्तिश्च यद्येन सहैव समुपलभ्यते तत्तदभिन्नं यथा स्वेन स्वमिति निर्दुष्टा । परं च भित्तौ चित्रकारेण लिखितो रेखासमुदायो हस्तिबुद्धिं

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



जनयति । तत्रासत्यपि हस्तिनि केवलं तास्ता रेखा एव यथा हस्तिबुद्धिं जनयन्ति तथैव चित्तभित्तौ विहितो वासनासमुदाय एव घटादिबुद्धिं जनयति । तावतैव सर्वसामंजस्ये बहिः पृथक्पदार्थकल्पना न प्रामाणिकी । ननु बाह्यपदार्थानामभावे ज्ञानस्य वैचित्र्यं कथं ? कारणं विना कार्यस्यानुपपत्तेः सर्वतंत्रसिद्धान्तत्वात् । ज्ञानस्य विषयो हि कारणं । तथाच ज्ञानवैचित्र्यं प्रति विषयवैचित्र्यस्य कारणत्वेन तदभावे कुतो ज्ञानवैचित्र्यमिति चेत् । मैवं । ज्ञानवैचित्र्यं प्रति वासनावैचित्र्यस्यावश्यं वक्तव्यतया तेनैव निर्वाहे विषयवैचित्र्यस्यान्यथासिद्धत्वात् । तथाहि । इह वटे यक्षस्तिष्ठति, स तु समीपमागतान् बालान् भक्षयतीत्यादिवाक्यजातं श्रुत्वा बालो बिभेति । वृक्षस्य समीपं न गच्छति । तत्र बालस्य यद्यक्षज्ञानं जातं तत्र विषयः कः ? यक्षस्तु न केनापि दृष्ट इति स नास्त्येव । किंतु तत्तन्मानवानां कथाभिः क्लृप्ता वासना एव तत्र कारणमिति ता एव तादृशयक्षज्ञानस्य कारणमित्यगत्या कल्पनीयं । किंच विषयवैचित्र्यस्य कारणतावादिभिरपि वासनावैचित्र्यमवश्यं कारणत्वेन कल्पनीयं । अन्यथैकस्यां प्रमदातनौ परिव्राट्कामुकशुनां कुणपः कामिनी भक्ष्यमिति विकल्पनात्रयं कथं जायते ? नच तत्र विषयवैचित्र्यं । एक एव हि कामिनीरूपो मांसपिण्डस्तत्र विषयः । तस्माद्वासनावैचित्र्येणैव ज्ञानवैचित्र्यस्योपपत्तौ न विषयवैचित्र्यस्य कारणत्वं । अतो न बाह्याः पदार्थाः सन्तीति ज्ञानमेवेदं सर्वमिति सिद्धोऽस्मत्सिद्धान्त इत्यलमतिविस्तरेण ।

२

ननु ज्ञानमेव ज्ञेयरूपेण भासते नास्ति ज्ञेयरूपो बाह्यः पदार्थस्तदा ज्ञाता कः ? इति चेदुच्यते । ज्ञाताऽपि ज्ञानरूप एव । तथाहि । अहमिदं जानामीति प्रतीतिः खलु सर्वेषां प्रमाणं । तत्रेदंत्वेन भासमानो विषयः खलु ज्ञानाद्भिन्नो भवितुं नार्हतीति पूर्वमुपपादितं । अधुनाऽहंत्वेन

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


भासमानो ज्ञाताऽपि ज्ञानाद्भेत्तुं नार्हतीति समुपपादयामः । तत्र योऽयमहमर्थोऽस्यां प्रतीतौ भासते स जडो वा चेतनो वा ? यदि च जडस्तदा तस्याहंत्वेन भानं कुतो न पुनरिदंत्वेनेति वक्तव्यं । जडाः पदार्था घटपटादयो ज्ञाने कर्मत्वेन विषयीभवन्ति । अयं तु अहंपदार्थो जडोऽपि ज्ञानकर्तृत्वेन भासत इति न जडत्वमस्य समुपपद्यते । अथ चेतनस्तदा कथमस्य ज्ञानाद्भेदः । ज्ञानमपि स्वयंप्रकाशं ज्ञाताऽपि स्वयंप्रकाश इति तयोरभेद एव सिध्यति न भेदः । नच ज्ञाधात्वर्थो ज्ञानं, तस्य कर्ता ज्ञातेति कथमनयोरभेद इति वाच्यं । ज्ञानं हि स्वयंप्रकाशं ततोऽन्यत् सर्वमपि वस्तुजातं ज्ञानप्रकाश्यं जडमिति सर्वानुभवसिद्धं । तत्र यदि ज्ञाता ज्ञानाद्भिद्येत तदा जडः स्यात् । जडे च तस्मिन् प्रथमतो ज्ञाने ज्ञाते सति पश्चात् स ज्ञायेत । नच तथैवास्त्विति वाच्यं । तथा सति यथा घटादिविषयः संदेहो जायते एवमेवाहंविषयकोऽपि संदेहः स्यात् । नचैवं कोऽपि संदिग्धे ' अहमस्मि न वेति ' । तस्मादसंदिग्धभानत्वात् ज्ञानं यथा स्वयंप्रकाशं तथैव ज्ञाताऽपि स्वयंप्रकाश एव भवितुं योग्यः । न च द्वयोरपि स्वयंप्रकाशयोः सत्त्वे का हानिरिति वाच्यं । समाने धर्मिणि भेदो हि औपाधिको भवति न वस्तुतः । यत्र हि वस्तुतो भेदस्तत्र वास्तविकं भेदसाधनमंगीकर्तव्यमेव । योऽयमहंप्रत्ययविषयिणि ज्ञातरि ज्ञानाधिकरणत्वबोधको धर्मधर्मिभावो दृश्यते स न वास्तविकः किंतु राहोःशिर इतिवद्विकल्पाविकल्पित इत्येव मन्तव्यं । अन्यथा समानरूपयो-रनयोर्धर्मधर्मिभावः किंमूलक इति वक्तव्यमापतेत् । ननु ज्ञानस्या-धिकरणमात्माऽहंप्रत्ययगोचरः । ज्ञानं च न स्वयंप्रकाशं किंतु अनुव्य-वसायेन सविकल्पस्य प्रामाण्ये गृहीते घटादीनामपि सत्ता सिध्यतीति न्यायसिद्धान्त एव युक्त इति चेन्न । सुषुप्तौ ज्ञानसामान्याभावस्य स्वीकारेण तत्रात्मनोऽभानप्रसंगात् । नच कदाऽपि तस्याभानं भवतीति धर्मधर्मिभावो विकल्पमूलक इत्येव स्वीकर्तव्यं । ननु

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



कथं ज्ञानरूप एवात्मा । ज्ञानस्य क्षणिकत्वेन सततं सर्वक्रियासाक्षिणोऽहंप्रत्ययविषयस्यात्मनस्ततः सुतरां भेदः । आत्मा हि घटपटादिज्ञानेषु सततं ज्ञातृत्वेन विषयीभवन्नतीतं सर्वमपि अनुभूतं स्मरन् कथं क्षणिकज्ञानरूपो भवेत् ? सत्यं । तथापि क्षणिकविज्ञानरूप एव असाविति स्वीकार्यं । अन्यथा यदि स स्थिरस्तदाऽर्थक्रियाकारित्वं न स्यात् । स्थिरस्यार्थक्रियाकारित्वाभावस्तु वैभाषिकसिध्दान्ते निरूपित एव । सर्वेषु प्रत्ययेषु अहंप्रत्ययविषयस्यानुस्यूतत्वं कथमित्यधुनोपपादनीयं । तच्चेत्थमुपपाद्यते । यथा हि अतिवेगेन भ्रमति चक्रे स्थैर्यभ्रमस्तथैव प्रवाहरूपेण जायमानेषु तेषु तेषु घटपटादिप्रत्ययेषु अनुस्यूतत्वस्यायं भ्रम एवेत्यत्रेहि । नच लोकानुभवबाधः । प्रमाणसिद्धस्य पदार्थस्य लोकानुभवविरुध्दस्याऽपि अवश्यं स्वीकर्तव्यत्वात् । अन्यथा वितस्तिमात्रस्य सूर्यस्य स्वीकर्तव्यत्वमापद्येत । नन्वेवं कथं स्मृतिः ? अनुभवात्मकज्ञानस्य चिरविनष्टत्वेनानुभवितुरेवाभावात् । नह्यन्यद्दृष्टमन्यः स्मरतीति दृष्टचरं । सत्यं । अनुभवकालीनं विज्ञानं स्वोत्तरविज्ञाने तादृशं संस्कारमाधत्ते । तदपि तदुत्तरस्मिन्निति क्रमेणोद्बोधकसमवधानक्षणे वर्तमानं विज्ञानं तादृशीं स्मृतिं समुत्पादयतीति सर्वमुपपन्नं । यथा गंगायाः प्रवाहस्योद्गमे निहितं स्वल्पं बीजं क्रमेण प्रवहदतिदूरे क्लिन्नं पूतिगंधं सूते किंवा भूमौ निहितं बीजं क्रमेण नानाविधाभिरवस्थाभिर्भिन्नं भिन्नमनुकूलं कालमापाद्यांकुरमुत्पादयति तथैव यत्रानुभवः संवृत्तः स विज्ञानक्षणः प्रतिक्षणं भिन्नोऽपि स्मृतिकाले स्मृतिं जनयतीति न किंचिदनुपपन्नं । एतेन विज्ञानेषु घटपटादिविषयाणामुल्लेखोऽपि भानात्मक उपपादित एव । नच सर्वेषां पदार्थानां विज्ञानादभिन्नत्वे सुखदुःखादीनां तथा शीतोष्णादीनां विरोधः कथमुपपादनीय इति वाच्यं । वासनाभेदेन स उपपादनीयः । कथमन्यथा तयोर्विरोधो भवद्भिरुपपाद्यते ? स्वभावादिति चेन्न—एको मानवो यद्दुःखमिति द्वेष्टि तदेवान्यो मानवः सुखमिति मन्वानः कांक्षति ।

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


यथा मरणं सर्वेषां द्वेषविषय इति प्रसिध्दं लोके । तथापि अपमान-दुःखाकुलस्तदेव वांछति । पीत्वा च तीव्रं विषं तल्लभते च। तस्मान्नैकान्तेन किमपि सुखं वा दुःखं वा ? किंतु वासनाबलात् । तथाच संसारस्यानादितया वासनानामप्यनादित्वेन सर्वमुपपन्नं । तस्मात् स्वलक्षणक्षणिकविज्ञानमेवात्मेति सिध्दान्तः सिध्दः ।

३

ननु यदि ज्ञानरूप एवात्मा तदाऽज्ञानस्य संभव एव कुतः ? नहि संभवति प्रौढप्रतापतिरस्कृतदावानले भगवति भास्करेऽपि तमसः सत्त्वसंभावनाऽपि । यदा तु अज्ञानमेव नास्ति तदा दुःखस्याऽपि असंभावितत्वेन तत्परिहारः कथं पुरुषार्थः स्यात् । नहि भवति असतो वंध्यापुत्रस्य हननेन पुरुषार्थः कृतकृत्यता वा। तस्मादयुक्तमिदमिति चेदत्रोच्यते। अस्ति तु अज्ञानं ज्ञानविशेषरूपं । तत्राज्ञानं नाम न ज्ञानाभावो येन ज्ञाने तन्न तिष्ठेत् । किंतु ज्ञानविरोधि भावान्तरमिति सर्वतंत्रकारसम्मतं । शुक्तौ रजतमित्यज्ञानं न ज्ञानाभावः किंतु शुक्तेस्तिरोधायको ज्ञानविशेष एव । अयं भावः-यथा घटादिवासनाजनितश्चेतःपरिणामो ज्ञानं प्रमेत्युच्यते तथा शुक्तिं वीक्ष्य चाकचक्यसमुद्बोधितरजतवासनाजनितश्चेतःपरिणामोऽज्ञानमित्युच्यते । उभावपि चेतःपरिणामावेव । तत्र ज्ञानरूप आत्मनि यथा घटज्ञानस्य संभवस्तथा शुक्तिरजताज्ञानस्य कुतो न संभवः। तथा चाहमाकारायां वृत्तौ यथा घटवासनामूलको घटादिभास एवमेव रजतवासनामूलको रजतस्याभास इति स्वीकारे न कोऽपि दोषः। यदि त्वेतद्भिया घटज्ञानस्यापि अभावं वक्ष्यसि तदा वयमपि अज्ञानस्याभावं ब्रूमः । अज्ञानस्य लक्षणं तु ‘ अतस्मिंस्तद्बुद्धिः ’ इत्येव । प्रकृते च बाह्येषु अर्थेषु दुःखदत्वज्ञानमेवाज्ञानं । दुःखस्य च वासनाजन्यत्वेन बाह्यानामर्थानां दुःखकारणत्वाभावात् । तथाहि । सर्पं दृष्ट्वा लोक उद्विजते । तं हन्तुं प्रवर्तते इति सार्वजनीनं । तत्र यो हि सर्पो हन्यते

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


न तेन कदाचित् कोऽपि मानवो दष्टः स्यात् । परन्तु सर्पत्वजातिसामान्यं मनसि कृत्वा तस्य हननाय प्रवर्तन्ते । अत्र विचारयामः । सर्पेण स मनुष्यो दष्ट इति तं द्वेष्टि उत सर्पजातिर्मरणकारणमिति लोककथा-श्रवणसमाहितसंस्कारेण ? तत्र न प्रथमः दष्टस्य मरणावश्यंभावात् तत्र द्वेषस्यावसर एव न । चरम इति चेत्तदा न सर्पो दुःखकारणं किंतु वासनैवेति सर्पे दुःखदत्वमज्ञानमिति सिद्धमज्ञानं । नन्वेवं विषयेषु सुखदत्वमपि न स्यादिति चेत् सत्यं । वासनास्वेव दुःखदत्वमिव सुखदत्वस्य कल्पनात् । सौत्रान्तिकनये सुखदत्वं तेषां निराकृत्य दुःखदत्वस्य स्थापनादिह तस्य निराकरणे प्रयत्यते । किंच विषयाणां दुःखदत्व-मतिरस्त्येवाज्ञानं परन्तु ये बाह्या विषया भासन्ते तेषामपि सत्तामतिर-ज्ञानमेव । अज्ञानं हि दुःखस्य कारणमिति सर्वतंत्रसिद्धान्तः । तत्र बाह्यानां यो ह्यस्तित्वमनुमानेन वा प्रत्यक्षेण वा स्वीकरोति स एवैतदज्ञानमलिनचेता विविधदुःखानि लभते । यश्च बाह्यमेतद्भासमात्रं मनुते स न रोदिति किंतु नाटकवत् सर्वमिदं क्षणभंगुरं वासनाजालक्रीडामात्रं मन्वानस्तूष्णी-मुदास्ते । एवमेव यो हि आत्मानं विज्ञानादतिरिक्तं मनुते सोऽपि अनुभवविरुद्धं पदार्थं स्वीकुर्वन् दुःखमेव लभते । तदिदं खलु अज्ञानं सिद्धं । किंच यदि विषयाणां दुःखदत्वं तदा कथं दुःखदानामपि विषादीनां भक्षणे केषांचित् प्रवृत्तिः । नहि सर्पं ज्ञात्वा तन्मुखेऽगुलिं कश्चित् सचेता निदधाति । भ्रमादिति चेत्तथा दुःखदत्वमपि तेषु भ्रमकल्पितमिति कुतो न मन्यसे ? तस्माद्बाह्येषु विषयेषु सत्त्वं तथा तेषां दुःखदत्वं सुखदत्वं वा सर्वमपि अज्ञानमूलकमेवेति ज्ञेयं ।

४

तत्र दुःखं किमिति जिज्ञासायां प्रतिकूलमिति वेदनीयमिति यल्लक्षणं प्रागेव कृतं तदेवास्माकमपि सम्मतं । अज्ञो हि मानवः प्रतिकूलवेदनाविषयै-स्तैस्तैर्दुःखैराकुलस्तेषां परिहारार्थं प्रयतमानो बाह्यान् पदार्थान् दूरीकर्तुं

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



प्रयतते । यथा हि कश्चनेभ्यः केनचित् सह कुतोऽपि कारणाद्बद्धवैरो धनदानेन राजपुरुषान् वशीकृत्य तं स्ववैरिणं देशान्तरं प्रेषयित्वाऽऽत्मानं स्वस्थं मन्यते । अथ रात्रौ पर्यंके स्वभवने निरीक्षकैः सततं परिरक्षिते सुप्तः स्वप्ने तं स्ववैरिणं स्वघातार्थं कण्ठे निहितच्छुरिकं मत्वा तथा दुःखेन व्याकुलो भवति उच्चैराक्रोशति च । तत्र यद्यपि शारीरिकं छुरिकाप्रहारजन्यं दुःखं तस्य न जायते तथापि स्वाप्नबोधं स्मृत्वा मानसं दुःखं तु भवत्येव । यश्च केनापि वैररहितः सदैव यदृच्छालाभसन्तुष्टः साधुः स नोद्विजते नापि उच्चैराक्रोशति । नापि तस्य दुःखदायी स्वप्नः समागच्छति । अत्र विचार्यते । यद्यपि उभयोरप्यनयोर्वैरिसांनिध्याभावः समस्तथापि फलवैषम्यं कुतः ? ऋते वैरिवासनाया अन्यत् कारणमशक्यं वक्तुं । तथाच सा वासनैव दुःखं सूते । साधोश्च मनसि तस्या अभावान्न तत्र दुःखमिति स्पष्टमेव । नन्वेवं शारीरं मानसं चेत्युभयं दुःखमंगीकृतं भवेत् । नच का क्षतिरिति वाच्यं । तथा सति बाह्यस्य पदार्थस्य स्वीकारेण तव सिद्धान्तहानिः स्यादिति चेत् सत्यं । व्यावहारिकीं मर्यादामंगीकृत्य मया दुःखस्य द्वैविध्यमुपरिनिर्दिष्टरीत्या कथितं । वस्तुतस्तु मानसमेवैकं दुःखं न ततोऽतिरिक्तं शारीरं नाम दुःखं स्वीक्रियतेऽसत्त्वात्तस्य । तथाहि । यत्र शारीरं दुःखमनुभूयते तत्र मानसदुःखवासनायाः सत्त्वमवश्यमंगीकार्यं । कथमन्यथा बालेन तातस्य मुखे चपेटाहनने कृतेऽपि न कोपः । कथं च स्वल्पेऽपि परेण मुखे आघाते कृते सति अनल्पकोपप्रज्वलितचेतास्तस्य ताडनाय प्रवर्तते । किमत्र कारणं । उभयत्रापि हस्तकपोलसंयोगस्तु समान एव । इदं हि तत्र कारणं-यत् पुत्रस्य निरतिशयप्रेमास्पदत्वेन तत्र दुःखकारणीभूताया द्वेषवासनाया अभावान्न दुःखोत्पत्तिः । परपुरुषस्थले तादृशवासनायाः सत्त्वात्तत्र कोपोत्पत्तिर्युक्तैव । अतः सर्वं दुःखं मानसमेवेति सिद्धं । तच्च चेतोवृत्तिरूपं क्षणिकमेव । क्वचित् संततं दुःखधाराया अनुभवेऽपि तत्र क्षणिकान्येव दुःखानीति ज्ञेयं ।

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

५

निरूपितमज्ञानस्य स्वरूपं तथा तत्फलस्य दुःखस्य च। अधुना ज्ञानस्य स्वरूपं वर्णनीयं। तदेव हि परमभ्यर्हितं। ज्ञानेन हि पुरुषार्थः संपादयितुं शक्यः। तत्र ज्ञानस्याज्ञाननाशकत्वाद्विरोध आवश्यकः। विरोधाभावे बाध्यबाधकभाव एव न स्यात्। अतस्तादृशमेव ज्ञानस्य स्वरूपं निरूपणीयं येनाज्ञानस्य बाध्यत्वं सुस्पष्टं भवेत्। अत्र ज्ञानं हि पूर्ववदेव तद्वति तत्प्रकारकत्वं तस्मिंस्तदिति बुद्धिरूपं वा विवक्षितं। तत्र चित्तवृत्तीनां दुःखदत्वं न स्वभावः नापि सुखदत्वं। सुषुप्तावुभयाभावेऽपि चित्तवृत्तेः सत्त्वात्। बाह्यानां विषयाणामसत्त्वं च महता प्रयत्नेन पूर्वमुपपादितमेव। चित्तवृत्त्यतिरिक्तस्यात्मनः प्रमाणाभावादस्वीकार एव। तथाच चित्तवृत्त्यतिरिक्तस्य कस्याऽपि पदार्थस्यासत्त्वाच्चित्तवृत्तिज्ञानमेव ज्ञानपदेनात्र विवक्षणीयं। चित्तवृत्तयश्च बाह्यपदार्थसंसर्गात् सुखदत्वं वा दुःखदत्वं वा न स्वीकुर्वन्ति किंतु पूर्ववासनाबलादित्यपि पूर्वं निरूपितं। तथाच यत् खलु औपधिकं यस्य रूपं भासते न तत्तस्य वास्तविकमिति नियमस्य पीतः शंख इति भ्रान्तौ दृष्टचरतया वासनाजन्यं यत् खलु चित्तवृत्तिषु सुखदत्वं दुःखदत्वं वा भासते तत् खलु तासां वास्तविकं स्वरूपं नेत्यंगीकर्तव्यं। एवं स्थिते क्षणिकानां चेतोवृत्तीनां किं वास्तविकं रूपमिति विचारणा प्राप्ता। तत्र सुषुप्त्यनुरोधेन स्वलक्षणत्वमेव तासां वास्तविकं रूपमिति ज्ञायते। तथाहि। इह संसारे सततं चेतश्चक्रं प्रचलति। तत्र पूर्ववासनावशात् काश्चित् सुखमय्यः काश्चिद्दुःखमय्यो वृत्तयः सततं जायन्ते। तत्र वासनासंकरो वा कारणमुत तासामेवेदृशः स्वभाव इति विवेक्तुं न पार्यते। परन्तु सर्वप्रमाणसाधकयोरन्वयव्यतिरेकयोर्बलेन निरीक्ष्यमाणे सुखदत्वं दुःखदत्वं वा तासां वासनासंकरमूलकमेवेति सिध्यति। अतिपापीयान् घातकः परमबलाढ्यः सम्राट्, अतिनिर्मलचेताः साधुः, तथा नानाविधव्याधिपरि-

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

प्रयतमानस्तस्याहितमुत्प्रेक्षमाणया मात्रा तद्ग्रहणे निषिद्धो रोदिति। तत्र प्रधानं कारणं मोदके सुखदत्वमतिरेव। इदमेव हि अज्ञानं सर्व-प्राणिनां दुःखस्य निदानं। ते हि एतेन बलाद्वशीकृता अपारदुःख-सागरमग्ना रात्रिंदिवं शोचन्ति न शर्म लभन्ते। ननु प्राणिनो यथा दुःखं लभन्ते तथा सुखमपि लभन्ते इति कुतो दुःखस्यैवोल्लेखः ? सत्यं। यदिदं वैषयिकं सुखं मन्यसे दुःखमेव तत्। तथाहि। विषयसुखस्यैष हि स्वभावो यत्तत् पराननुपमर्द्य न जायते। धनिको धनमर्जयति तन्निमित्तं हि सुखं तस्य जायत इति प्राकृता जना वदन्ति। परन्तु तत् धनं सहस्रशो दीनान् मानवानापीड्य लभ्यते नान्यथा। धनिकस्य यदा धनातिरेकसुखं जायते तदा तादृशानां जीवानां पीडनजन्यं दुःख-मेवाधिक्येन भवति। अत एव प्रायो धनिका रात्रौ सुखेन न स्वपन्ति। सततमुत्स्वप्नायन्ते। एवं जानन्तोऽपि जना धनार्जने प्रवर्तन्ते दुःख-राशिमपि लभन्त इत्यन्यदेतत्। परन्तु विषयसंसर्गतः सुखं जायत इति तु व्याहतं। अत एव तदज्ञानमूलकमिति सर्वशास्त्रसिद्धान्तः। तथाच तत्त्वज्ञानस्य स्वलक्षणत्वरूपस्य सततं भावनया स्वयंप्रकाशरूप आलय-विज्ञानप्रवाहः सततं प्रवहति। कतकबीजसंसर्गेण पंक इव वृत्तिषु वर्तमाना वासना नामशेषा भवन्ति। वासनानां च क्षये तन्मूलकानि सर्वाणि दुःखानि नश्यन्ति। तेन चरमो दुःखध्वंसो नाम मोक्षनामा पुरुषार्थः सिध्यति। नात्र सुखं वा दुःखं वा किंतु निर्मलश्चेतोवृत्तिप्रवाहः स्वयंप्रकाश इति ज्ञेयं।

७

निरूपितं प्रमेयं। प्रमाणमधुना निरूपणीयं। तत्र प्रत्यक्षं स्वयंप्रका-शत्वरूपमेव। नान्यत्। इन्द्रियसंनिकर्षादेरभावात्। तच्च स्वतःसिद्धं। यथा हि अग्नेरौष्ण्यमग्निना सहैव जायते तथैव वृत्तेः स्वयंप्रकाशत्वमपि वृत्त्या सहैव संजायते। इति तदेव प्रत्यक्षं प्रमाणत्वेनात्र स्वीकार्यं। इदं

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



च सर्वैरपि स्वीकर्तव्यमेव । ये खलु इन्द्रियार्थसंनिकर्षोत्पन्नं ज्ञानमिति प्रत्यक्षस्य लक्षणं कुर्वन्ति तैरपि अनुव्यवसायस्य प्रत्यक्षत्वमुपपादयितुं स्वयंप्रकाशत्वरूपमेव प्रत्यक्षत्वं वक्तव्यं । तथाचेन्द्रियादिसंनिकर्षजन्यत्वं यत् प्रत्यक्षस्य लक्षणं कैश्चिदुच्यते तद्बाह्यविषयप्रत्यक्षस्य लक्षणमिति मन्तव्यं । मन्मते च बाह्यानामत्यंतासत्त्वान्न तल्लक्षणं भवितुमर्हति इति स्वयंप्रकाशत्वमेवैकं प्रत्यक्षस्य लक्षणं नान्यदिति सिद्धं । नन्वेवं सति ब्रह्मवाद एव समागतः । तथाहि । ब्रह्मवादिनोऽपि सर्वमेतद्भासमानं बाह्यं जगत् मिथ्या मन्यमानाः स्वयंप्रकाशमेकमेव तत्त्वं स्वीकुर्वाणाः 'प्रत्यक्षप्रमा त्वत्र चैतन्यमेव' इति निगदन्ति । केवलं त्वं नामभेदेन वस्तु तदेव कथयसि । भवान् वृत्तीनां स्वयंप्रकाशत्वं वदति । ते तु तदेव वस्तु ब्रह्मपदेन व्यवहरन्ति । नामभेदेन वस्तुभेदो न जायत इति बालोऽपि जानाति इति चेदस्थाने भ्रान्तो भवान् । महच्चेतद्भ्रान्तिस्थानं महापण्डितानामिति समुपपादितमपि पुनः सुस्पष्टमुपपाद्यते । जाग्रत्स्वप्न-सुषुप्त्याख्यास्तिस्रोऽप्यवस्थाः वृत्तिरूपाः स्वयंप्रकाशाः क्षणिकाः सत्य इति मे संमतं । ब्रह्मवादिनां तु एताभ्यो वृत्तिभ्योऽतिरिक्तमखण्डं सच्चिदानन्दरूपं तत्त्वमात्मरूपं स्वयंप्रकाशत्वेनेष्टमिति महान् भेदः। यो हि सूर्यवत्सुस्पष्टमिमं भेदं मनसि अकृत्वा तदभेदं ब्रूयात्स आत्मानमपि पशुभिन्नं मन्येतेति अलमतिविस्तरेण । अनुमानं च दुःखस्य वासना-जन्यत्वबोधकमन्वयव्यतिरेकाभ्यां गृह्यमाणाविनाभावमूलकं पूर्वोक्तं स्वीक्रियत एव दोषरहितत्वादिति ज्ञेयं ।

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


## [ माध्यमिकदर्शनावतरणिका । ]

निरूपितो योगाचारसिद्धान्तः प्रौढप्रबलयुक्तिसहस्रमण्डितः । यद्यपि तत्र बाह्यानामत्यन्तासत्त्वमुपपाद्य दुःखस्य तथा सुखस्य च केवलमज्ञानवासनाजन्यत्वं प्रतिपादितं । तेन वैराग्यस्य परमवसरः साधितः । ज्ञानस्य स्वयंप्रकाशत्वप्रतिपादनेन परं तत्त्वज्ञानस्योपकृतं । तथापि संदेहो बद्धमूल एव । स यावन्निःशेषं नापैति तावत्तत्त्वज्ञानं सामग्र्येण संवृत्तमिति न सिध्यति । तथाहि–यदि बाह्यो विषयः कोऽपि नास्ति नापि तज्जन्या वासनाऽपि वर्तते तदा वृत्तेः सद्भावे प्रमाणं किं ? नच स्वतःसिद्धा सेति वाच्यं । तथा सति तस्याः क्षणिकत्वं कुतः ? कुतश्च तस्या उत्पादध्वंसौ । यदि तु तदुत्पादध्वंसयोः कारणान्तरजन्यत्वं स्वीक्रियते तदा बाह्यार्थ-सद्भावस्वीकारः । तथाच सिद्धान्तहानिः । अथ यदि क्षणिकत्वस्वाभा-व्यात्तयोरवश्यंभाव इत्युच्यते तदाऽऽलयविज्ञानस्यापि क्षणिकत्वेन तस्याऽपि ध्वंसेन भाव्यं । भवतु को दोष इति चेत्तथा सति शून्यवादप्रवेशः स्यात् । किंच विषयाणां प्रकाशार्थं ज्ञानं वृत्तिरूपमपेक्ष्यते । यदि विषया एव न सन्ति तदा केषां प्रकाशनार्थं वृत्तिः स्वीकार्या ? नहि वंध्यासुतस्य स्नानार्थं गंगाजलमपेक्ष्यते । ननु विषयाणां ज्ञानात्पृथक्सत्ता नांगीक्रियते । ज्ञानमेव वृत्तिरूपं विषयाकारं बिभ्रत् प्रकाशत इति न वंध्यासुतस्य दृष्टान्तोऽत्रोचित इति चेत्तथापि विषयाणामसत्त्वं वंध्यासुतस्यासत्त्वान्नाति-रिच्यते । वंध्यासुतशब्दं प्रयुंजानस्य पुरुषस्य मानसी वृत्तिः काचनोदेत्येव । नच तावता वंध्यासुतस्य सत्त्वं सिध्यति । अपिच वृत्तेस्त्वया भौतिकत्वं तु स्वीकार्यमेव । तच्च भौतिकत्वं शुद्धसत्त्वरूपं वा भवतु । तथाच नैकोऽपि सात्त्विकः पदार्थः स्वयंप्रकाशो दृष्ट इति कथं तस्या एव स्वयंप्रकाशत्वं । तस्मात् ज्ञेयस्याभावे ज्ञानस्यापि अभाव एव योग्य इति शून्यमेव तत्त्वमितिवादिनो माध्यमिकस्य मतं प्रस्तूयते । तत्र पूर्ववद्यत्र साम्यं तत्र संक्षेपो यत्र च नूतनाः सिद्धान्तास्तत्र विस्तर इति बोध्यं ।

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

# पञ्चमं सोपानं ।

## बौद्धदर्शने माध्यमिकदर्शनम् (शून्यात्मवादः)

| प्रश्नाः — | उत्तराणि :— |
| --- | --- |
| १ किं ज्ञेयम् ? | १ शून्यं । न बाह्यं नान्तरं । |
| २ कीदृशो ज्ञाता ? | २ शून्यमेव । |
| ३ अज्ञानस्य स्वरूपं किं ? | ३ ज्ञेयं ज्ञानं ज्ञाता चास्तीति । |
| ४ दुःखस्य स्वरूपं किं ? | ४ पदार्थास्तित्वभावनाजन्यश्चित्त-विकारः । |
| ५ ज्ञानस्य स्वरूपं किं ? | ५ शून्यमिति भावना । |
| ६ दुःखध्वंसस्य (मोक्षस्य) स्वरूपं किं ? | ६ चरमो दुःखध्वंसः । |
| ७ एतेषु सर्वेषु प्रमाणं किं ? | ७ वस्तुतः प्रमाणाभाव एव । परन्तु यथायथं प्रत्यक्षमनुमानं च । |

**नो बाह्यं न च मानसं जगदिदं शून्यं त्वसत्वात्तयोः ।**
**नो बंधः सुखदुःखभाक् न च परो जीवो न मोक्षो न मा ॥**
**शून्यं तत्त्वमदः स्मरन् विगतभीः सौषुप्तमारात् सदा ।**
**नीरे पंकजवत् सृतौ विजयतेऽसौ शून्यवादी परं । ॥ १ ॥**

१

ननु कथं प्रत्यक्षमुपलभ्यमानानां नानाविधप्रवृत्तिकारणीभूतानां चेतोवृत्तीनामसत्त्वं प्रतिपाद्यते । असत्त्वं हि सर्वत्र कार्यतः कारणतो वा स्वरूपतो वाऽनुपलब्ध्या कस्यापि पदार्थस्य स्वीक्रियते । यथा हि शशशृंगं कारणरूपेण वा कार्यरूपेण वा स्वरूपतो वा नोपलभ्यते इति तस्यासत्त्वं सर्वसंमतं । न तु वृत्तीनां तथा। तस्मात्तासामसत्त्वकथनं न प्रामाणिकमानसगोचर इति चेदुच्यते । पुरोऽवस्थितं पदार्थं चक्षुषा वा घ्राणेनेन्द्रियेण वा सम्यगवलोक्य जायमानचेतोविकाराः पशवस्तस्यादाने वा हाने वा प्रवर्तन्ते इति पामरोऽपि जानाति । तदनन्तरं तेषां सुखं


Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

वा दुःखं वा संभवतीत्यपि । अत्र विचार्यते । यदि विषयग्रहणार्थं संजाताया वृत्तेर्विषयाभावेऽपि स्वार्थक्रियाकारित्वं तदा वृत्तेरपि का वाऽऽवश्यकता ? न च स्वप्नेऽभावादवृत्तिरूपत्वं विषयाणां स्वीकृतमिति वाच्यं । सुषुप्त्यनुरोधेन वृत्त्यभावस्याऽपि तथैव स्वीकर्तुमुचितत्वात् । किं च ज्ञेयानां सत्त्वे ज्ञानं प्रमाणमिति भवता वक्तव्यं । तथैव ज्ञानस्य सत्त्वे ज्ञेयमपि घटज्ञानं पटज्ञानमिति व्यवहारस्य दर्शनात् प्रमाणं वक्तव्यं । तथा च यया युक्त्या भवता ज्ञेयानामसत्त्वं साधितं तयैव युक्त्या ज्ञानस्यासत्त्वे साधिते शून्यं त्वनायासेन सिद्धं । अपि च जाग्रदवस्थाऽनुरोधेन बाह्यानामस्तित्वं प्रथमतः स्वीकृतं । तच्च स्वप्नावस्थानुरोधेन परित्यक्तं । केवलं ज्ञानसत्त्वमेवांगीकृतं । तदपि मया सुषुप्त्यवस्थानुरोधेन त्यज्यते इति न किंचिदनुपपन्नं । नच सुषुप्तावपि अहमाकाराऽऽलयविज्ञानधाराऽस्त्येवेति वाच्यं । अननुभवात् । नहि गाढं सुप्तोऽहं पर्यंके सुप्त इत्यनुसंधत्ते । अनुसंदधानश्च न गाढं स्वपिति । तस्मात् सुषुप्तौ अणुमात्रेणाऽपि भेदस्यासत्त्वात्तत्र वृत्त्यभाव एव स्वीकर्तुमुचित इति बोध्यं । यत्तु सुषुप्तौ अभावावलंबनात्मकवृत्तिसद्भावकथनं तदभावस्यापदार्थत्वात्तदाकारत्वं वृत्तेर्न संभवतीति हेयमेव । अपिच ये खलु सुषुप्तावपि आलयविज्ञानधारां स्वीकुर्वन्ति तान् पृच्छामः । सुषुप्त्यवस्था न मोक्षः । किंतु जाग्रदादिवत् साप्येकाऽवस्थैव । तथा च तत्र या वृत्तिरस्ति तस्याः सुखमयत्वं वा दुःखमयत्वं वा ? वृत्तीनां संस्कारावनद्धानां दुःखरूपत्वं त्वया सिद्धान्तितमेव । तथा सति सुषुप्तौ या वृत्तिर्जायते सा दुःखमयीति तस्याः संवेदनं स्यादेव । ततश्च सुषुप्त्यभावः प्रसज्येत । यत्र प्रत्यक्षं संवेदनं सा जाग्रत्, यत्र च संस्काररूपेण ज्ञेयानां वृत्तिः सा स्वप्नावस्थेति लक्षणात् । न चाज्ञातसत्ता वृत्तीनां स्वीकर्तुं योग्या । स्वयंप्रकाशत्वस्य स्वीकारात् । अतोऽस्या अनर्थपरंपरायाः परिहाराय सुषुप्तौ वृत्त्यभाव एव स्वीकरणीयः तथा च सिद्धो नः शून्यवादः । अपि च वृत्तीनां

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


प्रत्यक्षानुमानात्मकतया सुषुप्तौ या वृत्तिर्वर्तते सा कीदृशीति वक्तव्यं । न प्रत्यक्षात्मिका सा । तदानीमिन्द्रियसंनिकर्षाभावात् । नाप्यनुमानात्मिका, तस्या व्याप्तिज्ञानजन्यतया व्याप्तिज्ञानस्य तदानीमभावात् । अतोऽपि सुषुप्तौ वृत्त्यभाव एव । परं च ये खलु बाह्यानां पदार्थानां सत्त्वं स्वीकुर्वन्ति तान् पृच्छामः—ते पदार्थाः सन्तोऽसन्तो वा ? यदि प्रथमः पक्षस्तदा ते नित्याः स्युरिति प्रत्यक्षबाधः । अथैतद्दोषपरिजिहीर्षया द्वितीयः पक्षः समाद्रियते तदा शशशृंगतुल्यत्वात्तेषामुत्पाद एव न स्यात् । नहि भाविनो घटस्य वर्तमाने काले शशशृंगात् कश्चन विशेषः । नन्वस्ति विशेषः । कारणसंबंधरूप इति चेत्तन्मनोरथमात्रं । कस्तावदसदसतोः संबंधः । यद्यसतोऽपि घटस्य वर्तमानेन दण्डेन संबंधो भवेन्नूनं शशशृंगेण कस्मान्न दण्डस्य संबंध इति वक्तव्यमेव । नच सिद्धस्य गतिश्चिन्तनीयेति समाधानरीतिः श्रेयसी । घटस्य नित्यत्वं स्वीकृत्यापि समुपपादयितुं शक्यत्वात् । घटस्यासत्त्वेऽपि स्वप्ने घटस्य भानं तथाऽर्थक्रियाकारित्वं समुपपादितमिति न विस्मर्तव्यं । तथा च सदसद्भ्यामुपपादयितुमशक्यस्य बाह्यस्य तथाऽऽन्तरस्य पदार्थजातस्यासंभवादसत्त्वमेव स्वीकर्तुमुचितं । तदुक्तं—

परस्परविरोधे हि । न प्रकारान्तरस्थितिः ॥
नैकताऽपि विरुद्धानां । उक्तिमात्रविरोधतः ॥

किंच—किमिदं सत्त्वं नाम ? न तार्किकस्वीकृतं पदार्थान्तरमर्थक्रियाकारित्वं वा ? असंभवात् । तथाहि । ये खलु सत्तां पृथक्पदार्थत्वेन स्वीकुर्वन्ति तान् ब्रूमः—सा सत्ता सती वाऽसती वा ? यद्यसती तदा सा स्वाश्रितान् घटपटादीन् कथं सतः कुर्यात् । न ह्यन्धोऽन्यस्मै जन्मान्धाय पन्थानं दर्शयति । यदि च सा सतीति स्वीक्रियते तदा तत्र सत्ता कीदृशीति वक्तव्यं । नच सा स्वरूपेण तत्र सद्व्यवहारं जनयतीति वाच्यं । नहि नरः स्वस्कन्धमारुह्य नृत्यति । तस्मात्तत्रान्या सत्ता वक्तव्या । सा च

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


सती वाऽसती वेति विकल्पेऽनवस्थानमश्रेयस्करं । तस्मात् पदार्थजातेन साकं सर्वस्याऽपि जगतः सत्त्वं स्थापयितुं प्रवृत्ता वराकी सत्तैव विकल्पग्रस्ता न सिध्यति दूरे च तदाश्रयभूतानां पदार्थानां घटपटादीनां सत्त्वासत्त्वकथा। अथार्थक्रियाकारित्वं सत्त्वमिति द्वितीयः पक्षः ? तत्र पृच्छामः । यस्यार्थक्रियाकारित्वं तस्यैव वा सत्त्वं किं वा तत्कारणस्याऽपि । यदि प्रथमः पक्षस्तदासुखदुःखाभावादेरेव सत्त्वं स्यान्नतु घटादीनां । ते हि सुखदुःखाभावादीनां कारणत्वेन समुल्लिख्यन्ते । अथ तत्कारणस्यापि तदा चित्रगतघटादीनां कथं सत्त्वं ? तत्र जलाहरणादेरभावेनार्थक्रियाकारित्वाभावात् । नच घटबुद्धिजनकत्वमेव तत्त्वं तत्त्विहास्तीति वाच्यं । तथा सति शुक्तिरजतादिभ्रान्तिस्थलेऽपि प्रवृत्तिरूपार्थक्रियाकारित्वस्य सत्त्वेनासत्त्वस्य कुत्रापि संभवो न स्यात् । नन्वस्तु का क्षतिरिति चेत् तथा सति स्वाप्नाः पदार्था असन्त इति सिद्धान्तोक्तिरपि न संगच्छेत । किंच ये महता संरंभेण वदन्ति—मानाधीना मेयसिद्धिरिति । तान् प्रति ब्रूमः । किं भोः मानं पूर्वं सिध्यति ततो मेयं ? अथवा मानं स्वतःसिद्धमेव मेयं साधयति ? तत्र प्रथमपक्षे मानं केन सिध्यति तद्वक्तव्यं । यदि तन्मानं तदा तत् केन सिध्यतीत्यनवस्था । अथ द्वितीयः पक्षस्तदा किमिदं स्वतःसिद्धत्वं? मानान्तरानपेक्षत्वं तदिति चेत्तन्न संभवति । प्रमाणत्वेन स्वीकृतस्य चक्षुरादेः प्रदीपान्तरसापेक्षत्वात् । प्रत्यक्षमपि स्वविषयसम्यङ्निर्णयाय प्रमाणान्तरमपेक्षत इति सर्वत्र दर्शनात् । श्रोतव्यो मन्तव्य इति श्रुत्याऽपि प्रमाणानां प्रमाणान्तरसापेक्षत्वमेव दर्शितं । अतोऽपि न मानाधीना मेयसिद्धिः सिध्यति । तस्मात्—

इदं वस्तु बलायातं । यद्वदन्ति विपश्चितः ॥
यथा यथाऽर्थाश्चिन्त्यन्ते । विशीर्यन्ते तथा तथा ॥१॥

इति प्राचीनोक्तिमनुसृत्य विचार्यमाणे शून्यमेव तत्त्वं सिध्यति । नच शून्यसत्त्वे प्रमाणं किं? यदि किंचिदस्ति तदा कथं शून्यस्य सिद्धिः।

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


अथ न किमपि तदाऽप्रामाणिकस्य तस्य कथं सिद्धिरिति वाच्यं । भावानवबोधात् । न वयं किमपि शून्यं नाम घटादिवद्वा सुखादिवद्वा पदार्थं साधयामो येन प्रमाणापेक्षा भवेत् । किंतु भवद्भिः साध्यसाधन-भेदेन या पदार्थानामुपपत्तिः कल्पिता तस्या एवासत्त्वं प्रतिपादयामः । तत्रापि भवत्कल्पितानि प्रमाणान्येव प्रमाणानीति विद्धि । तथाहि । भूतले घटाभावः कथं सिध्यतीति विचारणीयं । घटानुपलब्ध्येति तदा केयं घटानुपलब्धिस्तद्वक्तव्यं । सा च घटोपलब्ध्यभाव इति वक्तव्यं । घटोपलब्धिसामग्र्यां सत्यां घटस्य सत्त्वे घटोपलब्धिर्जायेतैव । अत्र तु न जायते । अजायमाना सा घटस्यासत्त्वं बोधयतीति वस्तुस्थितिः । एवं भवद्भिर्व्यवस्थापिता प्रमाणप्रमेयव्यवस्थाऽनुपपद्यमाना तदभावं बोधयति । यथा परीक्षोत्तीर्णानां नामसु ज्ञातेषु अवशिष्टा अनुत्तीर्णा इति ज्ञायते तद्वत् अस्या भवदभिमतायाः प्रमाणप्रमेयव्यवस्थाया असत्त्वमेव ज्ञान-सौकर्याय शून्यपदेनास्माभिर्व्यवह्रियते । तथा च न काचिदनुपपत्तिः । अत एव नास्माकं प्रमाणापेक्षाऽपि । ये खलु नूतनं पदार्थं साधयितु-मिच्छन्ति तैः प्रमाणान्यपेक्षणीयानि । नहि वयं किमपि नूतनं शून्याख्यं प्रमेयं साधयितुमिच्छामः । नहि असत्त्वं नाम किंचित्तत्त्वं येन तस्मिन् प्रमाणापेक्षा भवेत् । इत्यलमतिविचारेण ।

२

निरूपितं प्रमाणप्रमेययोर्ज्ञानज्ञेयरूपयोरसत्त्वं। परन्तु यावज्ज्ञातुरपि असत्त्वं न प्रतिपाद्यते तावत्तत्परिपूर्णं न भवतीति ज्ञातुरपि असत्त्वं प्रति-पादयामः । ज्ञातृज्ञानज्ञेयाख्या शृंखला सकललोकदुःखकारणं प्रतीतैव । तत्र ज्ञानज्ञेये शाखाभूते । ज्ञाता तु मूलरूप इति छिन्नास्वपि शाखासु अवशिष्टं मूलं पुनरपि शाखाः प्रवर्तयतीति बहुशो दृष्टत्वात्तन्मूलभूतस्य ज्ञातुरेवोच्छेदाय सावधानेन प्रयत्यते । तत्र ये खलु विज्ञानमेवात्मेति वदन्ति ते तु ज्ञानस्य निराकरणेनैव निराकृता वेदितव्याः । नहि ज्ञेयं

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


विना ज्ञानं नाम वस्तु किंचित्सिध्यतीत्यनुपदमेव सम्यगुपपादितं। यः खलु देहमेवात्मानं ज्ञातारं वदति स चातिस्थूलदृष्टिरिति न तन्निराकरणाय प्रयत्यते। स्वप्नजागरितयोर्व्यभिचारश्च स्फुट एव। तस्मात् ये खलु ज्ञानाधिकरणत्वेन ज्ञातारं स्वीकुर्वन्ति नित्यमनित्यं च तथैव नित्यज्ञानरूपिणं तं वदन्ति ते निराकरणीयाः। नातःपरं प्रकारान्तरमस्ति। तत्र ये ज्ञानाधिकरणमात्मानं वदन्ति तान् ब्रूमः। आत्मनो ज्ञानाश्रयत्वे घटमहं जानामीति अनुभव एव प्रमाणत्वेन स्वीकर्तव्यः। स च सुषुप्तौ नास्ति तत्कथं सुषुप्तौ ज्ञातुरात्मनः सत्त्वे स प्रमाणं भवितुमर्हति ? नच सुषुप्तावात्मनोऽभावे कथं जाग्रतः स्मृतिरिति वाच्यं। यदि सुषुप्तौ ज्ञानं तदा न सुषुप्तिः ? अथ यदि सुषुप्तिस्तदा न ज्ञानमित्यस्य सिद्धान्तस्याबाधितत्वात् स्मृतिरपि कल्पनैव मिथ्याभूतेत्यगत्या कल्पनीयं। तस्मात् ज्ञानाधिकरणमात्मेत्यलक्षणं। किंच यथा ज्ञानाश्रय आत्मा तथैव सुखदुःखाश्रयोऽपि। तथा च यद्येक एवात्मा सुखदुःखयोः परस्परविरुद्धरूपयोराश्रयस्तदा तयोः परस्परं विरोध एव कथं ? नच भिन्नकालवृत्तित्वेन तयोः संश्रय आत्मा नतु समकालत्वेन। तथा च समकालत्वेन विरोधस्तु अस्त्येवेति वाच्यं। नित्ये कालसंबंधस्य वक्तुमशक्यत्वात्। कालसंबंधो हि जायमाने कार्ये संबंधिनि न नित्ये। तस्मान्नित्ये आत्मनि कालभेदेन तयोः सुखदुःखयोरवस्थानं कल्पयित्वा विरोधोपपादनमशक्यं। किंच ज्ञानाधिकरणत्वमात्मनो ये वदन्ति तेऽपि तं नित्यमथानित्यं स्वीकुर्वन्ति। तत्र नित्यपक्षेऽर्थक्रियाकारित्वं दुर्घटं। अनित्यपक्षे जन्मान्तरानुपपत्तिः स्मृत्यनुपपत्तिश्च। तस्मात् केनापि रूपेण ज्ञातुः सत्त्वं नोपपद्यत इति अप्रामाणिकी तत्कल्पना। ये तु ज्ञानरूपिणं तं वदन्ति नित्यमनित्यं च, तान् प्रत्यपि सैवानुपपत्तिः। नचानित्यज्ञानस्वरूपपक्षे प्रवाहरूपेण सन्तानापरपर्यायेण जन्मान्तरोपपत्तिः स्मृत्युपपत्तिश्च संभवतीति वाच्यं। कोऽयं प्रवाह इत्यस्यैवोपपादयितुमशक्यत्वात्। तथाहि। योऽयं प्रवाहस्त्वयोच्यते

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


स किं ज्ञानक्षणेभ्यो भिन्नोऽभिन्नो वा ! नित्योऽनित्यो वा ? न तावत् प्रथमः पक्षः । तथा सति स तान् क्षणान् विहायाऽपि तिष्ठेत् । नापि द्वितीयः । नित्यत्वेऽर्थक्रियानुपपत्तिर्दोष उक्त एव । अनित्यत्वे सोऽपि नश्येदिति पुनः प्रथमापत्तिस्तदवस्थैव । तस्मात् प्रवाहरूपेण नित्यत्वं वदतां शब्दमात्रं तत् न तथा वस्तुसदिति ज्ञेयं । परं च, यत् सत्तदनुभवगोचर इति सर्वसम्मतमेव । तथा च यद्यात्माऽस्ति अन्ये च विषयाः सन्ति तदा तेषां सत्त्वं कुतो न सुषुप्तौ भासत इति वक्तव्यं । तस्मान्न सन्त्येव त इति कल्पनमेवोचितमिति ज्ञेयं । ननु सुषुप्त्यनुरोधात् सर्वेषामसत्त्वं वा स्वीकार्यं किं वा जाग्रत्स्वप्नानुरोधेन सत्त्वं वा स्वीकार्यमिति विनिगमनाविरह इति चेत् सत्यं, जाग्रत्स्वप्नयोर्यथावस्थाविशेषरूपत्वं त्वया कल्प्यते तथा न सुषुप्तेः । सुषुप्तिर्नाम जाग्रत्स्वप्नयोरभाव एव । अत्यल्पमिदमुच्यते । वस्तुतस्तु जाग्रतोऽभावः स्वप्नः स्वप्नाभावः सुषुप्तिरित्येव न्याय्यं । नच सुषुप्त्यभावो जाग्रदित्यप्यस्तु इति वाच्यं । स्वयमभावरूपायाः सुषुप्तेरभावान्तरात्मकत्वकल्पनस्याशक्यत्वात् । यथाहि घटाभावः पटस्तथा पटाभावो घट इति वक्तुं शक्यं । न तु घटाभावाभावो घट इति कल्पना शक्या । अभावस्याभावो न कल्पनाविषय इति ज्ञेयं । तस्माज्जाग्रतः स्वप्नेऽभानाद्यथाऽसत्त्वं तथैव जाग्रत्स्वप्नयोः सुषुप्तावभानान्न सत्त्वमिति ज्ञातुरभावोऽर्थात्सिध्यतीति बोध्यं ।

२

निरूपितो ज्ञेयाभावस्तथा ज्ञातुरभावोऽपि । साम्प्रतं दुःखकारणीभूतस्याज्ञानस्य स्वरूपं वर्णनीयं । तदेव दुःखस्य कारणं । तत्र जीव आत्मानं सर्वक्रियाणां कर्तारं तथा विविधविषयविज्ञानानां ज्ञातारं मन्वानस्तासु तासु क्रियासु प्रवर्तत इति सर्वेषां नः प्रत्यक्षं । एवं प्रवृत्तोऽनिशं दुःखराशिं लभत इत्यपि । तत्र सर्वेषां दुःखानां कारणीभूत आत्मनिष्ठत्वेन संमतः कर्तृत्वज्ञातृत्वाभिमान एव नान्यत्किमपीति

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

सूक्ष्मदृष्टिः स्वीकुर्यादेव । ज्ञातृत्वाभिमानमूलक एव ज्ञानसत्तास्वीकारस्तन्मूलकश्च ज्ञेयसत्तास्वीकारस्ततो दुःखपरंपरा । अतोऽस्यानर्थस्य मूलभूतं ज्ञातृत्वमेव निराक्रियते । तस्यैवासत्त्वं सुषुप्त्यनुरोधात् स्वीक्रियते । एवमेव ज्ञेयज्ञानयोरपि । तथा चासतः सत्त्वकल्पनैवाज्ञानं । तदेव दुःखसाधनमपीति सर्वमुपपन्नं । ननु अज्ञानमसद्वा सद्वा ? आद्ये तस्यासतो निवारणप्रयासो व्यर्थः स्यात् । नचासतो वंध्यासुतस्य निराकरणे कश्चित् सचेताः प्रवर्तते । अथ द्वितीयः पक्षस्तदा स्वसिद्धान्तहानिः । शून्यस्यैव स्वीकारादिति चेन्न अज्ञानं नाम न ज्ञानविरोधि भावान्तरं । कस्याऽपि भावस्यानंगीकारात् । किंतु ज्ञातृज्ञेयज्ञानरूपेण भासमानानां यद्वास्तविकं शून्यमसत्त्वापर्यायं तत्त्वं तस्य ज्ञानाभावात् स तत्सत्तां स्वीकरोति । यः स्वीकरोति सोऽज्ञानीत्युच्यते । ततश्च शून्यभावनया निराकृते तत्सत्त्वरूपाज्ञाने स जीवः सुखी नाम दुःखाभाववान् भवतीत्युच्यते । ननु सा भावना च तिष्ठति न वा ? सत्यं । यावत्तदज्ञानं समूलं न नश्यति तावत्पर्यन्तं सा तिष्ठत्येव । नष्टे च तस्मिन् दग्धेन्धनाग्निवत् सा स्वयमेवोपशाम्यति । इदं तु अवधेयं । ज्ञातृज्ञानज्ञेयपदार्थानां भासमानानां स्वरूपे विचारिते सुषुप्तावभावबोधनादसत्त्वमेव तेषां स्वरूपं । ज्ञेयस्याभावे ज्ञानस्याऽपि तथा ज्ञातुरपि असत्त्वं गले पतितमेव । तस्मादेतेषां सत्ता भासकाले भासमानाऽपि न वास्तविकीति । वास्तविकीं सत्तामधिकृत्यैव सर्वत्र विचार्यते । अन्यथा भासमानकाले सत्तां पशुरपि स्वीकरोतीति सर्वविदितं । तस्मादज्ञानमपि शून्यमेव तत्त्वमिति बोध्यं । व्यवहारोपपत्तये ज्ञातृज्ञानज्ञेयसत्तास्वीकाररूपत्वमज्ञानस्येति निरूपितं ।

४

निरूपितमज्ञानस्य स्वरूपं । अधुना तज्जन्यस्य दुःखस्य स्वरूपं निरूपयामि । यद्यपि तत् प्रतिकूलभावनाविषय इति सामान्यलक्षणमत्रापि संगच्छते तथापि शून्यं तत्त्वं वदतां मते दुःखमपि शून्यमिति कुतो

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

दुःखनिराकरणप्रयास इति स्यात् कस्यचित् मतिः । तां निराकर्तुमिदं संक्षेपतो निरूप्यते । यथा ज्ञातृज्ञानज्ञेयादिभेदेन भिन्नानां भावानां सत्त्वं परिकल्प्यते तथा दुःखस्याऽपि कल्पितस्य सत्ता स्वीक्रियते । अतस्त-न्निराकरणप्रयत्नो युक्त एव । ननु अन्तःकरणवृत्तिरूपत्वाद्दुःखस्य तन्नाशः स्यादेवेति चेन्न यथा घटप्रत्यक्षस्थले घटाकारा जायमाना वृत्तिः क्षणिकत्वान्नश्यन्त्यपि पुनरुदेति तथैव दुःखं क्षणिकमपि पुनर्नवं नवमुदेत्येव । तथा च यथाऽन्येषां पदार्थानां सत्त्वं कल्पितं दुःखस्य जनकं तथा दुःखस्याऽपि असतः सत्त्वकल्पनं दुःखजनकमेव । तथा च तस्याऽपि असत्त्वभावनमेव न्याय्यं । यथा हि बालकः सुप्तः स्वप्ने महोल्बणविषं नागं वीक्ष्य तत आत्मनो दंशं तथा तज्जन्यं मृत्युं समुत्प्रेक्षमाणस्तन्नाशोपायं चाशक्यं मन्वानो दुःखायते । तद्दुःखं च सत्यं भावयन् रोदिति । तथैव ज्ञातृज्ञानज्ञेयपदार्थानां सत्तां कल्पयित्वा तल्लाभालाभाभ्यां हर्षविषादौ कल्पयन् जीवः सततं रोदितीति ज्ञेयं । सुखं तु कल्पितेष्वपि पदार्थेषु नास्तीति सौत्रान्तिकमतमस्माकं सम्मतमेवेति बोध्यं । अन्यत् सर्वं समानमिति नेह प्रपञ्च्यते ।

५

निरूपितमज्ञानेन सह तत्फलीभूतस्य दुःखस्य स्वरूपं । साम्प्रतं ज्ञानस्य स्वरूपं निरूप्यते । यद्यपि एतज्ज्ञानमपि इतरभावपदार्थवत् कल्पितसत्त्वमेव तथापि व्यावहारिकं तस्य सत्त्वं स्वीकृत्य स्वरूपं निरूपयामि । अन्यथा—

**न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः ।**
**न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता ॥ १ ॥**

इति प्रसिद्धं वचनमाश्रित्य वाचोमुद्रणमेव स्यात् । तत्र ज्ञानस्य यल्लक्षणं पूर्वं 'तस्मिंस्तद्बुद्धिः' इति कृतं तदेवास्माकमपि संमतं । ये खलु परस्पर-व्यभिचारिणो भावास्ते भासमाना अपि असन्त इति शुक्तिरजते सुलभो


Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

व्याप्तिग्रहः। इममेव व्याप्तिग्रहं प्रमाणीकृत्य सर्वेषां भासमानानां भावानां शून्यत्वं वयं प्रतिपादयामः । जाग्रति दृष्टा भावाः स्वप्ने न, स्वप्ने दृष्टा जाग्रति न, जाग्रत्स्वप्नयोर्दृष्टा भावाः सुषुप्तौ नेति परस्परव्यभिचारित्वं सर्वसंमतं। तेन शून्यमपि तत्त्वं सर्वसम्मतमिति मन्तव्यमेव। अत एव तद्विषयिणी या भावना सैव तत्त्वज्ञानं भवितुमर्हति। ननु सुषुप्तेरपि अवस्थाविशेषत्वात्तत्रापि शून्यत्वमप्रसिद्धमिति चेन्न सुषुप्तेरवस्थात्वं च जाग्रत्स्वप्नावस्थानुरोधेन न स्वतः। स्वतस्तत्र कस्यापि विषयस्याभानात्। किं च यद्धि ज्ञानं प्रमेत्युच्यते तस्याऽपि प्रमात्वं व्यावहारिकं संवृतितत्त्वापरपर्यायं न पारमार्थिकं। अस्मन्मते कस्यापि भावस्यानंगीकारात्। अन्यथा ज्ञानेन समं विषयस्य विषयेण साकं ज्ञानस्याशक्यः संबंधोऽगीकृतो भवेत्। न चैतच्छक्यमिति पूर्वमेव निरूपितं। तस्माद्वस्तूनां तत्त्वभूतया शून्यभावनया सततं भाविते चित्ते ज्ञातृज्ञानज्ञेयानामभावः सिध्यति।

६

निरूपितं शून्यभावनातत्त्वज्ञानं। अधुना तत्फलं चरमध्वंसो निरूपणीयः। स च पूर्ववदेव स्वसमानाधिकरणदुःखप्रागभावासामानाधिकरण्यरूपचरमत्वशाल्येव। न तत्र भेदः। इयांस्तु विशेषः—यथाऽन्येषां मते तत्त्वज्ञाने जातेऽज्ञाने विनष्टे शुद्धं ज्ञानं चेतोऽपरपर्यायं वर्तते तथा नास्मन्मते। अस्मन्मते सर्वशून्यतैव मोक्षः। स एव परमः पुरुषार्थः। न चैवं मोक्षः कस्येति पृष्टे किमुत्तरमिति वाच्यं। यस्य बंधस्तस्यैव मोक्ष इति सर्वेषामुत्तरवदस्माकमपि तदेवोत्तरं भवितुमर्हति। प्रत्युत शून्यमेव तत्त्वं स्वीकुर्वतामस्माकमुत्तरं समीचीनं भवेत्। ये खलु मोक्षस्य भावरूपत्वं सत्यत्वं स्वीकुर्वन्ति तैर्बन्धस्य मिथ्यात्वं वक्तव्यं। तथा च बन्धस्य मिथ्यात्वे मोक्षस्य नित्यत्वं सत्यत्वापरपर्यायं कथमपि न युक्तिसहमिति तावेतावुभावपि कल्पिताविति स्वीकरणीयमेव। तथा च बन्धमोक्षयोः कल्पनायां विरतायां शून्यं स्वयमेव सिध्यति। न तत्र प्रमाणापेक्षा।

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



तत्र चरमो विघ्नध्वंसस्तादृशज्ञातृज्ञानज्ञेयकल्पनायां बाधितायां सिध्यति । अन्यत् सर्वं समानमिति ज्ञेयं ।

७

निरूपिताः सर्वे शून्यवादिमतेन पदार्थाः । अधुना तत्र प्रमाणानि वक्तव्यानि । । ननु यदि शून्यवादी प्रमाणानि स्वीकरोति तदा शून्यं प्रमेयमिति सर्वं शून्यमिति प्रतिज्ञां च जहाति । अथ प्रमाणानि न स्वीकरोति तदा नायं लौकिको नापि परीक्षक इत्युन्मत्तवदुपेक्षेत । उच्यते। प्रमाणानां स्वीकारः प्रमेयसिद्धिफलकः तथाऽप्रमेयसिद्धिफलकश्च। तद्यथा—महिष्यां शृंगं चक्षुषा सिध्यति। तथैव शशे शृंगाभावोऽपि चक्षुषैव सिध्यति । न तत्र प्रमाणान्तरापेक्षा । तथैवान्येषां मते यानि ज्ञातृज्ञानज्ञेयस्वरूपाणां प्रमेयाणां साधकानि प्रमाणानि सन्ति तैरेव तेषामभावं वयं साधयाम इति न पृथक् प्रमाणस्वीकारस्यावश्यकता। न च प्रमाणस्वीकारे प्रतिज्ञाहानिबिभीषिका नो भयाय । तथा खलु देहातिरिक्तमात्मानं स्वीयसिद्धान्तत्वेन स्वीकुर्वतो नैय्यायिकस्य प्रतिदिनं देहालंबनं व्यवहारं कुर्वतोऽपि न प्रतिज्ञाहानिर्नापि वदतोव्याघातस्तथैव परिकल्पितानां ज्ञातृज्ञानज्ञेयादीनां प्रमेयाणां पारमार्थिकमसत्त्वं स्वीकुर्वतस्तदुपपादनाय प्रमाणान्यपि कल्पितान्येवांगीकुर्वतो मे न प्रतिज्ञाहानेरस्ति संभवः । तत्र प्रत्यक्षेण शून्यसिद्धिर्यथा—

आदावन्ते च यन्नास्ति । वर्तमानेऽपि तत्तथा ॥
वितथैः सदृशाः सन्तः । अवितथा इव लक्षिताः ॥ १ ॥

नन्विदमनुमानं ? सत्यं । हेतुत्वेनोपन्यासेऽनुमानमेव । इन्द्रियार्थसंनिकर्षमूलकत्वे तु प्रत्यक्षमेव । तथा च शून्योपपत्तये यान्यन्येषां प्रमाणानि तान्येव वयमपि गृहीत्वा यतिष्यामहे। वस्तुतस्तु नास्माकं प्रमाणैः प्रमेयसिद्धिः साधनीया वर्तते । शून्यस्य स्वाभाविकत्वादित्यलं ।

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


## [ जैनदर्शनावतरणिका ]

निरूपिता वैभाषिकसौत्रान्तिकयोगाचारमाध्यमिकभेदेन भिन्नानां चतुर्णामपि बौद्धानां सिद्धान्ताः। तथापि संशयो न समूलमुच्छिन्नः। तथाहि। अक्षणिकस्यार्थक्रियाकारित्वं दुर्घटमिति मत्वा क्षणिकत्वसिद्धान्तः स्वीकृतः। परन्तु क्षणिकस्याऽपि सा कथं संभवेत्? तथाहि। अर्थक्रिया हि सुखदुःखान्यतरसाक्षात्कारः। तत्र च सुखदुःखयोर्भिन्नत्वात्कथमेकस्मिन्नेव क्षणे क्षणिकरूपाद्विषयात्तदन्यतरस्य साक्षात्कारः संभवेत्। अथ यदि विषयस्तज्जन्यं दुःखमथ च तत्साक्षात्कारः सर्वमेतदेकमेव क्षणरूपमित्युच्यते तदाऽनुभवापलापः। ननु नास्ति गत्यंतरमिति चेदुच्यते। घटः सर्वथा न नित्यो नापि सर्वथाऽनित्यः। कारणरूपेण नित्योऽपि स्वरूपेण अनित्य एव। तथा च कार्यरूपेण नष्टेऽपि तस्मिन् कारणरूपेण सत्त्वान्नार्थक्रियाकारित्वं दुर्घटं। तथैव संसारे दुःखमपि नैकान्ततः। सुखस्याप्युपलंभात्। यथा प्राक्तनकर्मणोऽदृष्टापरपर्यायस्य दुःखं फलमेवमेव प्राक्तनकर्मणः सुखमपि फलं भवितुमर्हति। तथैव स्वलक्षणं तु कुतः? नहि ज्ञानज्ञेययोरभेदो मनसापि चिन्तयितुं शक्यः। ज्ञानं चान्तरं, ज्ञेयं च बाह्यमिति व्यवस्थायाः सर्वप्राणिसाधारण्यात्। नच ज्ञेयाव्यभिचारिज्ञानं न दृष्टमिति ज्ञानाव्यभिचारि ज्ञेयं दृष्टमिति च तस्य ज्ञानरूपत्वं स्वीक्रियत इति वाच्यं। व्याप्यव्यापकभावस्य तादात्म्यभिन्नत्वात्। नहि वन्हिधूमयोर्व्याप्यव्यापकभाव इति तयोस्तादात्म्यं। शून्यवादिनोऽपि सुषुप्त्यनुरोधादात्मनो नास्तित्वप्रतिपादकः सिद्धान्तो न युक्तिसहः। यथा जाग्रति सर्वविषयाणां ज्ञाताऽहंप्रत्ययविषयो, यथा वा स्वाप्नानां पदार्थानां द्रष्टा, तथैव सुषुप्तावपि अभावावलंबनतामसवृत्तिसाक्षी स्वीकरणीय एव। तस्मादहंप्रत्ययविषय आत्मा विविधप्रत्ययभाक् जन्मान्तरीयकृतकर्मणां फलीभूते सुखदुःखे भुंजानः पृथगेवेति प्रतिपादकं जैनमतं सविस्तरं प्रस्तूयते।

—:o:—

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

# षष्ठं सोपानं।

## जैनदर्शनम् ( परिणाम्यात्मवादः। )

| प्रश्नाः-- | उत्तराणि— |
|---|---|
| १ किं ज्ञेयम् ? | १ जीवाजीवौ। |
| २ कीदृशो ज्ञाता ? | २ ज्ञानाश्रयः कर्मफलस्य भोक्ता। |
| ३ अज्ञानस्य स्वरूपं किं ? | ३ नास्त्यात्मा परलोकभाक् इति मतिः। |
| ४ दुःखस्य स्वरूपं किं ? | ४ प्रतिकूलवेदनाविषय आत्मगुण-विशेषः। |
| ५ ज्ञानस्य स्वरूपं किं ? | ५ आवरणक्षयजन्य आत्मगुणविशेषः। |
| ६ दुःखध्वंसस्य (मोक्षस्य) स्वरूपं किं ? | ६ चरमो दुःखध्वंसः। |
| ७ एतेषु सर्वेषु प्रमाणं किं ? | ७ प्रत्यक्षमनुमानं शब्दश्च। |

**बाह्यं भिन्नमथाऽपि मानसमिदं कार्यं प्रमाणान्वयात्।**
**आत्मा कर्मफलोपभोगनिरतो देहाभिमानी चरन्॥**
**मोक्षः संसृतिदुःखभारविरतिः कर्मक्षयः साधनं।**
**प्रत्यक्षं त्वनुमा तथा जिननये शब्दश्च मानं मतं॥१॥**

१

तत्र यानीमानि कार्यरूपेण तत्तदिन्द्रियविषयभूतानि चत्वारि भूतानि प्रत्यक्षं समुपलभ्यन्ते तानीमानि पौद्गलिकानि। तेषां च जनकाः पुद्गलाः सावयवा एव। तेभ्यश्च भोगादृष्टवशान्नानाविधानि कार्याणि जायन्ते। बाह्यं च पृथिव्यादिभूतजातं तथाऽऽन्तरं च सर्वमपि मनआदि एतेभ्यः पुद्गलेभ्य एव संभवति। तत्र च प्रधानं कारणं प्राणिनो भोगादृष्टमेव। तथाहि। जीवो हि जगतीतले लब्धजन्मा नानाविधानि कर्माणि कुर्वाणः संचिनोति तज्जन्यान् संस्कारराशीन्। ते च युगपद्भोक्तुमशक्य-तयाऽनुकूलं कालं प्रतिपालयन्तस्तूर्ष्णीं तस्य जीवस्यात्मनि तिष्ठन्ति। तानेव

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


वयं संचितकर्मपदेन व्यपदिशामः। इह जन्मनि लब्धावसरं यद्भुज्यते कर्म तत् प्रारब्धपदेन कथ्यते। यच्च क्रियते यस्य च भावि फलं तत् क्रियमाणपदेन निगद्यते। एतदेव त्रिविधं कर्म नानाविधस्याजीवपदवाच्यस्य कारणं। ते च पुद्गलास्तथाविधकर्मान्यतरकर्मणा संचालिताः क्रमेण पुंजीभवन्तस्तस्य जीवस्य सुखं वा दुःखं वा साधयन्ति। ननु अक्षणिकानां तेषां भोगसाधनत्वं दुर्घटमिति पूर्वमेव निरूपितमिति चेदुच्यते। योऽयं क्रमस्त्वया क्षणिकत्वस्य सिद्ध्यै समुपात्तः स घटस्य वा मृत्तिकाया अपि? यदि घटस्य तदा नास्ति मे तावान् विवादः। कार्यं हि क्षणिकं वाऽक्षणिकं भवतु। यथा हि नाशस्य सामग्री तथैव स्थितेश्चापि सामग्री। नहि कारणं विना कार्यं भवति। तथा च कार्यस्य यदि नाशसामग्रीसांनिध्यं तदा तस्य नाशः। अथ स्थितिसामग्रीसांनिध्यं तदा तिष्ठत्यपि। न च स्थितिनाशौ स्वभावभूतौ कस्यचित्। किंतु कार्यतया कारणसाध्यौ। भवतु कार्यस्य किमपि। परंतु तदुपादानभूतस्य मृत्तिकातत्त्वस्य न नाशः। किंतु सदातनत्वमेव। तदुक्तं। उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सदिति। एतदुक्तं भवति। उत्पत्तिस्थितिलया यत्र कार्यस्य जायन्ते तदपि द्रव्यपदवाच्यं तत्त्वं सत्त्वेन स्वीकार्यमपि। यथा हि घटादयः प्रत्यक्षतः समुपलभ्यमानाः पदार्थाः सत्त्वेन सर्वैरपि स्वीक्रियन्ते तथैव तत्कारणीभूतं मृत्तिकाद्रव्यमपि सत्त्वेन स्वीकरणीयमेव। ननु घटादीनां पदार्थानां कारणीभूतं मृत्तिकाद्रव्यमेकं वर्तत इति कल्पनामात्रं? अनुपपत्तेः। तथाहि। यत् खलु घटादीनां कारणीभूतं मृत्तिकाद्रव्यं त्वयांऽगीक्रियते तत् खलु नित्यमनित्यं वा? यदि प्रथमः पक्षस्तदा तस्य कारणत्वानुपपत्तिः। घटाकारपरिणामितयैव तस्य कारणत्वं त्वया वक्तव्यं। नहि नित्यस्य परिणामः संभवति। व्याघातात्। अथ द्वितीयः पक्षस्तदा घटजननकाले तस्यासत्त्वात् कारणत्वमेव न स्यात्। न ह्यसतः कारणत्वं। किं चैवमनुमानविरोधः। परिणामातिरिक्तं परिणामकारणीभूतं द्रव्यं नास्ति

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


अनुपलंभात् । यन्नोपलभ्यते तन्नास्तीति शशशृंगे सुलभो व्याप्तिग्रहः । युक्तं चैतत् । कथमन्यथा सर्वत्र परिणामा एवाकारापरपर्याया धर्मपदवाच्याः समुपलभ्यन्ते । तदुक्तं-धर्मानभ्यधिको धर्मी पूर्वतत्त्वानतिक्रमात् इति । उच्यते । अस्ति हि तादृशं द्रव्यं प्रमाणेन समुपलब्धं । तथाहि । घटार्थी कुलालगृहं गत्वा यदा घटं वाञ्छति तदा घटं चिकीर्षुः कुलालः प्रथमं यद्द्रव्यमानयति तत्खलु मृत्तिकापदवाच्यं त्वयापि स्वीकरणीयमेव। कथमन्यथा तदेव घटनिर्माणार्थमानयति न तन्त्वादिकमन्यद्यत्किंचिदपि? कश्च घटेन साकं तस्य मृत्तिकाद्रव्यस्य संबंधः। कारणत्वं विहाय नान्यः कोऽपीति त्वया वक्तव्यमेव । तच्च नित्यमनित्यं वेति प्रश्नोऽवशिष्टः । स त्वधुना निराक्रियते । तत् द्रव्यं नित्यमनित्यं चेति उभयधर्माश्रयीभूतं स्वीक्रियते । ये खलु एकान्ततो नित्यं तत् स्वीकुर्वन्ति तेषां मते त्वदुक्तो दोषो वज्रलेपायते। यच्च त्वं तदेकान्तेनानित्यं स्वीकुरुषे तदपि अनुभवविरुद्धं। एकान्ततोऽनित्यस्य क्षणिकस्य तस्य भाविनो घटस्य च संबंधानुपपत्तेः । यदि तु असंबद्धमपि ततः कार्यं स्यान्नूनं सर्वं सर्वस्मात्समुत्पद्येत । तस्मादनेकान्तवाद एव श्रेयान्। तथैव प्रत्यक्षं समुपलंभात् । तथाहि। जलमग्निना दह्यते तत्र जलस्य द्रवीभावो नश्यति बाष्पभावः समुत्पद्यते । तत्र द्रवीभावबाष्पीभावयोर्जलकार्यभूतयोः कारणीभूतं जलद्रव्यं वर्तते तच्च कार्यात्मनाऽनित्यमपि जलरूपेण नित्यमेव । एवमेव भेदाभेदविषयेऽप्यनेकान्तवाद एव क्षेमकरः। ननु विरुद्धाविमौ कथमेकत्र तिष्ठेताम्? यदि विरुद्धानामपि सामानाधिकरण्यं तदा विरोधपदार्थ एव जगति न स्यात्। घटपटयोर्वैय्यधिकरण्यमेव तयोर्भेदे कारणं। सत्यं। अनेकान्तवादे तयोर्विरोधाभावात् । तथाहि । कार्यात्मना भेदे कारणात्मनाऽभेदे स्वीकृते कुतस्तयोर्नित्यत्वानित्यत्वयोर्विरोधः। अत्रेदं हृदयं। यथा हि कार्यं प्रत्यक्षेण तथाऽर्थक्रियाकारित्वहेतुनाऽनुमानेन च सदंगीक्रियते तथैव तत्तत्कार्यार्थिनां तत्तत्कार्यकारणीभूतसामग्रीसंपादनप्रवृत्त्युपपत्तये कारण-

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

द्रव्यस्याऽपि सत्ता स्वीकरणीया। द्वयोः स्वीकार एवंरीत्या प्रामाणिके विरोधपरिहारायानेकान्तवादस्वीकारं विना गत्यन्तराभावात् सोऽपि स्वीकार्यः। क्षणभंगवादतत्परैर्वैभाषिकैरपि संतानपदेनेदमेव कारणीभूतं द्रव्यं स्वीकृत्यानेकान्तवादः समालंबनीयः। प्रकारान्तरस्यासंभवादिति। ननु क्षणानां परस्परभिन्नत्वात्तदात्मकस्य वस्तुनोऽपि भेदः स्यादिति कारणद्रव्यकल्पना न वास्तविकीति चेन्न क्षणानां कारणत्वेऽपि कार्येण सह तेषां तादात्म्यं कुतः? अस्मिन् क्षणे घटो जायत इति सर्वेषामनुभवः। तत्र घटोत्पत्तेः कालेन संबंधो भासते। स च कालिकः। नैतावता क्षणेन साकं घटस्य तादात्म्यं। वस्तुतस्तु कालो नाम न पदार्थः कश्चनान्यः किंतु आकाशमेव तत्र तत्र विषय इति ज्ञेयं। एवं च तत्तज्जीवादृष्टेन परिणममानं पौद्गलिकं जगत् ज्ञेयपदवाच्यं जैनानां मते सिद्धं भवति।

२

निरूपितो ज्ञेयपदार्थः पुद्गलसमुदायरूपः पंचभूतात्मकः। अधुना ज्ञातुः स्वरूपं वर्णनीयं। तत्र जीवनादृष्टजन्यसुखदुःखयोर्भोक्ता चेतनाऽपरनाम्नो ज्ञानस्याश्रयीभूतः सतामसतां वा कर्मणां कर्ता पुनःपुनर्जननमरणाद्यैरवस्थाविशेषैर्विभिन्नपरिमाणशालिदेहपरिमाणोऽहंप्रत्ययगोचरो ज्ञाताऽऽत्मपदबोध्यः स्वीक्रियते। ननु अहंवृत्तेर्ज्ञानरूपतया तत्र भासमानस्य सुखदुःखादिमत्त्वस्य च भ्रान्तत्वकल्पनयैव सामंजस्ये स्वतंत्रस्यात्मतत्त्वस्य स्वीकारे प्रमाणं किं। सत्यं। उच्यते—अहंप्रत्ययस्य वृत्तिरूपत्वमेव तावत् प्रथममप्रामाणिकं। तथाहि। अयं हि अहंप्रत्ययः सर्वत्र तासु तासु सुखदुःखादिवृत्तिषु तथा घटपटादिसंवेदनेषु सातत्येन प्रतीयमानो न वृत्तिरूपः। तथात्वे तस्य क्षणिकत्वेन सातत्यानुभव एव न स्यात्। न केवलमस्य जाग्रति अनुभूयमानविज्ञानेष्वेव सातत्यं भासते किंतु स्वप्नेऽनुभूयमानपदार्थविज्ञानेष्वपि तथा सुषुप्तावपि। यदि नास्य सातत्यं तदा तत्रानुभूतानां

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


विज्ञानानां कथमन्यत्र स्मृतिः? न हि अन्यदृष्टमन्यः स्मरतीति दृष्टचरं। तस्मात् सर्वेषां तत्तद्विज्ञानानां नाशेऽपि अनुस्यूतरूपेण वर्तमानोऽयमहंप्रत्ययोऽन्यपदार्थविषयक एवेति स्वीकर्तव्यमेव। तथा चानुभवः—अहं पुरा त्वां बालमपश्यमधुना त्वां तरुणं पश्यामीति। अयमत्र गूढो भावः—संचितस्य कर्मणस्तथा क्रियायाश्च प्रत्यक्षं भेदेऽपि तयोर्ज्ञातारमहंपदवाच्यमभिन्नमेव मन्यते। असति बाधके सर्वैरपि अनुभूतस्याहंप्रत्ययवाच्यस्य पदार्थस्यासत्त्वं वाऽस्य भ्रान्तिरूपत्वं न वक्तुमुचितं। तत्र ज्ञानस्य भ्रमत्वं स्वीक्रियते यत्रोत्तरकाले विषयो बाधितो भवति। न च तथा प्रकृते। सर्वविज्ञानेषु ज्ञातृत्वेन प्रसिद्धस्याहंप्रत्ययवाच्यस्य पदार्थस्य कथमपि बाधादर्शनात्। तस्मादस्ति अहंप्रत्ययवाच्य आत्मा नाम पदार्थः। स एव ज्ञाता। अनुमानमपि-येषु व्यावर्तमानेषु यदनुवर्तते तत्तेभ्यो भिन्नमनुस्यूतं च। घटपटादिविज्ञानानि व्यावर्तन्तेऽहंप्रत्ययश्चानुवर्तते। तस्मात् सोऽयमहंप्रत्ययस्तेभ्यो भिन्नोऽनुस्यूतश्च। ननु अहंप्रत्ययविषयोऽयमात्मा ज्ञानाद्भिन्नोऽभिन्नो वा? भिन्नश्चेज्जडत्वापत्तिः। न हि विज्ञानाद्भिन्नानां घटादीनां चैतन्यं दृष्टं। अथ द्वितीयः पक्षस्तदा तस्य क्षणिकत्वं गले पतितमेव। न हि जडचेतनाभ्यां द्वितीयं तत्त्वान्तरमिह जगति दृश्यत इति चेन्न किमिदं जडत्वं तत्प्रथमतः कथनीयं। परप्रकाश्यत्वमिति चेद्विज्ञानस्याऽपि जडत्वापत्तिः। तथाहि। घटमहं जानामीति प्रत्यये जाते घटज्ञानस्य प्रत्यक्षं भवतीति सर्वेषामनुभवः। तत्र घट इति सविकल्पकज्ञानस्य जानामीति अनुव्यवसायेन प्रकाशनात्परप्रकाश्यत्वं सविकल्पस्यापतितमेव। यदि च परप्रकाश्यत्वमित्यत्र परपदेन प्रकाश्येतरजातिमान् गृह्यते तदा चक्षुःप्रकाश्ये दीपेऽव्याप्तिः। तत्र प्रकाश्यप्रकाशकयोरुभयोरपि पौद्गलिकत्वेनैकजातियत्वात्। तस्मान्नानुगतं जडत्वं किमपि सुवचं। किंतु यो हि ज्ञानाश्रयः स चेतनस्तद्भिन्नं सर्वमपि जडमित्येव स्वीकरणीयं। अतो ज्ञानाद्भिन्नत्वेऽपि आत्मनो न जडत्वापत्तिः। न चैवं ज्ञानस्य ज्ञानाश्रयत्वाभावेन


Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


जडत्वापत्तिरिति वाच्यं। ज्ञानभिन्नत्वेनापि विशेषितत्वात्। वस्तुतस्तु जडचेतनव्यवहारस्य लौकिकतया यथा लोकानुभवस्तथैव शास्त्रव्यवहारेऽपि स समर्थनीयः। लोके च न ज्ञानस्य केवलस्य चेतनत्वव्यवहारो दृष्टः। तदाश्रये तु दृष्ट इति तथैव सोऽङ्गीकर्तव्य इति तु तत्त्वं। देहस्य वेन्द्रियादीनां वाऽहंपदवाच्यत्वं बौद्धदर्शने निराकृतं तद्युक्तमेव। किं चाहमितिप्रत्ययस्य वृत्तिरूपत्वस्वीकारे बौद्धस्याग्रहोऽनुचित एव। तेषां मते विज्ञानस्य क्षणिकत्वात् कर्तुर्भोगाभावेनासामंजस्यं दुर्वारं। यदि अन्यः कर्ताऽन्यो भोक्तेति सिध्येन्नूनं शास्त्रनियमविप्लवः स्यात्। यः करोति स भुंक्त इति नियमे दृढं विश्वसन्तः प्रामाणिका नियमेन वर्तन्ते। सन्ताने तु पूर्वमेवोक्तमुत्तरं। अपि च जानाति इच्छति यतत इति कार्यकारणभावस्य सर्वसंमतत्वेन ज्ञानेच्छाप्रयत्नानामैकाधिकरण्यं वक्तव्यं। तच्चाहंप्रत्ययस्य वृत्तिरूपत्वे न संगच्छते, क्षणिकत्वाद्वृत्तीनां। न च नष्टानां वृत्तीनां कारणत्वं युज्यते। असंभवात्। इति न कथमपि अहंपदवाच्यत्वं वृत्तेः संभवति। ननु योऽयं त्वयाऽहंप्रत्ययविषयत्वेनात्मा स्वीकृतः स नित्योऽनित्यो वा? नाद्यः। तथा सति तस्य परिमाणमणु स्यात् परममहत् वा स्यात्। मध्यमपरिमाणशालि द्रव्यं तु न नित्यं दृष्टं। तथा च यदि अणुपरिमाणं तदा परमाणुरूपस्य प्रत्यक्षत्ववारणायाश्रयगतं महत्त्वं तत्र कारणं वक्तव्यं। परमाणौ च महत्त्वाभावान्न तद्रूपस्य प्रत्यक्षत्वं। तथा चाण्वात्माश्रितानां सुखादीनां प्रत्यक्षं न स्यात्। एतद्दोषपरिहाराय तस्य मध्यमपरिमाणत्वं स्वीक्रियते तदाऽनित्यत्वापत्तिः। न हि मध्यमपरिमाणशालि द्रव्यं नित्यं दृष्टं। अस्य दोषस्य परिहाराय यदि विभुत्वं स्वीक्रियते तदा नानाविभुभिर्मनःसंयोगस्य दुर्वारतया ज्ञानसंकरो दुर्वारः स्यात्। तस्मादात्मरूपस्यातिरिक्तद्रव्यस्य कल्पनैव नोपपद्यत इति चेत् सत्यं। तथापि आत्मा नाम सर्वज्ञानक्रियाणां कर्ता कश्चन स्वीकरणीय एव। अन्यथा चक्षुरादीनामिन्द्रियाणामिन्द्रियत्वं करणत्वं च न स्यात्। तथाहि।

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


इन्द्रस्य शरीराध्यक्षस्येमानि ज्ञानसाधनानि इन्द्रियाणीति व्युत्पत्त्या शरीराध्यक्षः कोऽपि स्वीकरणीय एव । न च विज्ञानमेव कर्तृ । तस्य ज्ञानत्वेन कर्तृत्वासंभवात् । करणत्वमपि क्रियायाः सिद्धौ कर्तुः प्रकृष्टोपकारकरूपं कर्तुरभावे नोपपद्यत एव । अत एव 'अहं घटं पश्यामि' इत्यनुभव आपामराणां दृश्यते । अस्मिन्ननुभवेऽहमर्थः कर्ता भोक्ताऽऽत्मा, घटपदार्थः कर्म, पश्यामीत्यनेन विज्ञानं कर्तृकर्मणोः संबंधकारणं भासते। तेन ज्ञातृज्ञेयज्ञानरूपा त्रिपुटी सिध्यति। न चैतेषु त्रिषु अन्यतमस्याप्यभावे वाऽनंगीकारे वा प्रमाणमस्ति । तस्मादयं ज्ञातृरूप आत्मपदार्थः सर्वैरप्यंगीकरणीय एव। इदानीं तस्य द्रव्यत्वात् परिमाणं वक्तव्यं । तत्रेदं विचार्यते। आत्मा तावत् सुखदुःखादीनां भोक्ता तत्साधनीभूतसाध्वसाधुकर्मणां कर्ता तत्तद्विषयाणां ग्रहणे तत्तदिन्द्रियाणां प्रवर्तयिता सिद्धः । स च यदि नियतपरिमाणस्तदाऽणुर्वा विभुर्वा स्यात् । तथात्वे च दोष उपरि प्रदर्शित एव । ततश्चार्थान्मध्यमपरिमाणः स्वीकर्तव्यः। युक्तमपीदं । तथाहि । आत्मा यदि शुभाशुभकर्मणां कर्ता तथा तत्फलीभूतानां सुखदुःखादीनां भोक्ता स्वीक्रियते तदा तादृशकर्मफलानां भोक्तृत्वस्य लाभाय तादृशभोगानुकूलानि शरीराण्यपि तस्यांगीकरणीयानि । भोगश्च शरीरावच्छेदेनैव संभवतीति सर्वेषामेवानुभवः । तथा च शरीरपरिमाणत्वमेवात्मनः स्वीकरणीयं । ततश्च शरीरारंभककर्मनाशे द्वितीये च कर्मणि भोगोन्मुखे शरीरारंभके आत्मापि तत्परिमाण एव भवति । तत एवास्य जीवस्य भोगो भवति । ये खलु आत्मानं नैव स्वीकुर्वन्ति तैर्भोगः कस्येति वक्तव्यं । येऽपि च तं स्वीकुर्वन्तोऽपि विभुं वाऽणुं वा स्वीकुर्वन्ति तेषां मतेऽपि पूर्वोक्तदोष एव। न हि व्यापकात्मपक्षेऽयं मे आत्माऽस्य कर्मणः कर्ता तत्फलस्य भोक्तेति वक्तुं शक्यं । व्यापकत्वात्। अणुत्वपक्षेऽपि देहव्यापिनः सुखस्य वा दुःखस्यानुपलब्धिप्रसंगोऽनिवार्य एव। तथा च ये खलु आत्मानं कर्मफलानां भोक्तारं

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

मन्यन्ते तैरात्मा शरीरपरिमाण एवांगीकरणीयो नान्या गतिरिति निश्चितं मन्तव्यं। ननु पुनर्जन्मकाले शरीरान्तरप्रवेशे आत्मनः परिमाणनाशात् केषांचित्संस्काराणां नाश आवश्यकस्तथा च कृतविप्रणाशाकृताभ्यागमप्रसंगो दुर्वार इति चेन्न-भावानवबोधात्। न वयं कुत्रापि निरन्वयं विनाशं स्वीकुर्मः किं तर्हि सान्वयं। तथा च कर्मजन्याः संस्कारा न निःशेषं नश्यन्ति किंतु प्राकट्यमलभमानास्तूर्ष्णीं स्वोदयकालमपेक्षमाणास्तिष्ठन्ति। यथा हि शरदि पक्वघासबीजं भुवि पतितमपि न नश्यति किंतु वर्षाकालमपेक्षमाणं तिष्ठति तथैव प्रकृतेऽपि ज्ञेयं। इदमत्र हृदयं। पापकर्मणामाचरणेन पतितो भवति मानव इति सर्वधर्मसिद्धान्तः। न तत्र कस्याऽपि विमतिः। अत्र विचार्यते। किमिदं पातित्यं नाम ? अवयवनाशो वा विपरीतसंस्कारो वा किंवाऽन्यत्किमपि। तत्र ज्ञानप्रकाशसंकोचं विना पातित्यस्यान्यस्य संभव एव न। पाषाणादिभ्यो जीवात्मनोऽयमेव विशेषो यत् ज्ञानप्रकाशस्तस्मिन्विद्यते। अत एव ताः सर्वाः पाषाणप्रभृतयः पापयोनय इत्युच्यन्ते। ज्ञानतारतम्यमेवाधिकृत्योत्तरोत्तरं योनिषु पावनत्वमपि निगद्यते। एतदुक्तं भवति-ज्ञानस्य न्यूनत्वं तथाऽऽधिक्यं निमित्तीकृत्य तासु तासु योनिषु पापपुण्यव्यवहारो भवति। तादृशयोनिप्राप्तानां जीवानां ज्ञानप्रकाशस्य न्यूनत्वं तथाऽऽधिक्यमपि अर्थादेव भवति। अतोऽन्यत् पापपुण्ययोनित्वं तासु तासु योनिषु शक्रेणाऽपि वक्तुं न शक्यं। तस्मात्तादृशकर्मभोगकारणीभूतशरीरपरिमाण एवात्मा ज्ञातेति स्वीक्रियते। न च मुक्तावस्थायां शरीराभावेन किंपरिमाण आत्मेति वाच्यं ? मुक्तिर्यच्छरीरावच्छेदेन यस्य जीवस्य जाता तादृशपरिमाण एव तत्रात्मा स्वीक्रियते। भोगकर्मावशेषस्याभावान्न शरीरान्तरं नापि तस्य परिमाणपरिवृत्तिरिति सर्वमवदातम्।

३

निरूपितं ज्ञातुः स्वरूपं। तद्धि परमोपकारकं जैनसिद्धान्तज्ञानाय।

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


इदानीं बंधकारणीभूतस्याज्ञानस्य स्वरूपं वक्तव्यं । यद्यपि 'अतस्मिंस्तद्बुद्धिः' इति निर्दुष्टमेव तल्लक्षणं तथापि तस्य विषयविशेषत्वं दर्शनभेदेनास्त्येव । यथा चार्वाकनयेऽस्त्यतिरिक्तो देहादात्मेति अज्ञानं तथा जैनदर्शनेऽपि कीदृशमज्ञानस्य विशेषं रूपं तद्वक्तुमावश्यकं । एतेन यदि सर्वेषु दर्शनेषु समानमेवाज्ञानस्य लक्षणं किमिति प्रतिदर्शनं तस्य स्वरूपं निरूप्यते पिष्टपेषणवदिति दूषणं निरस्तं । उच्यते । नास्ति परलोको नास्ति कर्मफलभोगो नास्ति शास्त्रमिति आवरणकर्मसमाक्रान्तचेता जीवस्तेषु तेषु पापेषु कर्मसु प्रवर्तते । सा च प्रवृत्तिः पापसंचयं कारयन्ती नानायोनिषु अपाराणि दुःखानि भोजयते । यदि तु जीवोऽस्य पापस्य कर्मणोऽनिष्टं कर्म मया भोक्तव्यमेवेति जानीयान्नूनं स तस्मिन् न प्रवर्तेत । नन्विदं निषिद्धं पापजनकमिदं तु पुण्यजनकं कर्मेति कथं बोधः । यदि शास्त्रमत्र प्रमाणमिति चेत्तदपि भिन्नभिन्नधर्मबोधकं नैकरूपं । अत एव न प्रमाणमिति चेदुच्यते । यद्यपि सामान्यतोऽत्र शास्त्रमेव प्रमाणं तथापि शास्त्रं यत् खलु आत्मानुभवबोधसंवादि तदेव प्रमाणं नान्यादित्यंगीक्रियते । तथाहि । शास्त्राणि हि निर्मलचेतोभिर्मान्यैः प्रनष्टाज्ञानैर्मुनिवरैरात्मानुभवं प्रमाणीकृत्य दीनानां पापिनां जीवानां पापप्रवृत्तिनिराकरणार्थं लिखितानि । तत्र 'अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहाख्यानि पंचमहाव्रतानि जैनधर्ममूलभूतानि । एतानि पावनानि शुभोदर्काणि समाचरितानि जीवानां पापराशिं समूलं कषन्ति । ये तु वैदिका यागेषु हिंसामाचरन्ति, वदन्ति च वयं धार्मिका इति, तत्तु आत्मानुभवविरुद्धमुपहासास्पदमेव । न हि हिंसा कस्मैचिदपि रोचत इति दृष्टचरं । एवं राज्ञा शूद्रस्य धनं बलाद् गृहीत्वा ब्राह्मणाय देयमित्यादीनि स्मृतिवचनान्यपि न प्रमाणं ? न हि आपदर्थं रक्षितस्य धनस्य बलात्कारेण ग्रहणं कोऽपि धर्मं ब्रूते । नापि एवंविधः कस्याप्यनुभवः । न च सुन्दोपसुन्दन्यायेन सर्वेषामपि अप्रामाण्यं वक्तुमुचितं । आत्मानुभवस्य

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

साहाय्यकत्वात् । यच्च शास्त्रमात्मानुभवसंवलितं तस्य प्रामाण्यं । तद्रहितानां च न प्रामाण्यमिति व्यवस्थायां न दोषः । ननु किमिदमज्ञानं भावरूपमभावरूपं वा ? द्रव्यं वा गुणो वा कर्म वा ? उच्यते । किमनेन प्रपंचसाधनविकल्पजालेन । अस्माकं मते स्याद्वादस्य सर्वकल्पनानाशे कल्पवृक्षसदृशस्य स्वीकारात् । अथ तत् द्रव्यरूपमेव स्वीक्रियते तावतापि तस्य कर्मरूपत्वं निराबाधं । तदेव संचितमज्ञानरूपं कर्म जन्मान्तरे तादृशमेव कर्म कारयति यत् पुनरपि अयं जीवो दुःखानि भुंज्यादेव । यदा तु सत्कर्मणामाचरणादस्यावरणीयं कर्म क्षीयते तदाऽस्य ज्ञानं समुत्पद्यते । तेन शुभं कर्म भवति । ततोऽस्य दुःखानि क्षीयन्ते । इति तु तत्त्वं । तानीमानि अज्ञानमूलकानि प्राधान्येन त्रिरूपाणि कर्माणि । 'दर्शनीयमोहनीयावरणीयाख्यानि' एतानि अनिशं जीवं तासु तासु योनिषु दुःखानां भोगाय प्रवर्तयन्ति ।

४

निरूपितमज्ञानस्य स्वरूपं संक्षेपेण । दुःखस्य स्वरूपमधुना निरूपणीयं । तत्र दुःखस्य सामान्यलक्षणं 'प्रतिकूलवेदनाविषय' इत्यविरुद्धमेव । तथापि तस्य किं मनोधर्मत्वं वाऽऽत्मधर्मत्वं वा ज्ञेयसर्पादिधर्मत्वं वा इति विचारणीयं । तदर्थं किंचित् विचारयामः । तत्र तावद्भौतिकस्य कस्यापि पदार्थस्य दुःखं न धर्मो भवितुमर्हति । अयोग्यत्वात् । न हि भौतिकेषु चेतना वर्तते । येन तदुपभुक्तं भवेत् । दुःखं हि पापस्य कर्मणः फलत्वेन स्वीक्रियते । तत्र यः कर्मणां कर्ता स एव तत्फलस्य भोक्तेति युज्यते । न ह्यन्यः कर्ताऽन्यो वा भोक्तेति सुसंगतं लोके । तस्मात् पापानां पुण्यानां कर्मणां फलं कर्तरीति युक्तमेव । तस्मादस्यात्मधर्मत्वं संभवति । न हि जडेषु पापपुण्यकथाऽपि । न हि नारिकेलफलपतनेनाधःशायिनि ब्राह्मणे मृते ब्रह्महत्याफलेन नारिकेलवृक्षो लिप्यते । मनसोऽपि भौतिकत्वान्न

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


दुःखधर्मत्वं । न च मनसो भौतिकत्वे किं प्रमाणमिति वाच्यं । मनो भौतिकमिन्द्रियत्वादित्यनुमानस्य जागरूकत्वात् । ननु मनसो भौतिकत्वेऽनित्यत्वापत्तिः । न च का क्षतिरिति वाच्यं । तथा सति पुनर्जन्म न स्यात् । आत्मनो व्यापकत्वात् क्रियानुपपत्तौ मनसो गमनेनैव पुनर्जन्मव्यवस्था करणीया । सा नोपपद्यत इति चेन्न – आत्मनो व्यापकत्वं स्वीकृत्य क्रियाया अनुपपत्तौ मनसो जन्मान्तरकल्पनाकरणं द्राविडप्राणायामवत् व्यर्थप्रयासकरं । जन्मान्तरे कारणं कर्म–तच्च कर्त्रा कृतं । तस्यैव च तत्फलस्य भोगः । एवं सति मनसो गमनेन को वा लाभः । तस्मादस्यानर्थस्य परिहारायात्मैव गमनागमनक्रियावान् कुतो न स्वीक्रियते । न च क्रियावत्वे सावयवत्वापत्तिः । त्वन्मते परमाणूनां सावयवत्वाभावाद्व्यभिचारः । न चात्मनः क्रियावत्वे भौतिकत्वापत्तिः ? त्वन्मते मनसः क्रियावत्वेऽपि भौतिकत्वाभावात् । अत आत्मन एव यथा ज्ञानं सुखं धर्मस्तथा दुःखमपि तस्यैव । अनेन मोक्षेच्छाऽपि तस्योपपद्यते । अन्यथा बंधः कस्येति दुर्निरूपणीयं भवेत् । तस्मात् सकलकर्मणां कर्तुरेव दुःखं धर्म इति न किंचिदनुपपन्नं ।

५

निरूपितमज्ञानं तत्फलेन दुःखेन सह । अधुना ज्ञानस्य स्वरूपं निरूपणीयं । तद्धि सर्वेष्वेतेष्वभ्यर्हितं । यद्यपि ज्ञानं नाम 'तस्मिंस्तदिति' सर्वसंमतमेव तथापि अस्ति प्रतिदर्शनमवान्तरभेदः । तं निरूपयितुं प्रयतामहे । तत्र ज्ञानं नाम मानसी वृत्तिः । अज्ञानमपि मानसी वृत्तिरेव । तथापि सा सत्कर्मसहिता दुःखानामन्तं करोति । परा दुष्कर्मसाचिव्येन दुःखपरंपरां सूते । वृत्त्योश्च न विशेषः । किंतु सहकारिसाचिव्यभेदेन कार्यभेदो भवति । दृष्टं चैतल्लोके । पार्थिवत्वाविशेषेऽपि आम्रफलेषु कानिचिन्मधुररसभांजि पराणि आम्लरसवन्त्येव समुपलभ्यन्ते । तत्र च पाकाख्यतेजःसंयोगवैचित्र्यमेव कारणं वक्तव्यं । एवं प्रकृतेऽपि कर्म-

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

वैचित्र्यमेव निमित्तीभूय दुःखं दुःखध्वंसं च जनयतीति ज्ञेयं। तत्र नेतरदर्शनवदत्र केवलं ज्ञानमेव मोक्षाख्यस्य दुःखध्वंसस्य कारणं किंतु सम्यक्चारित्रमप्यपेक्षते। तदुक्तं—

**सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः।**

एतत्परमोपयोगित्वाद्विव्रियते। तत्र पदार्थानां नानारूपत्वात् किं मोक्षमार्गोपयोगीति जिज्ञासायामाचार्यो ब्रूते सम्यग्दर्शनमिति। अयं भावः। यद्यपि परधनादिषु धनत्वं सर्वसाधारणं तथापि तत्र हेयदृष्टिर्मोक्षोपयोगिनीति सैव मुमुक्षुणा समालंबनीया। तथैव हिंसादिषु हिंसात्वमस्त्येव परन्तु न तन्मोक्षोपयोगि किंतु हेयत्वमेवेति तदेव मुमुक्षुणा सदा ध्यातव्यं। एवमन्यत्रापि। एषा सम्यग्दृष्टिः सतां कर्मणामाचरणाद्वा तीर्थोपसेवनाद्वा परमपूज्यगुरुमुखारविंदनिर्गतशास्त्रोपदेशश्रवणाद्वा संजायते। अस्यां सम्यग्दृष्टौ सम्यगभ्यस्तायां क्रमेण न्यूनीभवति आवरणकर्मप्राबल्ये सम्यग्ज्ञानं प्रजायते। तस्मिन्नपि पूर्वोक्तहेतूनां सततसेवनाद्वर्धमाने आवरणीयं कर्म निर्मूलमिव जायते। ततः सम्यक्चारित्रं प्रादुर्भवति। तत्रापि सावधानेन वर्तमानस्य सम्यक्चारित्रस्यावरणीयं कर्म समूलकाषं कषति ततो निरतिशयो दुःखध्वंसो भवति। तदेतत् सर्वं कर्मविपाकमूलमित्यवगन्तव्यं। तदेतज्ज्ञानमात्मनो धर्म एव। यथा यथाऽऽवरणीयं कर्म क्षीयते तथा तथा ज्ञानप्रकाशोऽधिको भवति मिहिकानाशे सूर्यस्य प्रकाश इव। क्रमेण वर्धमानः स प्रकाशो यदा निरतिशयतां प्राप्नोति तदा स व्यापको भवति। लोकाकाशं विहायालोकाकाशे स आत्मा तिष्ठति। आवरणसहितस्य प्रारब्धस्य वा संचितस्य वा कर्मणोऽभावात्स न ततोऽन्यत्र गच्छति। सोऽस्य मोक्ष इत्युच्यते।

६

अस्मिन् सम्यग्दर्शनादिकारणसमुदाये सर्वथा निष्प्रतिबंधं वर्धमाने दुःखानि नश्यन्तीत्युक्तं। तस्य दुःखध्वंसस्य विशेषफलत्वं पूर्वोक्तमेव।

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



अस्मिन्नपारे संसारे नानाविधानि पापानि पुण्यानि वा कर्माणि कुर्वतः प्रतिदिनं दुःखं वा सुखं वा संजायत एव । सुखसाधनीभूते कर्मणि भोगोन्मुखे सुखं भवति । दुःखकारणीभूते कर्मणि भोगोन्मुखे दुःखं भवति । तस्मिन् कर्मणि विनष्टे सुखं वा दुःखं वा नश्यति । एवमनिशमिदं चक्रमावर्तते । तत्र दुःखध्वंसस्य कर्मणां नाशादेव सिद्धिरिति न तत्र महान् प्रयासः । नूतनस्य दुःखस्यारंभकं यत् कर्म तस्यैव विनाशे वा प्रादुर्भावाभावे वा प्रयत्न आस्थेयः । सर्वस्याऽपि अस्य त्रिविधस्य दुःखजातस्य कारणमावरणीयं कर्म । तस्यैवोच्छेदे कारणाभावादेव दुःखस्यानुत्पादः सिद्धः । ननु अयं दुःखध्वंसः कस्य धर्मः । न तावदात्मनस्तस्य दुःखाश्रयत्वेन दुःखध्वंसानाश्रयत्वादिति चेदुच्यते । अन्यमत इवास्मन्मतेऽपि ध्वंसस्य प्रतियोग्यधिकरणवृत्तित्वस्वीकारेणात्मन एव तदधिकरणत्वात् । अयं भावः-यस्य च बंधः स एव मुक्त इति सामानाधिकरण्येन प्रतीयते । बन्धश्चाज्ञानमूलकस्तत्तत्कर्मसंचयजन्मा दुःखानुभव इति पूर्वमेव निरूपितं । स चानुभव आत्मन एव नान्यस्येति चात्मनः सिद्धौ प्रसाधितमेव । तथा च तत्त्वज्ञानादिकारणकलापसाध्यो दुःखध्वंसात्मको मोक्षोऽपि तस्यैव भवितुमर्हति नान्यस्येति न्यायप्राप्तमेव । न हि संभवति रोगोऽन्यस्यारोग्यं चान्यस्येति । तस्माद्दुःखाधिकरणमात्मैव दुःखध्वंसस्याधिकरणं कालभेदेनेति वक्तव्यमेव । न चात्मनः कालसंबंधोऽनुपपन्न इति वाच्यं । अयं दोषो नित्यात्मवादिनां नैय्यायिकप्रभृतीनां शिरसि पातनीयो न मम । अहं चानेकान्तवादी सर्वस्य पदार्थजातस्य नित्यानित्यतां स्वीकुर्वाणः कथमस्य दोषस्य पात्रं । ये तु नैय्यायिकादयो नित्यमेकान्तत आत्मपदार्थं परिकल्प्य तत्र कालभेदेनाज्ञानस्य तथा ज्ञानस्य च सत्त्वं स्वीकृत्य मोक्षमुपपादयन्ति तैरेव नित्य आत्मनि कालस्य क्षणसंतानरूपस्य संबंधः कथं स्वीक्रियत इति न जानामि । अनुपपन्नश्च नित्ये कालसंबंधः । यश्च कालसंबंधी सोऽनित्यो यथा घट इति व्याप्तेः । कालसंबंधित्वमेवानित्यत्वं नान्यत् । तस्मादेकान्ततो



Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


नित्यात्मवादिनां मतेऽनुपपन्नो मोक्षस्तथा बंधोऽपीत्यास्तां तावत् ।

७

निरूपितं प्रमेयजातं मोक्षपर्यन्तं। अधुना प्रमाणं निरूपणीयं। तत्र प्रत्यक्षमनुमानं च पूर्वमेव निरूपितं। यद्यपि अस्ति तत्र प्रत्यक्षे वाऽनुमाने वाऽवान्तरभेदो लक्षणान्यपि भिन्नानि सन्ति तथापि वयमिह सामान्यतो दर्शनसिद्धान्तान् दर्शयितुं प्रवृत्ता न पुनस्तेषां साकल्येन निरूपणे। अतोऽवान्तरलक्षणभेदनिरूपणं नावश्यकं। यश्च विशेषः स एव सविस्तरं निरूप्यते। ननु कथं शब्दस्य प्रामाण्यं ? उच्यते—यथा हि इन्द्रियसंनिकर्षानन्तरं विषयस्य साक्षात्कारे जाते प्रवर्तमानस्तं विषयं लभत इति प्रत्यक्षं प्रमाणं स्वीक्रियते, यथा वा धूमदर्शनानन्तरं व्याप्तिं स्मरन् वन्ह्यर्थी पर्वतं गत्वा वह्निं लभत इति व्याप्तिज्ञानमपि प्रमाणत्वेनांगीक्रियते, तथैव 'घटमानय' इति परेण प्रयुक्तं वाक्यं श्रुत्वा घटपदस्य घटपदार्थेन वर्तमानं संबंधं जानन् घटमानयति तेन शब्दस्याऽपि प्रमाणत्वं स्वीकरणीयमेव। ननु शब्दस्य कीदृक्प्रमाजनकत्वं स्वीक्रियते। न तावत् घटानयनरूपस्य। तच्चानुमानेनान्यथासिद्धं। तथाहि। 'घटमानय' इति उत्तमवृद्धेन चोदितो मध्यमवृद्धो घटमानयति। तं च घटमानयन्तमवलोक्य नूनमस्य वाक्यस्यायमर्थ इति बालोऽवधारयति। तदेतदवधारणमेव शक्तिग्रहस्य कारणमिति शाब्दिकैरंगीक्रियते। परन्तु एतदनुमानमिति कोऽपि सचेताः स्वीकुर्यात्। न च शब्देन सहार्थस्य संबंधो विलक्षण एवांगीकर्तव्य इति वाच्यं। शाब्दिकैस्तादात्म्यस्य तथाऽन्यैर्व्याप्तिरूपस्य संबंधस्य क्लृप्तस्यैव स्वीकारात्। यथा हि वह्निधूमयोर्व्यापकव्याप्यभावः संबंधस्तथैव घटपदघटपदार्थयोरपि स एव भवितुमर्हतीति चेन्न शब्दप्रमाणस्य क्लृप्तप्रत्यक्षादिप्रमाणवैलक्षण्यमस्ति। तथाहि। प्रत्यक्षादीनि प्रमाणानि सद्वस्तुविषयकाणि शब्दस्तु असद्वस्तुविषयकोऽपि। तदुक्तं। 'अत्यन्तासत्यपि स्वार्थे शब्दो ज्ञानं करोति हि'। युक्तमपीदं। 'एष वंध्यासुतो याति खपुष्पकृतशेखरः।

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


कूर्मक्षीरचये स्नातः शशशृंगधनुर्धरः ' ॥ इत्यादिषु बोधोत्पत्तेर्दर्शनात् । न च तथापि प्रमाणत्वं कथमिति चेदित्थं यथा प्रत्यक्षस्याबाधित-विषयकत्वेन प्रमाणत्वं तथैवास्यापीति जानीहि । किं च शब्दस्य यत् स्वातंत्र्येण प्रमाणत्वं स्वीक्रियते तदनुमानाविषयपदार्थानां बोधनात् । तथाहि । ये खलु वेदादयो ग्रंथास्तथाऽन्येऽपि प्रामाणिकास्तेभ्यः खलु यो बोधो जायते स शब्दप्रमाणमूलक एवेति वक्तव्यं । न च तेषां कर्तुराप्तत्वेना-नुमानमूलकोऽयं बोध इति वाच्यं । अपौरुषेये कर्तुरभावात् । कर्तुः प्रतिसंधानाभावेऽपि बोधोत्पत्तेर्दर्शनात् । एष वंध्यासुत इत्यादीनामप्रामाण्यं नानाप्तोक्तत्वेन किंतु बाधितविषयकत्वेन । तथैव ' घटोऽस्ति ' इत्यत्र प्रामाण्यमबाधितविषयकत्वेन । न चाप्तोक्तत्वेन । तस्माच्छब्दः स्वतंत्रं प्रमाणं भवितुमर्हति । अपि च केवलं घटं पश्यन्नविदितवाच्यवाचकभावो मानवः ' अयं घटः ' इति वक्तुं न शक्नोति । विदितवाच्यवाचकभावस्तु शक्नोति । अतोऽन्वयव्यतिरेकाभ्यां शब्दः स्वतंत्रं प्रमाणमिति ज्ञेयं । अत्रेदं तत्त्वं । प्रमाणानां प्रमाणत्वं प्रमाजनकत्वेन । यद्धि प्रमां जनयति तत् प्रमाणमिति सर्वे मन्यन्ते । प्रत्यक्षानुमानयोः प्रमाजनकत्वे न विवादः । केवलं विसंवादकस्य तथा संवादकस्य शब्दस्य समानानुपूर्वीकत्वेन कस्यचित्स्यान्मतिः कथं शब्दः प्रमाणमिति । तेनेत्थं विचारणीयं—नायं शब्दस्य दोषः किंतु प्रयोक्तुः । अन्यथा शुक्तिरजतभासकस्य चक्षुषोऽपि प्रमाणत्वं कथमिति कुतो न ते शंका ? अस्त्येवेति चेत्तथा सति सर्वं शंका-कुलमिति तव प्रवृत्तिरेव कुत्रापि न स्यात् । नास्त्येवेति चेत्तथा सति वदतो व्याघातः । तस्मादस्त्येव शब्दः प्रमाणमिति बोध्यं ।

---

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

## ( नास्तिकदर्शनानां नास्तिकत्वं किंमूलकं ? )

निरूपितानि चार्वाकमारभ्य जैनपर्यन्तानि षट् दर्शनानि। एतानि नास्तिकदर्शनपदेन व्यपदिश्यन्ते। सोऽयं व्यपदेशः किंमूलक इति वयमिह विचारयामः। येन विचारितेनाग्रिमाणां निरूपयितुमिष्टानां दर्शनानामास्तिकपदव्यपदेशोऽपि विचारितो भवेत्। वाचकाः! दर्शने प्राधान्येन विचारयितुमिष्टोऽहंप्रतीतिविषय आत्मेति प्रथमत एव मयोक्तं। तदनुषंगतोऽवशिष्टं सर्वमित्यपि। तस्मादयं व्यपदेशोऽपि आत्मविचार-विषयक एव भवितुमर्हति। नास्तिकशब्दस्य व्यपदेश एतेषां नानाचार-बोधकत्वमूलक इति प्रथमत एव कथयामि। नापि तेषां निंदाकारणं। यथा हि लोके यो यथेच्छं वर्तते न कुलाचारान् वा शास्त्रोक्तानाचारान् वा प्रतिपालयति तं जना नास्तिकत्वेन व्यपदिशन्ति तथा नायं व्यपदेश एतेषां किंतु एभिर्यानि तत्त्वानि प्रतिपादितानि तथाऽऽत्मविषयका ये विचाराः प्रदर्शितास्तदवलंबन एवायं शब्द इति मे भाति। दर्शनशास्त्रे आचारशास्त्रस्य संबंधाभावात्। न ह्यस्मिन् दर्शनशास्त्रे चार्वाक एवंजातीय एवमाचारवानमुकदेशसंभवोऽमुकगोत्रोत्पन्नो मानव आसीदि-त्यंगीक्रियते। नापि युक्तियुक्तं चैतत्। किंतु एतादृशात्मविचारस्य नाम चार्वाकदर्शनमिति। एतानि दर्शनानि आत्मविचारपरंपराः कस्यचित् भाग्यशालिनो निर्मलचित्तस्यात्मजिज्ञासोरिति पूर्वमेवोक्तं। तदेव भूयो भूयो निगद्यते लिख्यते च। महत् खलु भ्रमस्थानमेतन्महा-पण्डितानामपि। अतः सावधानेनेमानि दर्शनानि ज्ञेयानि। अस्तु। तत्र नास्तिकशब्दस्य व्युत्पाद्यमानस्य नास्तीति मतिर्यस्येत्यर्थः संपद्यते। तत्र किं नास्तीत्यपेक्षायामात्मविचारप्रधानत्वाद्दर्शनानामात्मा नास्तीति आयाति। नन्वेवं कथमेतेषां चतुर्णां नास्तिकत्वं यत एभिरात्मा स्वीक्रियत इति चेत् शृणु। चार्वाको हि देहमात्मानं वदति बौद्धो बुद्धिं जैनश्च परिणामिनमात्मानं। एते चत्वारोऽपि दार्शनिका आत्मानमुत्पादविनाश-

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



शालिनं मन्यन्ते । यथा हि घटस्योत्पादविनाशौ भवतस्तथैवात्मनोऽपीति चतुर्णामपि संमतं । एवं सति आत्मा नाम जडविलक्षणं तत्त्वमेव तैर्नांगीकृतमिति सिद्धमेव । तथा च तैरात्मा न स्वीकृत इत्युक्तौ को वा विरोधः । एतदुक्तं भवति-ये खलु जडविलक्षणं आत्मतत्त्वं स्वीकुर्वन्ति ते चास्तिका इत्युच्यन्ते तैरेव जडविलक्षण आत्मा स्वीकृतः । ये च जडमेवैकं तत्त्वं स्वीकृत्य तद्विशेषमेवात्मतत्त्वं मन्यन्ते तेषां जडतत्त्वस्य सार्वत्रिकत्वादात्मतत्त्वानभ्युपगमाच्च नास्तिकत्वमिति ज्ञेयं । अत्रेदं हृदयं-या खलु चेतना संवेदनापरपर्याया सर्वेषु जीविषु समुपलभ्यते सा किमाश्रयेति विचारयितुं प्रवृत्ताः सर्वे दर्शनकाराः । तत्र ये खलु जडाश्रितां जडकार्याश्रितां वा तां संवेदनां वदन्ति तेषां जडैकतत्त्ववादिनां नास्तिकत्वव्यपदेशः। ये तु स्वतंत्राखण्डतत्त्वाश्रितां वदन्ति ते आस्तिकपदेन समुल्लिख्यन्ते । तथा चास्तिकनास्तिकव्यपदेशस्तत्तत्सिद्धान्तस्वीकृततत्त्वविषयक एव बोध्यः। किं च जडे घटे उत्पादविनाशशालित्वं दृष्टमिति तद्यत्र सोऽपि जड इति आत्मनोऽपि जडत्वं स्वीक्रियत इति निर्विवादं । तथा चैतेषां चतुर्णामपि मतेषु नास्ति पापस्य कर्ता नरकस्य भोक्तैक आत्मा । पापस्य कर्तुर्मानवशरीरपरिमाणस्य तथा नरकदुःखस्य भोक्तुरन्यशरीरपरिमाणस्यात्मनो भिन्नत्वात्। अतो जडवादवादित्वादेतेषां नास्तिकत्वं। नैय्यायिकश्च यद्यपि आत्मानं न चेतनं मनुते तथापि कर्तृभोक्तृत्वयोरभिन्नं सन्तमात्मानं तु स्वीकुरुते इत्यखंडपदार्थस्य स्वीकरणादास्तिकत्वं तस्य निर्बाधं ।। एवं सांख्यादिष्वपि बोध्यं । तथा च अखंडपदार्थस्य स्वीकरणादास्तिकत्वं तस्यास्वीकरणाच्च नास्तिकत्वमिति सिद्धं ।

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

## ( न्यायदर्शनस्यावतरणिका )

निरूपितानि षट् नास्तिकदर्शनानि। तेष्वेतेषु अन्तिमो जैनः शरीरपरिमाणमात्मानमभ्युपगच्छन् कर्मफलभोगं च सत्यं वदन् प्रष्टव्यः। किमयमात्मनो भोगो वास्तवो वाऽवास्तवो वा? आद्येऽनिर्मोक्षापत्तिः। एकस्मिन् कर्मणि भुक्ते तदनन्तरं द्वितीयकर्मणो भोगः प्रारभ्यत एव। अनन्तजन्मसंचितानां कर्मणामानंत्यात्। किं च भोगे भुज्यमाने सत्ये नूतनकर्मणां संचयस्य संभवादनिर्मोक्षापत्तिर्दुरुद्धरैव। यदि च सम्यग्ज्ञाने जाते तथा सम्यक्चारित्रे समाचरिते नूतनं कर्म न संसृज्यत इति निगद्यते तदा तदेव कुत इति विचारणीयं। यदि चाज्ञानसचिवं कर्म बंधकारणमित्यज्ञानाभावान्न तदानींतनं कर्म बन्धायाऽलमिति मोक्षव्यवस्थोपपत्तिरित्युच्यते तदाऽज्ञानमूलकस्य व्यवहारस्य कल्पितत्वदर्शनाद्बन्धस्य कल्पितत्वं दुर्वारं। बन्धस्य कल्पितत्वे कर्मभोगस्य कल्पितत्वं गले पतितमेव। तथा सति वृथाऽनुभवविरुद्धं चात्मनोऽनित्यत्वस्वीकरणं। भक्षितेऽपि लशुन इति न्यायेनात्मनोऽनित्यत्वे स्वीकृतेऽपि कर्मभोगस्य कल्पितत्वं सिद्धमेव। एवं कस्याप्येकस्यैव वस्तुनो भावाभावात्मकत्वं न युज्यते। यथा हि सद्वस्तु तथैवासदपि वस्त्वन्तरमेव भवितुमर्हति। यथा हि घटादिकं सद्वस्तु प्रमाणेन चक्षुरादिना गृह्यते तथैव घटाभावात्मकमपि वस्तु प्रमाणेनैव गृह्यते। तत्र को वा विशेषः? असति विशेषे एकस्यैव वस्तुनो भावाभावात्मकत्वं परिकल्प्य तदुपपादनार्थं स्याद्वादकल्पनाऽपि प्रयासायैव। किं च—सावरणस्यैव जीवस्य कर्मक्षये आवरणविनाशे सर्वज्ञत्वकल्पनमपि न साधु। यथा हि सरोगस्य रोगिणो रोगनिवृत्तिबोधको वैद्यो नीरोगोऽपेक्षितः। एवं सावरणस्याज्ञानिन आवरणक्षयबोधकः स्वतःसिद्धः सर्वज्ञ एवापेक्षितः। अन्यथा विश्वासाभावप्रसंगः। परमाणूनामपि सावयवत्वे मेरुसर्षपयोः साम्यप्रसंगो दुर्वार इत्यादिनिरूपणपरं न्यायदर्शनं तूयते।

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

# सप्तमं सोपानम् ।

## न्यायदर्शनम् ( नित्यात्मवादः )

| प्रश्नाः— | उत्तराणि— |
| --- | --- |
| १ किं ज्ञेयम् ? | १ प्रमाणाद्याः षोडशपदार्थाः । |
| २ कीदृशो ज्ञाता ? | २ ज्ञानसुखादिगुणवान्नित्यः । |
| ३ अज्ञानस्य स्वरूपं किं ? | ३ अनित्येषु देहादिषु आत्मत्वबुद्धिः । |
| ४ दुःखस्य स्वरूपं किं ? | ४ तादृशबुद्धिजन्य आत्मगुणविशेषः । |
| ५ ज्ञानस्य स्वरूपं किं ? | ५ आत्मनि नित्यत्वभावना । |
| ६ दुःखध्वंसस्य (मोक्षस्य) स्वरूपं किं ? | ६ आत्मन्येव दुःखस्य चरमो नाशः । |
| ७ एतेषु प्रमाणं किं ? | ७ प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दाः । |

**बाद्याः षोडश सन्ति मानसुमिता भावाः पदार्थाः पराः ।**
**एतेषां मननात्समस्तजगतीदुःखाद्विमुक्तिर्भवेत् ॥**
**जीवा भिन्नधियः प्रमाणपटवो नैय्यायिकानां नये ।**
**प्रत्यक्षं त्वनुमा तथाह्युपमितिः शब्दश्च मानं मतं ॥ १ ॥**

१

न्यायदर्शने ज्ञेयत्वेन व्यपदिष्टाः षोडशपदार्था इमे—

**प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनदृष्टान्तसिद्धान्तावयवतर्कनिर्णयवादजल्पवितण्डाहेत्वाभासच्छलजातिनिग्रहस्थानानां-तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसाधिगम** ( गौ. सू. १ ) इति सूत्रे कथिताः।

तत्र प्रमाणानि अग्रे निरूप्यन्ते। प्रमेयाश्च पदार्था अनुपदमेव निरूपयितुमिष्टाः । संशयादयस्तु पदार्था अस्या आन्वीक्षिक्याः पार्थक्यबोधाय समुपदिष्टाः । 'आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्च शाश्वती । विद्याश्चैताश्चतस्रस्तु लोकसंस्थितिहेतवः '। तत्र अग्निहोत्र-हवनादिप्रस्थाना त्रयी । हलशकटादिप्रस्थाना वार्ता । स्वाम्यमात्यभेदा-

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

नुविधायिनी दण्डनीतिः । संशयादिभेदानुविधायिनी आन्वीक्षिकी इति चतसृणां विधानां संग्रहः । तत्रैतेषां सर्वेषां पदार्थानां निरूपणस्य प्रकृतानुपयोगाद्विरम्यते । प्रमेयाणि तु निरूपणीयानि प्रकृतोपयोगात् । तत्र प्रमेयाणि—

**आत्मशरीरेन्द्रियार्थबुद्धिमनःप्रवृत्तिदोषप्रेत्यभावफलदुःखापवर्गास्तु प्रमेयं ॥ ( गौ. सू. ९ )**

तत्रात्मनः स्वरूपं सविस्तरमग्रे लक्ष्यते । यथायथमन्येषामपि निरूपणमग्रे भविष्यति । सर्वस्यास्य जगतः कारणत्वेनाभिमता इन्द्रियार्थाः प्रथमं निरूपणीयाः । ते च भूतपदवाच्या सूत्र एव निर्दिष्टाः ।

**पृथिव्यप्तेजोवायुराकाशमिति भूतानि ( गौ. सू. १३ ) ।**

एतेषां गुणा अपि—

**गन्धरसरूपस्पर्शशब्दाः पृथिव्यादिगुणास्तदर्थाः ( गौ. सू. १४ ) ।**

यद्यपि पृथिव्यां गन्धादयश्चत्वारोऽपि गुणाः सन्ति तथापि प्राधान्येन व्यपदेशा भवन्तीति न्यायेन गंधवत्वमेव तस्या लक्षणं । एवमेवान्येषामपि लक्षणानि ज्ञेयानि । तत्र कारणतो जगदारंभक्रमो न्यायनय इत्थं । कस्मिन्नपि कार्ये जननीये त्रीणि कारणान्यावश्यकानि । तानि च-समवाय्यसमवायिनिमित्तरूपाणि । तत्र समवायिकारणत्वं द्रव्यस्यैव । द्रव्यत्वं च गुणवत्वं क्रियावत्वं वा । असमवायिकारणत्वं च गुणकर्मणोर्नान्यस्य । निमित्तकारणत्वं तु साधारणमिति । कार्यत्वं चोत्पादविनाशशालित्वं । तत्र घटाख्यकार्ये जनयितव्ये कपालौ समवायिकारणं, तयोः संयोगोऽसमवायिकारणं, दण्डादिकं तु निमित्तकारणमिति त्रयाणां कारणानां सत्त्वे कार्यं घटाख्यं समुत्पद्यते । एवमेव प्रदर्शितेषु पृथिव्यप्तेजोवायुषु एतेषां त्रयाणां कारणानां सत्त्वं वक्तव्यं । तत्र कारणगुणाः कार्यगुणानारभन्त इति प्रायोदृष्टत्वात्तादृशमेव समवायिकारणं कल्पनीयं यादृशगुणकं कार्यं दृश्यते । तत्र पृथिव्यप्तेजोवायूनां भिन्नगुणकत्वदर्शनात्तत्कारणानि भिन्नान्येव ।

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


तानि च तादृशगुणशालीनि सन्ति कार्यतो न्यूनपरिमाणानि वाऽधिकपरिमाणानीति विचारे प्रस्तुते कारणानां न्यूनपरिमाणत्वमेव युक्तमिति भाति । तथाहि । कपालयोः संयोगाज्जायमानो घटः कपालादधिकपरिमाण एव भवितुं योग्यः । तथा दर्शनात् । न हि दृष्टेऽनुपपन्नं नाम । तथा च तस्यापि कार्यतया तत्कारणेनाऽपि न्यूनपरिमाणेन भवितव्यमिति क्रमेण यत्र परिमाणतारतम्यस्य विश्रामः स परमाणुर्मूलं कारणमभ्युपगम्यते । ते चाणुपरिमाणिनोऽगणिताः । ननु परमाणोर्लक्षणं किं ? न तावत् 'जालसूर्यमरीचिस्थं यत् सूक्ष्मं दृश्यते रजः । तस्य षष्ठतमो भागः परमाणुः स उच्यते ' इति कतिपयन्यायग्रंथोक्तमेव तदिति वाच्यं । तस्यासंख्यानां भागानां यंत्रेणाधुना प्रत्यक्षविषयत्वात्परमाणुलक्षणत्वं व्याहतं । मैवं । परमाणुलक्षणं तु यतः परमणुर्नास्ति तदिति व्युत्पत्त्यैव सिद्धं । अयं भावः— जगतः कार्यभूतस्य समवायिकारणमेतादृशं सूक्ष्मं मूलभूतं द्रव्यं वर्तते यस्यावयवा न सन्ति । यदि तेषामपि अवयवाः स्युस्तदा मेरुसर्षपयोरपि साम्यप्रसंगः स्यात् । तस्मात् परिमाणस्यापकर्षरूपस्य क्वचिद्विश्रान्तिर्वाच्या। यत्र च विश्रांतिः स एव परमाणुरिति सिद्धमिति न परमाणोः पृथग्लक्षणस्याऽस्त्यावश्यकता । ननु सिध्यन्तु नाम परमाणवः परन्तु तेषां प्रतिद्रव्यभिन्नत्वे प्रमाणं किं ? न च कार्यवैजात्यमेव प्रयोजकमिति वाच्यं । पृथिव्यां परमाणुवैजात्याभावेऽपि कार्यवैजात्यस्य दर्शनादिति चेन्न । द्विविधं हि लोके कार्यं दृश्यते । वस्तुस्वभावात्मकमौपाधिकं च । यत् खलु न्यायशास्त्रे सांसिद्धिकं नैमित्तिकं च व्यपदिश्यते । तत्र जलतेजोवायुरूपाणि द्रव्याणि वस्तुस्वभावं न जहति। जलं च शीतेन वातेन संबद्धं हिमं भवति परन्तु तस्य द्रवत्वं स्वाभाविकं । सर्वदोपलंभात् । न च हिमरूपमेव तस्य स्वभावः कुतो नेति वाच्यं । यत् खलु आगन्तुककारणजन्यं तदेवौपाधिकमिति सर्वत्र दर्शनात् । न चेदं हिमत्वं जलस्यौपाधिकं


Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



नेति न तत्तस्य स्वभावः। अन्यथौष्ण्यमपि जलस्य स्वभावः स्यात्। न चेष्टापत्तिः। तथा सति स्वभावज्ञानस्यासंभवात् प्रवृत्त्यनुपपत्तेः। तस्मात् जलतेजोवायूनां स्वभावभेदात् परमाणुरूपमूलकारणभेदोऽवश्यं स्वीकरणीयः। पृथिव्यां तु कार्यवैजात्यस्य प्रायः सर्वत्रैव दर्शनात्तत्रागत्या पाको नाम विलक्षणस्तेजःसंयोगः कारणत्वेन कल्प्यते। तथाहि। पृथिव्यां रूपरस-गंधस्पर्शानां क्वचिच्चतुर्णामपि क्वचित् त्रयाणां क्वचित् द्वयोः क्वचिच्चैकस्यैव परिवृत्तिदर्शनात् कारणवैजात्यमवश्यं कल्पनीयं। तच्च यदि समवायिकारणेषु कल्प्यते तदा सर्वेषु पृथिवीत्वव्यपदेशो न स्यात्। अतोऽसमवायिकारणवैचित्र्यं वक्तव्यं। तस्यापि कार्यत्वान्निमित्तकारण-वैजात्यमेवान्ततस्तत्कारणत्वेन कल्पनीयं। तानि निमित्तकारणानि भिन्नानि पाकसंयोगपदेनोच्यन्ते। ते च विलक्षणाः कार्यानुमेयाः तेजः-संयोगाः परमाणुष्वेव जायन्ते। तेन च पूर्वगुणेषु विनष्टेषु नूतनेषु समुत्पन्नेषु पुनः क्रमेण द्वयणुकादिकं घटादिपर्यन्तं कार्यजातं जायत इति मन्यन्ते नैय्यायिकैकदेशिनो नवीनाः। प्राचीनास्तु घटादिष्वपि तेजःसंयोगं मन्यमानाः पूर्वगुणानां नाशं तथा नूतनगुणोत्पत्तिं मन्यन्ते। आस्तामयमवान्तरो विशेषः परन्तु पृथिवीपरमाणवस्तु गंधाश्रया एकरूपा एव। जलादीनां चतुर्णां तु भिन्ना भिन्ना एव। तत्र न्यायमते सृष्ट्युत्पत्ति-क्रम इत्थं। प्राणिनामदृष्टरूपधर्माधर्मसहकारिणीश्वरेच्छा प्रथमं सर्गादौ जायते। तया च परमाणुषु क्रिया ततो विभागो विभागात् पूर्वसंयोगनाश उत्तरसंयोगोत्पत्तिरिति क्रमेण द्वयणुकादिकं घटादिपर्यन्तमवयविरूपं कार्यजातं जायते। तत्र द्वयणुककार्ये परमाणव उपादानं नाम समवायि-कारणं। परमाणुद्वयसंयोगोऽसमवायिकारणं। प्राणिनामदृष्टादिकं वेश्व-रेच्छादिकं वा निमित्तं कारणमिति बोध्यं। एवमेवाग्रे प्रतिकार्यं व्यवस्था ज्ञेया। ननु दृश्यस्यास्य स्वकार्यीभूतस्य जगत आरंभकं सूक्ष्मं मूलकारणं परमाणुरूपमित्यत्र किं प्रमाणं। न चोपरिदर्शितं प्रत्यक्षमेव प्रमाणमिति

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



वाच्यं । तत्प्रत्यक्षं कपालविषयं वा मृद्विषयं वा । नाद्यः । तथाननुभवात् । अन्त्यं तु प्रमाणं सत् कार्यापेक्षया कारणं बृहदिति विपरीतार्थमेव प्रतिपादयति । अत एव कपालावस्थामपनेतुं कुंभकारः प्रयतते । तस्मात् घटापेक्षया कारणीभूता मृत्तिका बृहती तथा जगदपेक्षया तत्कारणं कुतो न बृहत्सिध्येदिति चेदत्रोच्यते । कारणत्वं हि कार्यनियतपूर्ववृत्तित्वं । तच्च कपालयोरेव न मृत्तिकायाः । किं च मृत्तिका हि सामान्यं नाम । न तया किमपि कार्यं कर्तुं शक्यं । यदा हि सा किमपि घटादिकं कार्यं करोति तदा कपालाकारं धृत्वैव कार्यं करोति । अयं च कपालाकारोऽपि कार्यतया स्वकारणमवलंब्यैव घटादिकार्यं कर्तुं प्रभवति नान्यथा । तथा च तस्य तस्येत्येवंक्रमेणान्ततः परमाणुषु विश्रान्तिः कर्तव्या । तथा च न केवलं कपालाकार एव कारणं । नापि निराकारा मृत्तिका । किंतु कपालरूपं कार्यं स्वसमवायिकारणे तिष्ठदेव घटादिकार्यं जनयतीति कपालावेव घटस्यारंभकाविति तावेव समवायिकारणं न मृत्तिका । अपि च यैर्मृत्तिका घटादीनां कारणत्वेन स्वीक्रियते तैर्वक्तव्यं निराकारा मृत्तिका कारणमुत साकारा ? निराकारेति चेदव्यवस्था स्यात् । न हि तदानीं नियतं कारणं नियतस्य कार्यस्येति वक्तुं शक्यं । साकारेति चेत् किमयमाकार एव कारणमुत तद्विशिष्टा मृत्तिका ? नाद्यः । आकारस्य नाशेन तस्य कारणत्वासंभवात् । तद्विशिष्टा मृत्तिकेति चेत् किमिदमाकारवैशिष्ट्यं मृत्तिकायां पदार्थान्तरं वा मृत्तिकैव । नान्त्यः । अनुभवविरोधात् । आद्य एवास्माकमारंभवादः । तत्राकारवैशिष्ट्यं भासमानं मृत्तिकायां तत्त्वान्तरमेव घटस्य कारणं कपालपदेन व्यवह्रियत इति बोध्यं । अयं विशेषः— कपालादिषु कारणेषु भासमानमपि मृत्तिकात्वसामान्यं न कारणकुक्षौ प्रविशति । अतिप्रसक्तेः । यच्च नातिप्रसज्यते तदेव कपालत्वरूपं कारणतावच्छेदकपदेन व्यवह्रियमाणं कारणत्वकुक्षावन्तर्भवति इति । ननु तन्तुभिः पटः पृथक् आरभ्यते । जातस्य पटस्य तन्तवः समवा-

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


यिकारणं । तयोश्च परस्परं समवायः संबंध इति प्रक्रियाऽनुभवविरुद्धा । तथाहि । तण्डुलानां राशिरितिवत् तन्तुसमुदायस्यैव पटरूपत्वात् पटाख्यद्रव्यान्तरस्यारंभकल्पना मिथ्या । न चाव्यवस्थितस्तन्तुसमूहोऽपि पटपदवाच्यः स्यादिति वाच्यं । यथा मालायास्तथा तण्डुलराशेश्च वृक्षसमुदायरूपस्य वनस्य च द्रव्यान्तरत्वमनंगीकुर्वतां नैय्यायिकानां नयेऽव्यवस्थितपुष्पादिसमुदायस्य मालात्वादिकं न तथा ममाऽपि व्यवस्थिततन्तुसमुदायस्यैव पटत्वं कुतो न स्यात् । न च सर्वकार्यजातकारणीभूतानां परमाणूनां समूह एव त्वया कार्यपदेन वक्तव्यः । तथा च परमाणूनामप्रत्यक्षत्वात्तत्समूहस्य सुतरामप्रत्यक्षत्वप्रसंगः । न ह्यन्धानां समूहश्चक्षुष्मान् भवति इति वाच्यं । कारणानां सूक्ष्माणां प्रत्येकमप्रत्यक्षत्वेऽपि तत्समूहस्य प्रत्यक्षत्वं नासंभवि । न हि मद्यबिन्दोर्मदाजनकत्वेऽपि तत्समूहरूपस्य चषकमद्यस्य मदजनकत्वं न दृष्टं । तस्मात् प्रत्येकं परमाणोरप्रत्यक्षत्वेऽपि तत्समूहस्य कार्यभूतस्य न प्रत्यक्षत्वासंभव इति चेन्न सर्वं हि कार्यं कारणसमवधानेन संभवति नान्यथा । न हि निंबस्य कटुत्वं गुडस्य च माधुर्यं स्वभावतः किंतु तादृशकार्योत्पादकसामग्रीसमवधानेन । तथा च परमाणूनामप्रत्यक्षत्वं कारणसामग्रीसमवधानाभावमूलकमिति वक्तव्यं । तत्र यदि परमाणव एव समुदायत्वेन गृह्यमाणा घट इत्युच्यते तदा घटे प्रत्यक्षसामग्रीसमवधानं न परमाणुषु एतत् दुरुक्तं स्यात् । न हि घटो नाम परमाणुभ्यः कार्यान्तरं । यत्र सा सामग्रीसमवहिता स्यात् । मालाख्यपुष्पसमुदाये तु पुष्पादिप्रत्यक्षसामग्री समवहितैव । ननु का सा प्रत्यक्षकारणसामग्री ? उच्यते । तत्तद्विषयप्रत्यक्षाणां भेदेन सामग्र्या अपि भेदः स्वीक्रियते । तथापि बहिरिन्द्रियजन्यप्रत्यक्षे तु रूपमालोको महत्त्वं च सामग्रीत्वेनापेक्ष्यते । वायोः प्रत्यक्षत्वस्वीकारे तु आद्यं द्वयं विहाय महत्त्वमेकमेव कारणं वक्तव्यं । तच्च परमाणुषु नास्तीति न तेषां प्रत्यक्षं । यदि तु कृत्स्नं कार्यं तत्समुदायरूपं

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



तदनतिरिक्तं मन्यते तदा तत्रापि महत्त्वाभावात् प्रत्यक्षत्वानुपपपत्तिर्युक्तैव। यदि तु घटरूपः परमाणुसमुदायो भिन्न एवोच्यते तदा नाममात्रे विवादः। सिद्धं तु आरंभवादेन। आरंभवादस्यायमेवार्थः—यत्—कारणैरारब्धं कार्यं तेभ्यो विभिन्नधर्मशालि भवति। यथा परमाणुषु अणुत्वमप्रत्यक्षत्वं नित्यत्वं च। तत्कार्यभूतस्य द्व्यणुकस्य वा त्र्यणुकस्य वाऽणुतरत्वं महत्त्वं प्रत्यक्षत्वमनित्यत्वं च। तच्चेदं सर्वमपि समुदायेंऽगीक्रियते तदा समुदाय एव कार्यं। तस्मात् कार्यं कारणेषु वर्तमानमपि न तद्रूपं किंतु तदतिरिक्तमेवेति ज्ञेयं। ननु स समुदायः कारणेभ्यो भिन्नोऽपि अभिन्नोऽपि। तथाहि। यद्येकान्तेन भेदस्तयोः परमाणुतत्समुदाययोस्तदा यथा घटं विहाय पटस्तिष्ठति तथा परमाणून् विहाय तत्समुदायरूपो घटस्तिष्ठेत्। न चैवं दृश्यते। यदि अभिन्न एव तदा तत्प्रत्यक्षं न स्यात्। अतो भेदाभेदावेव स्वीकरणीयौ। ततश्च न काप्यनुपपत्तिरिति चेदत्रोच्यते। भेदाभेदयोः परस्परविरुद्धरूपतया न तयोरेकत्र संभवः। तथाहि। यो हि घटः पटाद्भिन्नः स कदापि कथमपि घटेनाभिन्नो भवितुमर्हति। भेदो नामाभावः। अभेदो नाम वस्तुनो रूपं। यथा घटो घटेनाभिन्न इति वस्तुनो घटस्यैव स्वरूपं। नैवं भेदः। पटप्रातियोगिको योऽयं घटनिष्ठः पटभेदः सोऽभाव एव घटाद्भिन्न एव। न पुनर्घटस्य स्वरूपं। द्विविधं वस्तु नाम पदार्थः। सत् असदिति। न तु पुनरेकमेव वस्तु सच्चासच्च। तत्र यत् सदितिप्रतीतिविषयं तद्भावपदेन कथ्यते। यच्चासदितिप्रतीतिविषयं तदसदभावपदेन कथ्यते। तत्र यथा भावः स्वतंत्रः पदार्थ एवमभावोऽपि। तत्र न कस्याप्येकस्य पदार्थस्य परस्परविरुद्धस्वभावत्वामिति नैकत्र भेदाभेदयोः संभवः। ननु घटो घटत्वेन वर्तते न पटत्वेनेति सर्वेषामनुभवबलेन भावाभावयोरेकस्यैव घटस्य विषयत्वस्वीकारेणोपपत्तौ पृथगभावपदार्थस्वीकारः किमर्थं इति चेदुच्यते। पटत्वेन घटो नास्तीत्यस्य घटे पटत्वं नास्तीत्ययमे-

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


वार्थः। पटत्वेन घटस्य कुत्राप्यनवस्थानात्तदवच्छिन्नाभावोऽप्रसिद्ध एव। न च घटे वर्तमानो घटभेदाभावो घटरूप एवेति वाच्यं। तस्यातिरिक्तस्य स्वीकारात्। तस्माद्भेदाभेदावेकत्र न संभवतः। एतेन स्याद्वादो निरस्तः। यथा च जगत उत्पत्तिः कारणविशेषाधीनैवमेवैतस्य नाशोऽपि कारण-विशेषाधीन एव। तौ च कारणविशेषौ प्राणिनां भोगादृष्टविशेषावेव। यदा च प्राणिनां सृष्टिभोगादृष्टमुदयोन्मुखं तदा सृष्टिर्जायते यदा तु प्रलयभोगादृष्टमुदयोन्मुखं तदा प्रलयो भवति। प्रलयो नाम कार्यविशेष एव सृष्टिवदिति बोध्यं। नन्वीश्वरेच्छावशात् परमाणुषु क्रियेति पूर्वं निरूपितं तन्नसम्यक्। ईश्वरासिद्धेः। ईश्वरो यदि जगतः कर्ता स्यात्तदा शरीरी स्यात्। तथा च धर्माधर्ममूलकत्वात् शरीरप्राप्तेस्तयोश्चाज्ञानमूलकत्वादीश्वरेऽज्ञानं स्वीकर्तव्यं भवेत्। तथा चास्मदाद्यविशेषेण तस्य सिद्धिरेव न स्यात्। न चेश्वरासत्त्वे परमाणूनामेव स्वातंत्र्येण कर्तृत्वे सदैव सृष्ट्यापत्तिरिति वाच्यं। ईश्वरस्य स्वीकारेऽपि तस्य नित्यत्वेनैषापत्तिर्दुर्वारेत्यदृष्टमेव तस्या निवारकमिति तेनैव सिद्धे किमीश्वरस्वीकारेण। किं च-अयमीश्वरो नित्यः। तस्येच्छाऽपि नित्यैव। तथा च नित्यस्य पदार्थस्यैकस्वभावता निसर्गसिद्धा। ततः सेश्वरेच्छा सर्गविषयिणी भवेच्चेत् प्रलयविषयिणी न स्यात्। विरुद्धत्वात् सर्गप्रलययोः। अतोऽपि नेश्वरस्य कर्तृत्वं। अपि च-यः कर्ता जगति कुंभकारादिर्दृश्यते स सापेक्ष एव दृश्यते। तथा च कयाचि-दपेक्षया जगदीश्वरः सृजेत् तदा तत् प्रयोजनमासिद्धं तमीश्वरमनाप्तकामं सूचयति। ईश्वरश्चाप्तकामः सर्वत्र गीयते। अस्तु वा कथंचित्। परन्तु तत् प्रयोजनं भक्तानुग्रहो वाऽन्यदेव किमपि। नाद्यः। संसारं विधाय तत्र जीवान् विविधदुःखभोगेन दुःखयित्वा पुनस्तदुद्धारे प्रवर्त-मानस्य कीदृशमीश्वरत्वमिति न वयं जानीमहे। यदि तु कर्मवैचित्र्यमेव दुःखस्य कारणं, कर्मवैचित्र्यं तु वासनावैचित्र्यमूलकं, वासनावैचित्र्यं तु अनाद्यज्ञाननिदानमित्युच्यते तदा नास्तीश्वरस्यावश्यकता। ज्ञानेनाज्ञाने

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


नाशिते दुःखानि नक्ष्यन्त्येवेति । उच्यते । जगति अचेतनं हि चेतनाधिष्ठितं कार्यं करोतीति दर्शनादचेतनानां परमाणूनां संयोजने चेतनशक्तिरपेक्ष्यत एव । सा चास्मदादीनां न संभवतीति कश्चन नित्यशुद्धबुद्ध ईश्वरः कल्प्यते । तत्र वैषम्यनैर्घृण्यपरिहारार्थं जीवादृष्टसाचिव्यमपि तस्य कल्प्यते । यथा हि मृत्तिकासहायो दण्डसाधनः कुंभकारः कुंभं निर्माति एवमेव जीवादृष्टं वीक्ष्य परमाणुसहाय ईश्वरो जगन्निर्मातीति ज्ञेयं । न चैतावता तस्यासामर्थ्यं । सर्वाणि च कारणानि परस्परसाहाय्यं लब्ध्वैव कार्याणि कुर्वन्ति नैकाकीनि । तावता नैकस्यापि असामर्थ्यं । ये तु जीवमेव नष्टावरणमीश्वरं मन्यन्ते तैः कथं स नष्टावरणो ज्ञात इति वक्तव्यं । ननु सर्वज्ञत्वेन तत् ज्ञायते । तच्च सर्वज्ञत्वं यथार्थवादित्वेनेति चेन्न यथार्थवादित्वं हि सर्वत्र सर्वपदार्थप्रत्यक्षीकरणं विना न ज्ञातुं शक्यं । कतिपयपदार्थेषु यथार्थवादित्वस्यास्मदादिष्वपि संभवाद्व्यभिचारित्वं । तथा च कतिपयपदार्थेषु यथार्थवादित्वं प्रत्यक्षीकृत्य तस्य सर्वज्ञत्वं त्वयाऽनुमेयं । तच्च व्यभिचारीति न जीवस्य सर्वज्ञत्वे प्रमाणं । तथा च यः सर्वज्ञं स्वीकरोति तेन सोऽनादिमुक्त एव स्वीकरणीयो न पुनरसर्वज्ञः सन् सर्वज्ञः संवृत्त इति । ये तु ज्ञानस्वरूपमेव सर्वज्ञपदवाच्यमीश्वरं स्वीकुर्वन्ति तैः कर्तृत्वं कस्येति वक्तव्यं । तच्च यदि जडस्य तदाऽनुभवविरोधः । न हि वृषभाभ्यामनाकृष्टं शकटं स्वत एव गच्छतीति दृष्टचरं । न हि स्वयमेव दण्डादीनि घटकारणानि व्याप्रियमाणानि घटं जनयन्तीति समनुभूतं । तस्मात् कर्तृत्वं विहाय केवलं ज्ञातृत्वं जीवस्य वेशस्य वा न कल्पयितुं शक्यं । असंभवाच्च । अतस्तत्तत्प्राण्यदृष्टानां साहाय्येनेश्वर एव जगन्निर्मातीति निर्दुष्टः सिद्धान्तः । ननु किमर्थमयं जगत् सृजतीति प्रश्नोऽवशिष्ट एव । सत्यं । स हि सततं जगत् सृजत्येव । तत्र न किमपि प्रयोजनं । यथा पर्जन्यः प्रयोजनमनपेक्षमाणो वर्षति यथा वा सज्जनो विशेषमविशेषं वाऽपश्यन् सर्वानेवोपदिशति, तथैव परमेश्वरोऽपि भुवनं निर्माति । तत्रा-

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

ज्ञानेनासक्तो जीवो दुःखं भावयति । तस्यास्य दुःखं दूरीकर्तुं जगदीश्वर उपास्यमान आत्मानं निर्दुःखं प्रदर्श्य दुःखं सर्वथा नाशयतीति शास्त्रसिद्धान्तः । न चैवंविधा जीवे मुक्ते वा संभवतीति नित्यमुक्तोऽनादिरीश्वरः स्वीकरणीय इति भावः। एवंरीत्या संक्षेपेण पंचभूतानीन्द्रियार्थपदेन सूत्रे समुल्लिखितानि निरूपितानि । अवशिष्टानां बुद्धिमनःप्रभृतीनां ज्ञातृसंबंधित्वात् ज्ञातृस्वरूपनिरूपणे तेषां निरूपणं करिष्याम इति बोध्यं ।

२

'इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनो लिङ्गमिति '(गौ. सू. १-१०)

तत्र यः खलु कदलीफलभक्षणेन सुखमुपलेभे स एव नूतनं पक्वं कदलीफलमापणे समुपलभ्य तत्संपादनाय प्रयतते नान्यः । न हि अज्ञातकदलीफलस्वादः कोऽपि तादृशफलसंपादने प्रयतमानो दृष्टः। स च पूर्वं कदलीफलभक्षणजन्यं सुखं स्मरन् नूतनस्य तादृशफलभक्षणजन्यस्य सुखस्य संपादने संजातेच्छस्तत्फलं लब्धुं प्रयतत इति वक्तव्यं। तथा च यः खलु अतीतकदलीफलभक्षणजन्यसुखस्य स्वामी स एव भाविनः सुखस्येति तस्य भोक्तुरेकत्वं सिध्यति । इदमुक्तं भवति— अतीतस्य सुखस्यानुसंधाता तथा वर्तमानप्रयत्नस्य च कर्ताऽभिन्नोऽपेक्षत इति । यदि तु तयोर्भेदस्तदा नूतनप्रयत्नं प्रति अतीतसुखानुसंधानस्य कारणत्वमेव न स्यात् । अन्यदृष्टं नान्यः स्मरतीति प्रत्यक्षाविरोधात् । एवंरीत्या ज्ञातुरुभयज्ञानसंधातृत्वेनाभेदे सिद्धे सर्वे नास्तिकवादा निराकृता भवन्ति । द्वेषोऽपि ज्ञातुरभेदे हेतुः । यस्मात् सर्पविशेषदंशात् स कस्याचिद्दुःखप्राप्तिमपश्यत्तादृशं सर्पविशेषं दूरादेव पश्यंस्तं स द्वेष्टि । नूनमस्मादपि तस्येव ममापि दुःखं मा भूदिति । यदि हि तस्य दुःखस्य द्रष्टा तथाऽधुनाऽस्य सर्पस्य द्रष्टा भिन्नः स्यात्तदा कथं खलु अनुसंधानं भवेत् । यज्जातीयं वस्तु लब्ध्वाऽयं सुखमन्वभवत्तज्जातीयं वस्तु पश्यंस्तदादातुं प्रयतते । यदि च प्राक्तनवस्तुजन्यसुखस्यानुभविता भिन्नोऽस्य

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



वस्तुनश्च साक्षात्कर्ता भिन्नस्तदा कथं प्रवृत्तिः । एकविधं सुखमनुभूय पुनस्तादृशस्य सुखस्य लाभाय जीवः प्रवर्तते । प्रवर्तमानो लभते न वा लभत इत्यन्यदेतत्। परन्तु प्रवर्तते तु। तत्र यदि प्राक्तनसुखस्यानुभविता भिन्नो भाविनः सुखस्य वाञ्छकश्च भिन्नस्तदा कथं खलु भाविसुखस्य लाभे तस्य वाञ्छा । एवमेव दुःखमनुभूय व्याकुलस्तादृशस्य दुःखस्य परिहारे प्रवर्तमान आत्मानमखण्डमेव मनुते । सर्वेषामेव पूर्वोक्तानामिच्छादीनां हेतुत्वे प्रबलं साधनं पश्चादुपन्यस्यति ज्ञानमिति । सर्वव्यवहारसाधनीभूतं ज्ञानं । तच्च यदि स्वयं भिन्नं भिन्नाश्रयं च भवेत्तदा सर्वव्यवहारविलोप एव स्यात्। ततः सर्वैरपि इच्छादिभिर्हेतुभिरखण्डात्मा सिध्यति । अत्रेच्छादीनां बहुनां हेतूनामुपन्यासः साभिप्रायः । तथाहि । केचनेच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखादीनि जडस्य गुणान् वदन्ति । ज्ञानं तु आत्मन इति । अन्ये तु सुखदुःखे अपि नान्यानीति वदन्ति । तेषां सर्वेषां निराकरणार्थं सर्वेषामिच्छादीनामात्मलिंगत्वेन सूत्रकृतोपन्यासः कृतः । तत्र ये खलु चार्वाकादयो देहमेवेच्छादीनामाश्रयं वदन्ति तान् प्रति वक्तव्यं । कथं नु खलु प्रतिक्षणं रक्तादीनां धातूनां वृद्धिह्रासयोरनुभूतत्वेन तत्पुंजीभूतस्य वा कार्यीभूतस्य वा शरीरस्य न क्षणिकत्वं । क्षणिकत्वे तु पूर्वोक्तेच्छादीनामनुसंधानपूर्विका प्रवृत्तिर्न स्यात् । न चारंभकरक्तादिधातूनां वृद्धौ ह्रासेऽपि देहस्य कुतः क्षणिकत्वमिति वाच्यं । कारणवृद्धिह्रासनिमित्तकावेव कार्यवृद्धिह्रासावित्यवश्यं स्वीकर्तव्यं। अन्यथा कार्यकारणभाव एव न स्यात् । कार्यवृद्धिह्रासयोश्चाकस्मिकत्वं भवेत् । कार्यवृद्धिह्रासार्थं कारणवृद्धिह्रासयोश्च प्रवृत्तिर्न स्यात् । न हि तदा शरीरे मेदोवृद्धिं निरीक्ष्य तन्निराकरणार्थं शुष्कान्नभोजनं व्यपदिशन् वैद्यो ग्राह्यवाक् भवेत् । तस्मात् कारणवृद्धिह्रासयोः सतोः कार्यवृद्धिह्रासाववश्यमेव स्वीकरणीयौ । गत्यन्तराभावात् । एतेन क्षणिकविज्ञानमिच्छादीनामाश्रय इति वदन्तो बौद्धा अपि परास्ताः । आश्रयस्य क्षणिकत्वे पूर्वोक्तमिच्छादीनामनुसंधानं

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



न स्यात् । न च मृगमदादीनां यथोत्तरोत्तरवस्त्रेषु गंधस्य संक्रान्तिरेवमेव वासनादीनामुत्तरोत्तरविज्ञानेषु संक्रमः कुतो नेति वाच्यं । मृगमदस्य गंधो नोत्तरोत्तरवस्त्रेषु संक्रामति किंतु तदाश्रयीभूतं परमाणुद्रव्यमेव सूक्ष्मतया तत्र प्रविशति । तन्निष्ठं गंधं च घ्राणेन जिघ्रन् घ्राता वसनं सुगंधि मनुते । वस्तुतस्तु इयं भ्रान्तिरेव । न च त्वं तादृशगंधाश्रयपरमाणुवत् किमपि सूक्ष्मं वा स्थूलं वेच्छादीनामाश्रयभूतं नित्यं द्रव्यं स्वीकरोषि येन वासनानां संक्रमो भवेत् । न चेत्थं त्वया प्रतिज्ञासंन्यासभीत्या स्वीकर्तुमपि शक्यं । सर्वं क्षणिकमिति तु प्रतिज्ञा । अस्य दोषस्य परिहारार्थं जैनैः प्रारब्धकर्मणा समारब्धस्य देहस्य तत्कर्मक्षयं विनाऽक्षयित्वं मनसि कृत्वा देहपरिमाणत्वमात्मनः कल्पितं तदपि नूनमाशामोदकायितं । देहस्य वृद्धिह्रासौ प्रतिक्षणमनुभूयेते । अतस्तत्कारणीभूते कर्मणी अपि भिन्ने भिन्ने इति स्वीकर्तव्यमेव । न च यावज्जीवमेकमेव प्रारब्धं कर्मेति साम्प्रतं । कर्मणां चतुःक्षणस्थायित्वस्यानुभविकत्वेन यावज्जीवमेकस्य कर्मणोऽसंभव एव । किं च यावज्जीवमेकस्य जीवस्यासंख्यानि सुखदुःखानि, असंख्याश्च व्याधयोऽगाणिताश्चावस्थाः । एतेषां सर्वेषां कारणीभूतमेकं कर्म कथं स्यात् । कथं च कारणीभूतस्य कर्मण एकत्व एतेषां नानात्वं परस्पर-विरुद्धत्वं च । तस्मादेतेषां कार्याणां भिन्नत्वात् कारणानामपि नानात्व-मनुमेयं । नानात्वे च कर्मणां शरीरनानात्वमपि गले पतितमेव । तथा चात्मनोऽपि प्रतिक्षणं भिन्नत्वे प्राप्ते व्यर्थैव देहातिरिक्तस्याऽपि देहपरिमाणस्यात्मनः कल्पना । तस्मात् पूर्वोक्तहेतुभिः प्रसाधितमात्मनोऽ-खण्डत्वमेव तैः स्वीकृत्य नास्तिकत्वं हेयं । न हि नास्तिकत्वं जातिः किंतु सिद्धान्तविशेषस्वीकारमूलको व्यपदेश इति पूर्वमेवोक्तं । अत्रेदं गूढं हृदयं । इच्छादीनामाश्रयोऽखण्ड एव स्वीकर्तव्यः । अन्यथाऽनुसंधानं न स्यात् । य एव बाल्येऽहं पितरावन्वभवं स एवाहं प्रणप्तॄननुभवामीति निःसंदिग्धोऽनुभवः । न चासति बाधके तस्य सादृश्यालंबनत्वं वक्तुं युक्तं ।

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


तत्र हि सादृश्यालंबनमभिन्नत्वं यत्र सादृश्यानुयोगिप्रतियोगिनोर्निश्चितः प्रमाणान्तरसिद्धो भेदः सिद्धो भवेत् । यथा हि सिंहो नाम पशुविशेषः क्रौर्यादिगुणवान् वने दृष्टः । माणवकोऽपि सजातीयेभ्यो मानवेभ्योऽधिकक्रौर्यशाली दृष्टः । तं च माणवकं क्रूरं बोधयितुकामो मानवः सिंहोऽयं माणवक इति वाक्यं प्रयुंक्ते । तदानीं श्रोता तथा वक्ताऽपि सिंहमाणवकयोर्भेदं जानन् केवलं क्रौर्यादिगुणैरयं सिंहसदृश इति प्रत्येति । न च मनागपि संदेहस्तयोरभेदे । नैवं प्रकृते । यः खलु पूर्वमनुभूतं स्मरति स एव प्रवर्तत इति निश्चितमनुभवः । येनैव द्राक्षा समास्वादिता स एव पुनर्द्राक्षादर्शने तामादातुं प्रवर्तते । नैवं मनागपि मनसि कुरुते येन पूर्वं द्राक्षा समास्वादिता स भिन्नः, अहं तु अधुना द्राक्षां साक्षात्कुर्वाणो भिन्न इति । किं च—सर्वैरपि आत्मनोऽखण्डत्वमनंगीकुर्वद्भिर्नास्तिकैर्वक्तव्यं कं खलु गुणविशेषमवलंब्यैष सादृश्यप्रत्यय उपपादनीयः । यथा खलु सिंहोऽयं माणवक इत्यत्र क्रौर्यादिमत्त्वं तथा प्रकृते किं ? ज्ञानवत्त्वमिच्छावत्त्वं वेति चेन्न तस्याऽपि भिन्नत्वात् । ज्ञानमपि भिन्नमिच्छाऽपि भिन्ना । कथं तयोः स्वतो भिन्नयोराश्रयतोऽपि भिन्नयोरेकत्र सत्त्वं । ननु कथं सिंहोऽयं माणवक इत्यत्र सादृश्यालंबनोऽभेद इति चेत् तुष्यतु दुर्जन इति न्यायेनास्माभिस्तत्राभेदः स्वीकृतः । वस्तुतस्तु कुत्रापि सादृश्यालंबनोऽभेदो भवितुमेव नार्हतीति ज्ञेयं । योऽयं सादृश्यालंबनोऽभेदो भासते स भास एव । भ्रान्तिमूलकत्वात् । अत एव चन्द्रवन्मुखमित्यादिवाक्यानां भ्रान्तत्वं बोध्यं । अतः सर्वैरपि प्रामाणिकैरयमाबालमास्थविरमापांसुलपादमापण्डितमनुभवसिद्धोऽभेदप्रत्ययोऽखण्डनित्यात्मविषयक एव स्वीकर्तव्यः। ननु असति बाधके सादृश्यालंबनोऽभेदः स्वीकर्तुमयोग्य इति त्वदुक्तं सम्यक् । बाधकसत्त्वे तु अगत्या तथा स्वीकर्तव्य इति तु न्याय्यं । विद्यते तु बाधकं । तथाहि । अखण्डस्य नित्यस्य सत्त्वमपि उपपादयितुमशक्यं । दूरे च तस्याश्रयत्वादिकमनुसंधान-

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


विषयत्वादिकं । योऽयं नित्यः पदार्थः स कार्यजनने समर्थोऽसमर्थो वा ? नाद्यः । तथा सति युगपदेव सर्वाणि कार्याणि कुर्यात् । समर्थस्य क्षेपायोगात् । न चैवं दृश्यते । तस्मान्न स समर्थः । अथासमर्थश्चेत् सर्वदैवासमर्थः स्यात् । नित्यस्य स्वभावानपायात् । दृश्यते तु मनआदीनां संयोगे ज्ञानजनन-योग्यताऽऽत्मनि । तस्मान्न कस्याऽपि पदार्थस्याखण्डत्वं नित्यत्वं च । सर्वे हि पदार्थाः स्वेतरकारणसामग्रीसमवधानेन लब्धसामर्थ्याः स्वस्वकार्याणि कुर्वन्तीत्येव मन्तव्यं । ओदनजनकत्वं तण्डुलानामग्न्यादिसाहित्येन दृष्टमिति न किंचिदनुपपन्नं । न चैतन्नित्याखण्डे पदार्थे संभवति । सामग्री तत्र विशेषमाधातुं नैव शक्नोति । नूतनविशेषाधाने तस्य नित्याखण्डत्वभं-गापत्तेः । अत्रोच्यते । नित्यः कार्यजनने समर्थोऽसमर्थो वेति विकल्प एव न संभवति । कार्यस्य जनकानि सर्वाणि कारणानि समर्थान्येव । न हि कस्याऽपि नित्यस्य वाऽनित्यस्य वा पदार्थस्य सामर्थ्यं स्वभावकृतं वयं कल्पयामः किंतु कारणत्वमेव तेषु सर्वेषु समानम् । युगपत्सर्वाणि कार्याणि कुतो न करोतीति शंकायाः समाधानं चेत्थं-इतरकारणसमव-धानाभावात् स कार्याणि न करोति । तत्र यथा दण्डादीनां घटकारण-त्वमेवं तदितरचक्रादीनां समवधानमपि कारणं । न च संहतान्येव कार्यं जनयन्तीत्यनुभवात्संहतिरेव कारणं न प्रत्येकमिति वाच्यं । संहतिः पदार्थ एव नेति पूर्वं खण्डितं । यदि प्रत्येकस्य न कारणत्वं तदा तत्समुदायोऽपि सुतरामकारणं स्यात् । न ह्यन्धानां समुदा-यश्चक्षुष्मान् भवति । तस्मात् प्रत्येकस्य कारणता त्वस्त्येव । तथैवेतरका-रणसमवधानस्याऽपि कारणत्वमस्त्येव । यथाऽऽत्मनस्तथा मनसश्च नित्यत्वेऽपि इन्द्रियसंयोगरूपकारणाभावान्न ज्ञानोत्पत्तिः । इतरकारणा-समवधानेन कार्याभावे नित्यस्य कारणत्वमेव नेति वचनं चौरापराधे संन्यासिनः शूलारोपणमनुकरोति । न हि कार्यानुत्पत्तिर्नित्यस्यापराधः । स तु वराकः सिद्ध एव । कारणान्तराभावान्न कार्योत्पत्तिः । न चेतरका-

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


रणानां समवधानेन नित्ये किंचिदाधीयते न वेति प्रश्नोऽनुत्तरित इति वाच्यं । न किमपि आधीयते । केवलं सर्वेषु कारणेषु मिलितेषु कार्यं जायत इत्येव । न च कारणानां मेलनं पदार्थ इत्युक्तमेव । अत्रेदं बोध्यं । यथा एकस्मिन्नेव पटे चित्रकारस्तैस्तैर्वर्णकैर्विचित्राणि चित्राणि समुत्पादयति । तत्र तेषां तेषां विचित्रवर्णानां चित्राणामधिकरणभूतः पट एव । न च तत्र पटानां नानात्वं । अस्मिन्नेकस्मिन्नेव पटे विचित्राणि चित्राणि सन्तीति प्रतितेरबाधात् । तथैव नित्य आत्मनि तत्तदिन्द्रियसंयोगैर्विविधज्ञानोत्पत्तौ को वा विरोधः । एकस्मिन्नेव पटे यथा बहवो मानवा उपविशन्ति तथैव प्रकृतेऽपि । वस्तुतस्तु युगपत् ज्ञानानि नोत्पद्यन्ते किन्तु क्रमेणेति वयमग्रे निरूपयिष्यामः । न च नित्येषु पदार्थेषु अनित्या धर्माः कथं तिष्ठेयुरिति वाच्यं । न ह्यस्माकं मते नित्यत्वं वाऽनित्यत्वं वा स्वभावात् किंतु यत्र यादृशसामग्रीसमवधानं तत्र तादृशकार्यस्य संभव इत्येव स्वीकारात् । पृथिवीपरमाणुषु रूपादिचतुष्टयमनित्यं । तत्र पाकस्य संभवात् । जलादिपरमाणुषु तत् नित्यं पाकस्यासंभवात् । तथैव आत्मनो नित्यत्वं कृतनाशाकृताभ्यागमदोषपरिहाराय । ज्ञानादीनामनित्यत्वं जन्यत्वेनानुभवेन च । तथैवाकाशस्य नित्यत्वं कारणाभावतः । शब्दस्य चानित्यत्वं जनकसामग्रीसत्त्वात् । स्वरूपदर्शनामिदं । वस्तुतस्तु कुत्रापि कस्याऽपि धर्मस्य वा धर्मिणो वा किमपि स्वभावनिबंधनं न किंतु कारणसत्त्वासत्त्वनिबंधनं सर्वमिति ज्ञेयं । ननु नैतानि सर्वाणि आत्मनो लिंगानि किंतु ज्ञानमेकमेव । तथाहि । इच्छादयो हि अन्तःकरणधर्मा उत्पादविनाशशालित्वात् । यत् खलु कार्यमुत्पादविनाशशालि भवति तदुपादानमपि तादृगेव भवितुमर्हति । न हि संभवति मृत्तिकायाः सकाशाज्जयमानो घटोऽत्यन्तं मृत्तिकावैधर्म्यशाली । अखण्डत्वमनित्यत्वं चात्यन्तं परस्परविरुद्धौ धर्मौ । तच्छालिनोः कथमपि न कार्यकारणभावः । न च ज्ञानस्याऽपि उत्पादविनाशशालित्वेन तदपि आत्मनि लिंगं न स्यादिति वाच्यं ।

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

ज्ञानस्य नित्यत्वं स्वीकृत्य ज्ञानस्वरूप एवात्मेति सिद्धान्तादिति चेत्। अत्रोच्यते। कार्यकारणयोर्यौ कार्यत्वकारणत्वरूपौ धर्मौ तावत्यन्तं विरुद्धौ न वा? विरुद्धाविति चेत् कथं तयोर्मृत्तिकायां त्वन्मतेन सत्त्वं? अथाविरुद्धौ तदा कथं परमाणोः कारणत्वमेव न कार्यत्वं? घटस्य च कार्यत्वमेव न कारणत्वं? मन्मते च दोषापादानं निरर्थकं। न चान्यनिरूपितं मृत्तिकायां कारणत्वमन्यनिरूपितं च कार्यत्वमिति वाच्यं। मन्मतेऽपि ज्ञानस्यानित्यत्वमन्यनिरूपितं नित्यत्वं चात्मनोऽन्यनिरूपितं। अत्यन्तवैधर्म्यशालिनोर्न धर्मधर्मिभाव इति आग्रहश्चेत् कार्यकारणयोः कथं खलु धर्मधर्मिभाव इति वक्तव्यं। कार्यं हि धर्मः कारणं तु धर्मीति सुप्रसिद्धं लोके। यथा कार्यत्वं हि न कारणवृत्ति तथा कारणत्वं च न कार्यवृत्तीत्यपि। तस्मान्नायं नियमः। घटत्वं धर्मो नित्योऽनित्यश्च तदाश्रयो घटः। क्वचित् परमाणुः कारणं नित्यं तद्धर्मश्च द्व्यणुकं सुतरामनित्यं। अतो नित्यानित्यविषयेऽस्मत्सिद्धान्तांगीकार एव श्रेयान्। यत्तु ज्ञानस्य नित्यत्वं स्वीकृत्य तदभिन्नत्वस्वीकार आत्मनस्तन्नोपपत्तिसहं। तथाहि। ज्ञानस्यानित्यत्वं तु विस्मृत्यनुरोधादवश्यं कल्पनीयं। अन्यथा विस्मृतिरेव न स्यात्। तथा च तदभेदो नित्य आत्मनि बाधित एव। न च वृत्तिज्ञानं जन्यं स्वरूपज्ञानं तु नित्यमेवेति वाच्यं। ज्ञानस्य द्वैविध्ये प्रमाणाभावः। न हि एक एव पदार्थो नित्योऽनित्यश्च दृष्टः। न हि घटो नित्योऽनित्योऽपीति वक्तुं शक्यं। न चेमौ भिन्नौ पदार्थाविति वाच्यं। ज्ञानत्वजातेः समानत्वात्। किं च किमिदं वृत्तिज्ञानं किमिदं स्वरूपज्ञानमिति विवेचनीयं। तत्र यद्याद्यं संनिकर्षजन्यं ज्ञानं तदाऽस्मन्मतादविशेषः। यदि चान्तःकरणस्य जन्यो धर्मविशेषस्तदाऽसंभवः। न हि जडस्य धर्मो ज्ञानं। न हि यथा सचेतनो मानवादिरहं जानामीति वदति तथा पाषाणप्रभृतिर्जडवर्गो जानामीति प्रत्येति। तस्मात् ज्ञानस्य जडधर्मत्वस्वीकारोऽपसिद्धान्तः। न च स्वरूपज्ञानं तदिति वाच्यं। ज्ञानस्य स्वरूपत्वे नित्यत्वं गले पतितमेव।

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



तथा च पूर्वोक्तदूषणानिस्तारः। किं च यदि स्वरूपनित्यज्ञानात्मकत्वमात्मनस्तदा सुषुप्त्यभावप्रसंगः। ज्ञानशून्यता हि आत्मनोऽवस्था सुषुप्तिपदेन व्यपदिश्यते। तस्मात् ज्ञाननित्यत्वस्वीकरणमविचारितरमणीयं बोध्यं। अतः सिद्धमेतानीच्छादीनि सर्वाण्यपि आत्मनो लिंगानीति। ननु अखण्डो नित्य आत्मा स्वीकर्तुमशक्यः। तथाहि। स हि ज्ञानाद्याश्रयत्वेन त्वया स्वीकार्यः। तस्य हि गुणवत्त्वात् द्रव्यत्वं। द्रव्यं हि परिमाणशालि। तानि परिमाणानि त्रिधा— अणु महत् परममहच्च। तत्रात्मनोऽणुत्वे तत्समवेतानां सुखादीनां प्रत्यक्षं न स्यात् यानि च त्वया लिंगत्वेनोपन्यस्तानि। महत्त्वाश्रयत्वे तु सुतरामनित्यत्वं। यद्यन्मध्यममहत्परिमाणशालि द्रव्यं तदनित्यमिति व्याप्तेर्निर्दुष्टत्वात्। अवशिष्टं परममहत्त्वं तस्य परिमाणं वक्तव्यं। तदेव विभुत्वस्य प्रयोजकं वक्तव्यं। विभुत्वं च सर्वमूर्तद्रव्यसंयोगित्वं। तथा च व्यापकानामात्मनां सर्वैर्मनोभिस्तथा शरीरैश्च साकं समाने संयोगे कस्येदं ज्ञानं कस्येदं कर्मेति व्यवस्थाज्ञानमेव न स्यात्। दूरे च तत्तत्कर्मानुरोधेन तस्य तस्यात्मनो भोगः। मैवं। विभुत्वेऽपि व्यवस्थाया उपपादयितुं शक्यत्वात्। प्रत्यात्ममज्ञानस्य भिन्नत्वेन तत्तदात्मभोगकारणानामदृष्टापरपर्यायाणां धर्माधर्माणां भेदः। तद्भेदात् शरीराणां भेदः। शरीरभेदाच्च भोगव्यवस्था। न चाज्ञानस्य भेदे किं प्रमाणमिति वाच्यं। एकमुक्तौ सर्वमुक्तिप्रसंगवारणाय तत्तदात्मभेदेनाज्ञानभेदस्यावश्यं स्वीकर्तव्यत्वात्। ननु अज्ञानं भावपदार्थोऽभावपदार्थो वा ? यदि भावस्तदाऽनादिभावस्य नाशासंभवान्नित्यत्वं स्यात्। नित्यत्वेऽनिर्मोक्षापत्तिर्वज्रलेपायते। अथाभावस्तदा ततो धर्माधर्माणां संभवः कुतः ? न ह्यभावाद्भावोत्पत्तिं नैय्यायिका मन्यन्ते। किं च—देहादौ योऽयमात्माभिमानः स भाव एव। अप्रमात्वात्। न ह्यप्रमा नाम ज्ञानाभावः। तदभाववति तत्प्रकारकज्ञानस्याप्रमात्वात्। एवं च ज्ञानत्वव्याप्याविमौ प्रमात्वाप्रमात्वधर्मौ। तथा च कथमप्रमाऽभावः स्यात्।

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



उच्यते। अज्ञानं भाव एव पदार्थः। तथापि तस्य न नित्यत्वं। न केवलमनादिभावस्य नित्यत्वं किंतु अनाद्यनन्तस्य। अज्ञानस्य सान्तत्वान्न दोषः। न च तदेव कुत इति वाच्यं। तस्य सर्वानुभवसिद्धत्वात्। मोक्षवादिशास्त्रवैय्यर्थ्यापत्तेश्च। किं चाज्ञानस्य नित्यत्वे ज्ञानोदय एव न स्यात्। न हि शुक्ताविदं रजतमिति भ्रान्तिज्ञाने जाते शुक्तिसाक्षात्कारेण तदज्ञानं न निवर्तते? यदि न निवर्तेत तदा विशेषदर्शनार्थं न कोऽपि प्रयतेत। प्रयतते तु। तस्मादपि अज्ञानं न नित्यं। एतेन ज्ञाननित्यत्ववादोऽपि परास्तः। ज्ञानस्य नित्यत्वेऽज्ञानस्य विस्मृतेः संशयस्य चानुत्पादप्रसंगात्। तस्मात्तत्तत्कारणसामग्रीसमवधानजन्याविमौ ज्ञानाज्ञानपदार्थौ भिन्नौ भावरूपाविति स्वीकरणीयमेव। ननु न्यायनये आत्मनां विभुत्वान्नानात्वाच्च कथं जन्मनः संभवः? न हि आत्मनि क्रिया। येन स इदं शरीरं विहाय शरीरान्तरं गच्छेत्। नापि माविशरीरमत्रागच्छेत्। शरीरलाभ एव जन्मपदेनोच्यते। उच्यते। शरीरलाभ एव जन्मपदेन कथ्यत इति सत्यं। स एव कथं भवतीति वयं पश्यामः। एतदेव भगवताऽक्षपादेन सूत्रे लिखितं—

दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये
तदनन्तरापायादपवर्गः (गौ. सू. १–१–२)।

मिथ्याज्ञानमतस्मिंस्तदिति ज्ञानरूपमनादीति सर्वतंत्रसिद्धान्तः। तच्चानेकविधं। यथाऽनित्ये देहे नित्यत्वमतिः, सांसारिके दुःखे सुखमतिः, अत्राणे त्राणमतिः, इत्यादि। तदेतदज्ञानशालिनो जीवस्य दोषाः 'रागद्वेषादयः' संजायन्ते। यथाऽनित्यं देहं नित्यं मत्वा तत्सुखमेवात्मसुखं मन्वानो धनस्य संपादनार्थं दायादैः कलहायते। तेऽपि तथैवाज्ञानिनः कलहायमानाः सततं दुःखभाजो भवन्ति तथाऽयमपि भवति। सोऽयं दायादैः कलहः प्रवृत्तिपदेन सूत्रे निर्दिष्टः। एवं कलहायमानो यदा शरीरारंभकस्य कर्मणोऽन्तं गच्छति तदा तच्छरीरं जहाति नूतनमुपादत्ते।

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



तदेव तस्य जन्मेति लोके कथ्यते । ततोऽनिशं दुःखमिति सततमेतत् संसारचक्रं भ्रमति । तत्र म्रियमाणस्य जीवस्यादृष्टेन यच्छरीरं समारब्धं तत्राऽस्य मन एव गच्छति । इन्द्रियाणि तु तत्रैव जायन्ते । मनसि गते इन्द्रियैः समं तस्य संयोगे विषयैः साकमिन्द्रियाणां संयोगे ज्ञानं समुत्पद्यते । ज्ञाने संजाते भोग आत्मनः संभवत्येव । भोगो नाम सुखदुःखान्यतरसाक्षात्कारः । तदेवात्मनो जन्म । इदमत्राकूतं । भोगनिमित्तोऽयं जन्मव्यपदेशो न तु तत्र शरीरे वृत्तित्वनिमित्तको नापि पूर्वशरीरं विहायोत्तरशरीरगमनमूलको नापि क्रियाकारणक इति ज्ञेयं । यथा लोकेऽपि तक्षादयो गृहं निर्मान्ति तथाऽपि तद्गृहं न तक्षादीनामित्युच्यते किंतु यो हि तस्य भोक्ता तस्यैव तत् । तथा मनआदिभिरिन्द्रियैरदृष्टसहायैः समारब्धमपि तज्जन्मात्मन एवेति व्यपदिश्यते । तत्र ज्ञाने मनसः प्राधान्येन तस्मिन्नेव गते ज्ञानोत्पत्तेर्दर्शनात्तदेव तत्र गच्छति नात्मेति बोध्यं । ननु इच्छादीनामात्मलिंगत्वे तदभावे आत्मनो ज्ञानं न स्यात् । न हि सुषुप्तावहं नास्मीति कश्चित् प्रतिपद्यते । उच्यते । यथा ज्ञानस्य प्रत्यक्षत्वे सामग्री कारणमेवमेव ज्ञानाभावस्य प्रत्यक्षत्वेऽपि । यथा घटप्रत्यक्षे चक्षुःसंयोगादिकं सामग्रीत्वेनापेक्ष्यते, तथैव घटाभावप्रत्यक्षे संयुक्तविशेषणत्वादिकमपेक्षणीयमेव । सुषुप्तौ तु चर्ममनःसंयोगरूपज्ञानसामग्र्या असत्त्वाद्यथा ज्ञानं न तथैवाभावस्यापि प्रत्यक्षं न । तेनात्मनोऽस्तित्वप्रकारकं वा नास्तित्वप्रकारकं वा ज्ञानमेव न संभवति । न चात्मनोऽसत्त्वं वा सत्त्वं वा यदि सुषुप्तौ न ज्ञायते तदाऽहमस्मि न वेति संशयः स्यादिति वाच्यं । तदानीमात्मनि साधारणधर्मज्ञानरूपसंशयसामग्र्या अपि असत्त्वान्न संशयस्याऽपि संभवः । तस्मान्न सुषुप्तौ किमपि ज्ञानं । अत इच्छादीनामात्मलिंगत्वं निर्दुष्टमिति बोध्यं ।

३

निरूपितानि संक्षेपेण प्रमेयाणि तथा प्रमाताऽपि । अधुनाऽज्ञानं

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


सर्वस्यास्यानर्थस्य कारणं वक्तव्यं। तत्र शोकसाधनमज्ञानमस्तीति सर्वेषां दर्शनानां सिद्धान्तः। भेदस्तु विशेषस्वरूपे। तत्राज्ञानस्य सामान्यं लक्षणं 'अतस्मिंस्तद्बुद्धिः' इत्येव नैय्यायिकानामपि संमतं। तदिदमज्ञानमनादिभावरूपं। तच्च केवलं तत्त्वज्ञानेनैव नाश्यते नान्येन केनाप्युपायेन। तदिदमज्ञानं प्रतिजीवाश्रितं। तेन दोषाणां रागद्वेषापरपर्यायाणामुत्पत्तिः। ततः प्रवृत्तिरदृष्टादिजनिका। ततो जन्म ततो दुःखमिति खलु मूलभूतस्याज्ञानस्य कार्यपरंपरा। तदिदं भगवता वात्स्यायनमुनिना भाष्य एवोक्तं। तत्रात्माद्यपवर्गपर्यन्ते प्रमेये मिथ्याज्ञानमनेकप्रकारकं वर्तते। आत्मनि तावन्नास्ति इति, अनात्मनि आत्मेति, दुःखे सुखमिति, अनित्ये नित्यमिति, अत्राणे त्राणमिति, सभये निर्भयमिति, जुगुप्सितेऽभिमतमिति, हातव्येऽप्रतिहातव्यमिति, प्रवृत्तौ नास्ति कर्म, नास्ति कर्मफलमिति, दोषेषु नायं दोषनिमित्तः संसार इति, प्रेत्यभावे नास्ति जन्तुर्जीवो वा सत्त्वो वा आत्मा वा यः प्रेयात् प्रेत्य च भवेदिति, देहेन्द्रियबुद्धिवेदनासंतानोच्छेदप्रतिसंधानाभ्यां निरात्मकः प्रेत्यभाव इति। अपवर्गो भीष्मः। स खलु अयं सर्वकार्योपरमः सर्वविप्रयोगेऽपवर्गे बहु च भद्रकं लुप्यत इति कथं बुद्धिमान् सर्वसुखोच्छेदमचैतन्यममुमपवर्गं रोचयेदिति। एतस्मान्मिथ्याज्ञानादनुकूलेषु रागः प्रतिकूलेषु द्वेषः। रागद्वेषाधिकाराच्चासूयेर्ष्यामायालोभादयो दोषा भवन्ति। दोषैः प्रयुक्तः शरीरेण प्रवर्तमानो हिंसास्तेयप्रतिषिद्धमैथुनान्याचरति। वाचाऽनृतपरुषसूचनासंबद्धानि, मनसा परद्रोहं परद्रव्याभीप्सां नास्तिक्यं चेति। सेयं पापात्मिका प्रवृत्तिरधर्माय। अथ शुभा—शरीरेण-दानं परित्राणं परिचरणं च, वाचा—सत्यं हितं प्रियं स्वाध्यायं च, मनसा—दयामस्पृहां श्रद्धां चेति। सेयं धर्माय। सेयं कुत्सितस्याभिपूजितस्य वा जन्मनः कारणं। जन्म पुनः शरीरेन्द्रियबुद्धीनां निकायविशिष्टः प्रादुर्भावः। तस्मिन् सति दुःखं। त इमे मिथ्याज्ञानादयो दुःखान्ता धर्मा अविच्छेदेनैव प्रवर्तमानाः संसार

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


इति। ननु अज्ञानं यद्यनादिभावपदार्थस्तदा तस्य नाशः कथं? अनादिभावस्य नित्यत्वं निर्दुष्टमिति चेन्न—अनादेरनन्तस्य च भावस्य नित्यत्वमिति वक्तव्यं। अन्यथा मोक्षोपदेशकशास्त्रस्य वैय्यर्थ्यप्रसंगो भवेत्। तस्मादज्ञानं न नित्यं। केचित्तु अज्ञानं द्रव्यरूपं स्वीकुर्वन्ति। अपरे तु ज्ञानाभावरूपं। तदुभयमप्यसाधु। यथा हि ज्ञानमात्मनो गुणविशेषः, एवं तत्प्रतिस्पर्धीभूतमज्ञानमपि गुण एव। तच्च नियमेनात्मसमवायि। न तु विषयेषु वर्तते। नाप्येकं सर्वेषु आत्मसु। एकमुक्तौ सर्वमुक्तिप्रसंगात्। अतस्तदज्ञानमपि ज्ञानमिवात्मनो विशेषगुण एवेति बोध्यं।

४

निरूपितमज्ञानं। तत्फलं दुःखमधुना निरूपणीयं। तत्र दुःखं नाम मानसी वृत्तिरिति बौद्धाः। परिणामिन आत्मनो जीवस्य धर्म इति जैनाः। सुखवत् दुःखमपि जीवात्मन एव विशेषगुण इति नैय्यायिकाः। तत्र दुःखस्य प्रतिकूलवेदनीयत्वं लक्षणं तथा बाधनापीडातापइत्यादयः पर्यायवाचकाः शब्दा इति सर्वसंमतं तथाप्युपरिदर्शितरीत्याऽस्ति भेद इति संक्षेपेण निरूप्यते। तत्र ये मानसीं वृत्तिं दुःखं वदन्ति तैः प्रथमत इदं वक्तव्यं—मनसो वृत्तिर्नाम किं? यदि कार्यं तदाऽऽत्ममनः-संयोगजन्यस्य दुःखस्य सत्त्वान्न कापि क्षतिः। यदि तु मनसो विकारस्त-दाऽणुरूपस्य नित्यस्य मनसो विकार एव न संभवतीति ब्रूमः। युक्तं चैतत्—लोके हि मृत्तिकादयः सावयवा एव पदार्था विक्रियाशालिनो दृश्यन्ते, न परमाण्वादय आकाशादयो वा। ननु मनसोऽणुत्वमेव कुत इति चेदुच्यते। यदि तु मनो विभु स्यात्तदाऽऽत्ममनःसंयोगस्य नित्यत्वात् ज्ञानोत्पत्तिः सदैव स्यात्। मन्मते तु तस्याणुत्वात्तद्देशाव-च्छिन्नास्तत्संयोगा एव ज्ञानोपत्तिं कुर्वन्तीति न दोषः। आत्मनस्तथा मनसश्च विभुत्वादुभयोरपि संयोगस्य व्यापकत्वाद्देशसंबंधो न भवितुमर्हति।

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


किं च–पुनर्जन्मव्यवस्थोपपादनार्थं मनसोऽणुत्वमवश्यमंगीकार्यं। अन्यथा शरीरप्राप्तिर्दुरुपपादैव भवेत्। न च यथा नूतने शरीरे मनसो गमनं तथाऽशेषाणामिन्द्रियाणां कुतो नेति वाच्यं। भूतपरमाणूनां सर्वत्र सुलभत्वाद्भौतिकानामिन्द्रियाणां तत्र शक्योत्पत्तिः। मनस्त्वभौतिकं नित्य-मण्वेव भवितुमर्हति। न च मनसो भौतिकत्वं कुतो नेति वाच्यं। मनसो भौतिकत्वे तन्नाशस्यावश्यकत्वे पुनर्जन्मव्यवस्थाऽनुपपन्ना स्यात्। तस्मात् सर्वथाऽण्वेव मनः। तत्संबंधाच्चात्मनि व्यापकेऽपि शरीरावच्छेदेन सुख-दुःखाद्युत्पत्तिः। ननु दुःखस्य योग्यविभुविशेषगुणवत्त्वेन तस्य तृतीयक्षण-वृत्तिध्वंसप्रतियोगित्वमवश्यं स्वीकार्यं। तथा च दुःखध्वंसरूपमोक्षस्य स्वतःसिद्धतया कथं तत्र प्रयत्नस्यापेक्षा। तत्त्वज्ञानस्य च कथं तत्र कारणत्वं। उच्यते। दुःखस्य तृतीयक्षणवृत्तिध्वंसप्रतियोगित्वेऽपि तत्का-लीनो योऽयं दुःखप्रागभावस्तस्य सत्त्वान्न दुःखस्य सर्वस्य नाशः। यदा तु तत्त्वज्ञानेनाज्ञानं व्युदस्यते तदा स दुःखप्रागभावो नश्यति प्रागभावे नष्टे कारणाभावाद्दुःखं नोदेति। तेन मोक्षो दुःखसामान्यध्वंसरूपः सिध्यतीति तस्य पुरुषार्थत्वं। तस्माद्दुःखं नामात्मविशेषगुणः। तस्य च अज्ञाननियतजन्यत्वेनाज्ञाने नष्टे नाशः स्यादिति तन्नाशोऽपि पुरुषार्थः।

५

निरूपितमज्ञानस्य स्वरूपं फलभूतस्य दुःखस्य स्वरूपेण सह। अधुना तत्त्वज्ञानस्य स्वरूपं निरूपणीयं। यद्यपि अज्ञानस्य स्वरूपे ज्ञाते तत्प्रतिपन्थिरूपेण तत्त्वज्ञानस्याऽपि स्वरूपं ज्ञातकल्पं भवति। तथापि तत्त्वज्ञानस्य प्रतिदर्शनं भिन्नाकारत्वेन तत्स्वरूपं यावत् स्पष्टरूपेण न निगद्यते तावत्तद्बुद्धिविषयो न भवतीति पुनः समुल्लिख्यते। तत्र तत्त्वज्ञानस्य स्वरूपं भगवता वात्स्यायनमुनिना स्वभाष्ये निरूपितं। तद्यथा–तत्त्वज्ञानं तु खलु मिथ्याज्ञानविपर्ययेण व्याख्यातं। आत्मनि

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


तावदस्तीति । अनात्मनि अनात्मेति । एवं दुःखेऽनित्येऽत्राणे सभये जुगुप्सिते हातव्ये च विषये यथाविषयं वेदितव्यं । प्रवृत्तौ अस्ति कर्म । अस्ति कर्मफलमिति । दोषेषु दोषनिमित्तोऽयं संसार इति । प्रेत्यभावे खलु अस्ति जन्तुर्जीव सत्त्वः आत्मा वा यः प्रेत्य भवेदिति । निमित्तवज्जन्म । निमित्तवान् जन्मोपरम इति । अनादिः प्रेत्यभावोऽपवर्गान्त इति । नैमित्तिकः सन् प्रेत्यभावः प्रवृत्तिनिमित्त इति । सात्मकः सन् देहेन्द्रियबुद्धिवेदनासन्तानोच्छेदप्रतिसंधानाभ्यां प्रवर्तत इति । अपवर्गः शान्तः खलु अयं सर्वविप्रयोगः सर्वोपरमोऽपवर्गः । बहु च कृच्छ्रं घोरं पापकं लुप्यत इति कथं बुद्धिमान् सर्वदुःखोच्छेदं सर्वदुःखासंविदपवर्गं न रोचयेत् । तद्यथा—मधुविषसंपृक्तान्नमनादेयमिति । एवं सुखं दुःखानुषक्तमनादेयमिति । एतच्च सुस्पष्टमिति नास्ति विवरणस्यावश्यकता । तदिदं तत्त्वज्ञानं न्यायमते कथं जायते ? इदमनुमित्यात्मकं वा प्रत्यक्षात्मकं वेत्यादि संक्षेपेण विविच्यते । तत्र तत्त्वज्ञानं श्रवणमनननिदिध्यासजन्यं साक्षात्कारात्मकं वक्तव्यं । श्रुतिप्रामाण्यादनुभवबलाच्च । तथाहि । अस्ति देहाद्यतिरिक्तोऽखण्डो नित्यस्तावदात्मेति सहस्रशः श्रुतिवादा उपनिषत्सु श्रुताः । तांश्चाप्रमाणीकुर्वन्तो नास्तिकाः केवलतर्कावलंबनेनात्मतत्त्वं व्यवस्थापयन्तश्चार्वाकमारभ्य जैनपर्यन्तं निरूपिताः । तत्र तेषां श्रुतिवादानां साक्षादीश्वरोक्तत्वेन प्रामाण्यमेव । यथा हि द्राक्षा मधुरेति कुतोऽपि मानवात् ज्ञात्वाऽऽपणं गतो देवदत्तो द्राक्षां संपाद्य भक्षयित्वा द्राक्षा मधुरेति निश्चिनोति पूर्वोक्तं वाक्यं च प्रमाणीकुरुते । तथैव श्रुतिभ्यः श्रुतमखण्डत्वमात्मनोऽनुभवबलेन साक्षात्कुर्वन् तान् श्रुतिवादान् प्रमाणत्वेन स्वीकुरुते । अयं भावः—जीवो हि अनादिना देहादिषु विनश्वरेषु पदार्थेषु तादात्म्येनात्मबुद्धिकारिणाऽज्ञानेनावृतचक्षुस्तानेवाहंत्वेन मन्यमानोऽनिशं संसारदुःखेषु शोचति । स च कुतोऽपि दुःखनिवृत्तिं वाञ्छन् लौकिकानि सुखसाधनानि संपाद्य भुक्त्वा तेभ्योऽपि दुःखनाशमलभमानोऽलौकिक-

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



स्वर्गादिफलप्रतिपादकेभ्यो वेदवाक्येभ्यस्तानि तानि अलौकिकफलप्राप्ति-साधनीभूतानि यागादिकर्माण्यवबुध्य तत्र प्रवृत्तस्तान्यपि लब्ध्वाऽविनष्टदुः-खोऽन्ते उपनिषत्सु 'नास्त्यकृतः कृतेन तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठं' इति भूयो भूयः श्रुत्वा गुरुं शरणीकरोति। तदा गुरुस्तं वदति—श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः साक्षात्कर्तव्य इति। तत्रेदं वाक्यं निशम्य स जिज्ञासुः प्रथमं श्रुतिभ्य उपनिषत्संज्ञाभ्यः केवलं आत्माऽखण्डोऽमर इति ज्ञात्वा ततोऽनुमानेन तमेवार्थं परीक्षते। सोऽयं मननव्यापारः। मननेन च तादृशमेवार्थमवगम्याथ योगेन निदिध्या-सनापरपर्यायेण तमर्थं साक्षात्कर्तुं प्रयतते। अथ साक्षात्कृत्य निर्धूताज्ञान-पटलो निर्दुःखः संजायते। अयं च तत्त्वज्ञानोत्पत्तिक्रमः प्रदर्शितः। तत्त्वज्ञाने च साक्षात्कारात्मके जातेऽज्ञानमनाद्यपि समूलं नश्यति। नष्टे चाज्ञाने ज्ञानमपि नश्यति। कतकबीजं हि यथा जलस्थं कर्दममधः संस्थाप्य स्वयमपि अधो गच्छति तद्वदेव प्रकृतेऽपि बोध्यं। ननु ज्ञानस्य विनाशे मोक्षावस्थायां जीवात्मनां सत्त्वे प्रमाणं किं? उच्यते। दुःखाभाव एव। अज्ञानिनो जीवस्य रागद्वेषाक्रान्ततया धर्माधर्मयोरुत्पत्तिरावश्यिकी। तेन शरीरबंधस्ततश्च दुःखमिति पूर्वं निरूपितमेव। अस्य च मुक्तस्यात्मनो दुःखं न दृश्यते। यद्यपि परात्मा परस्य गोचरो न तथापि अश्रुपाता-क्रोशादिभिर्दुःखं त्वनुमीयते। न च मुक्तस्य दुःखमनुमातुं शक्यं। अज्ञानस्य तत्कारणस्य समूलं नाशात्। न च दुःखाभावः कथं ज्ञेय इति वाच्यं। पूर्वं दुःखिन एव सतः संजातज्ञानस्य दुःखित्वादर्शनेन सोऽनुमेयः। ननु ईश्वरो भक्काननुगृह्णातीति बहुशः श्रुतं। पाणिपादविहीनस्य मुख-ताल्वादिसंस्थानरहितस्य कथं भक्तानुग्रहसामर्थ्यमिति चेदुच्यते। ईश्वरो हि भक्तानामनुग्रहाय स्वस्य निर्दुःखित्वं प्रकटयितुमिच्छुः कस्मिन्नपि शुद्धसत्त्वे पवित्र आत्मनि प्रविश्य तद्द्वारा सत्यमार्गमुपदिश्य भक्काननुगृह्णातीत्येकः पक्षः। अन्ये तु दुर्जनसंत्रासितानां सज्जनानामदृष्टेनेश्वरस्य शरीरं संजायते

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


इति मन्यन्ते । तदुक्तं-वृद्धा भूतावेशन्यायेनेश्वरशरीरमिच्छन्ति, संसार्यदृष्टवशाद्वेत्यन्य इति । यथा तथा भवतु । ईश्वरोऽवताररूपाणि बिभ्राणो भक्ताननुगृण्हातीति सिद्धान्तो न्यायसम्मत इति ज्ञेयं । एतेन तस्य ध्यानादिकं तथोपासनादिकं च सर्वं सम्मतमिति न पृथक् वक्तव्यं भवतीति बोध्यं । ननु श्रोतव्यः श्रुतिवाक्येभ्य इति त्वयोक्तमसाधु। परस्परविसंवादिवाक्यसमूहरूपत्वेन वेदस्य प्रामाण्यमेव नेति कुतस्तत आत्मज्ञानस्य संभवः। 'वनस्पतयः सत्रमासत' 'स प्रजापतिरात्मनो वपामुदखिददि'—त्यादीनि विसंवादीनि वाक्यानि सहस्रश उपलभ्यन्ते । न हि वनस्पतिभिर्जडैः सत्रमासितुं शक्यं । न हि कश्चनात्मनो वपामुत्खाय जीवितुमपि शक्नोति दूरे च होतुं । तस्माद्वेदा अप्रमाणमिति चेदत्रोच्यते । यथा हि लोके केषांचिद्वाक्यानां विसंवादित्वदर्शनेन सर्वस्यैव शब्दस्याप्रमाणत्वं नोच्यते तथैव केषांचिद्वेदवाक्यानां विसंवादित्वशंकया सर्वस्यैव वेदस्याप्रामाण्यं वक्तुं न युक्तं । न च लोके भिन्नानां वाक्यानां सत्त्वात्तत्रोपपद्यते प्रामाण्याप्रामाण्यव्यवस्था । वेदस्य तु एकवाक्यसमूहरूपत्वादेकस्याप्रामाण्ये सर्वाप्रामाण्यव्यवस्था दुर्वारा । यथा हि विषसंपृक्तमंशतोऽन्नं सर्वमेव हेयं भवति तथैवांशिकाप्रामाण्यदोषाक्रान्तं सर्वमेव वेदवाक्यमप्रमाणमेवेति वाच्यं । यथा हि केषांचिद्वेदवाक्यानामप्रामाण्यशंकाकलंकितत्वेन सर्वस्याप्रामाण्यमाशंक्यते, तथैव केषांचिद्वेदवाक्यानां प्रामाण्यदर्शनेन सर्वेषां प्रामाण्यमेव कुतो नाशंक्यत इति वद । तस्माद्यानि प्रमाणानि तानि प्रमाणान्येव । यानि चाप्रमाणत्वेन त्वयोक्तानि तानि कथं प्रमाणानीति विचारयामः । एतेन कृत्स्नस्य वेदस्याप्रामाण्यशंका निराकृता । ननु वेदघटकानां विसंवादिवाक्यानां का गतिरिति चेदुच्यते । वाक्यस्य प्रामाण्ये तात्पर्यविषयीभूतस्याबाधो विवक्षितः । केवलं वाच्यार्थाबाधविवक्षणे तु गंगायां घोष इत्यादीनां वाक्यानामप्रामाण्यापत्तिः । तत्र वाच्यस्य प्रवाहरूपार्थस्य बाधात् । तात्पर्यार्थाबाधस्य विवक्षणेऽत्र गंगापदेन तीरस्य

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



विवक्षणान्न तेन घोषान्वयो बाधित इत्युपपद्यते तस्य प्रामाण्यं। प्रकृतेऽपि वनस्पतयः सत्रमासतेत्यादीनां तात्पर्यार्थोऽबाधित एव। तथाहि। वनस्पतिभिः सत्रमनुष्ठातुमशक्यमिति प्रत्यक्षेणावगम्यते। श्रुत्या च तथोक्तमिति परस्परविरोधे विधिप्रकरणपाठिता विधयः प्राशस्त्यमपेक्षन्ते। इदं च वाक्यं प्रामाण्यं। तथा च दग्धाश्वरथन्यायेनोभयोरेकवाक्यत्वे सर्वं समंजसं भवति। वनस्पतयः सत्रमासतेत्यादीनां वाक्यानां न वाच्योऽर्थोऽपेक्षितः किंतु लक्ष्यः प्राशस्त्यरूपः। स च न बाधित इति न तस्याप्रामाण्यं। अत एव तानि शास्त्रेऽर्थवादपदेनोच्यन्ते। एतच्च सविस्तरं मीमांसादर्शननिरूपणावसरे स्पष्टं भविष्यति। एवं च श्रुतिवाक्येभ्य आत्मनो रूपं श्रुत्वा तदविरोधेन तर्केण मत्वा निदिध्यासनं च विधाय साक्षात्कारात्मक ज्ञानं संभवतीति न्यायसिद्धान्तः।

६

निरूपितं सविस्तरं तत्त्वज्ञानस्य स्वरूपं। अधुना तत्फलं मोक्षपदवाच्यं निरूपणीयं। तदर्थं हि सर्वमुपायानुष्ठानं। तत्र मोक्षो निखिलदुःखध्वंसरूपः सर्वसम्मत एव। तत्र दुःखस्यात्मगुणत्वात् ध्वंसप्रागभावयोः प्रतियोगिसमवायिकारणवृत्तित्वेन दुःखध्वंसोऽपि आत्मन्येव भवितुमर्हति। न च दुःखस्य विभुविशेषगुणत्वेन तन्नाशोऽवश्यंभावीति न स पुरुषार्थ इति वाच्यं। विभुगुणत्वेन तन्नाशो न पुरुषार्थोऽपि तु दुःखत्वेन। यद्यपि ध्वंसप्रागभावयोः प्रतियोगिता न सामान्यधर्मावच्छिन्ना। अन्यथा घटध्वंसस्यासंभव एव स्यात्। न हि कस्मिन्नपि क्षणे घटत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताको ध्वंसः संभवति। तथा च कथं दुःखत्वेन दुःखमात्रनाशो मोक्षपदार्थ इति। सत्यं। तथापि क्रमविनाशिनां दुःखानां यदन्तिमं दुःखं तन्नाशे मोक्षस्य संभव एव। तत्र कथमपि कुत्रापि काले वा देशे सर्वेषां दुःखानां संभव एव न। येन मोक्षकाले दुःखत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताको ध्वंसः सिध्यति। ननु मोक्षस्य दुःखध्वंसरूपत्वेऽपुरुषार्थ-

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



त्वप्रसंगः । दुःखाभावं पुरुषो वाञ्छति तत् केवलं दुःखे द्वेषात्तत्परीहारवाञ्छया । न तु दुःखाभावस्य वाञ्छया । सुखरूपत्वे तु तस्य स्वतः-पुरुषार्थतया संभवति मोक्षस्य पुरुषार्थत्वं । उच्यते । मोक्षे यत् खलु सुखं स्यात्तत् किं नित्यमनित्यं वा ? यदि नित्यं तदा तस्य संसारावस्थायामपि सत्त्वं स्यात् । तथा च संसारमोक्षयोरविशेषप्रसंगः । यद्यनित्यं तदा तस्य विनाशेन मोक्षस्यापि अनित्यत्वं स्यात् । अथात्मा हि सच्चिदानन्दरूपस्तत्राज्ञानेन तदीयौ द्वावंशौ चिदानन्दरूपौ तिरोहितौ । आत्मज्ञानेनाज्ञाने नाशिते तावुभावप्यंशावभिव्यक्तौ भवतः, स एव मोक्ष इत्युच्यते तदा सतताभिव्यक्तिसिध्यर्थं ज्ञानस्य नित्यत्वं वक्तव्यं । तथा चात्मज्ञानेनाज्ञाने नाशित इति निरर्थकं वचः । न हि नित्ये पदार्थे कालमर्यादोपपद्यत इति दुःखध्वंस एव मोक्षः । स तु नित्य एव । ध्वंसध्वंसस्यानंगीकारात् । तस्मात् केवलं सत्त्वमखण्डत्वरूपं विहाय नात्मनोऽन्यच्चिद्रूपत्वं वाऽऽनन्दरूपत्वं वा स्वभाव इत्यपि बोध्यं । न चापुरुषार्थता । यथा हि सुखमिष्टं तथैव दुःखाभावेऽपीष्टत्वं समानमेव पुरुषार्थत्वं च । येऽपि चेश्वरकृपयाऽऽनन्दांशो मोक्ष आविर्भवतीति वदन्ति तैरपि ईश्वरकृपाया जन्यत्वेनानित्यत्वे पुनरानन्दस्य नाशे वा मोक्षस्यानित्यत्वं कथं परिह्रियत इति विचिन्तनीयं ।

७

उक्तेषु प्रमेयेषु प्रमाणानि चत्वारि स्वीकुर्वन्ति नैय्यायिकाः । तत्र—

**इन्द्रियार्थसंनिकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्यमव्यभिचारि व्यवसायात्मकं प्रत्यक्षं ( गौ. सू. १-१-४ ) ।**

अव्यपदेश्यपदेन निर्विकल्पकस्य प्रत्यक्षस्य संग्रहः । व्यवसायात्मकमित्यनेन सविकल्पस्य । अव्यभिचारीति ज्ञानविशेषणं तु भ्रमस्यालक्ष्यत्वबोधनाय ।

**अथ तत्पूर्वकं त्रिविधमनुमानं पूर्ववत् शेषवत् सामान्यतोदृष्टं च ( गौ. सू. १-१-५ ) ।**



Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



तत्पूर्वकं प्रत्यक्षपूर्वकं । पूर्ववदनुमानस्योदाहरणं—धूमाद्वान्हिमानिति । शेषवदिति परिशेषानुमानं, यथा—शब्दो न स्पर्शवद्विशेषगुणः अग्निसंयोगासमवायिकारणकत्वे सति अकारणगुणपूर्वकत्वे सति प्रत्यक्षत्वादिति। तत्र यः परिशिष्यते स आकाशः शब्दाश्रय इति । सामान्यतोदृष्टं यथा—क्रियासाधनानि करणानि केनचित्कर्त्राऽधिष्ठितानि कार्याय प्रभवन्ति । इन्द्रियाणि च करणानि केनाऽपि कर्त्राऽधिष्ठितानीति, यः कर्ता स आत्मेति अनुमानं । एतस्य विस्तरेण निरूपणमत्रानावश्यकमिति न क्रियते ।

प्रसिद्धसाधर्म्यात् साध्यसाधनमुपमानं । ( गौ. सू. १-१-६ )

इदं चानुमाने वा शब्दे वाऽन्तर्भवितुं न शक्यं । सादृश्यमूलकत्वात् । यथा गौस्तथा गवय इति सादृश्यधीः, तज्जन्यं गवयो गवयपदवाच्य इति ज्ञानमुपमितिसंज्ञकं भिन्नमेव ।

आप्तोपदेशः शब्दः । ( गौ. सू. १-१-७ )

आप्तस्य यथार्थज्ञानशालिनो य उपदेशः शब्दप्रयोगः स प्रमाणं । न तु आप्तश्चासावुपदेशश्चेति विग्रहः । उपदेशे आप्तत्वस्यासंभवात् । ननु अबाधितत्वमाप्तत्वं निरूपयितुं शक्यं । उच्यते । यः शब्दो बाधितमर्थं ब्रूते तत्र कारणं किं शब्दस्वभाव उतोच्चारयितुरज्ञानं ? नाद्यः—तथा सति स एव शब्दोऽन्यत्र कथमबाधितार्थो भवेत् । अन्त्ये चास्मत्सिद्धान्तप्रवेशः । शब्दस्योच्चारयिता यदि यथार्थज्ञानशाली तदा स शब्दः प्रमाणं भवतीति अस्माकं सिद्धान्तः । अयं भावः—काचवत् खलु सर्वे इमे शब्दा ज्ञानस्य ज्ञापकाः । तत्र तत्प्रयोगसाधनीभूतं ज्ञानं यद्ययथार्थं तदा ते शब्दा अप्रमाणभावं भजन्ते । अथ यदि तद्यथार्थं तदा प्रमाणं भवन्ति। यथा हि सुरूपकुरूपत्वयोः प्रदर्शकः काचस्तथैव वक्तुर्यथार्थायथार्थज्ञानबोधका इमे शब्दा इति बोध्यं । अथ च शब्दो द्विविधः —वर्णात्मको ध्वन्यात्मकश्च । तत्र वर्णात्मको यथा—संस्कृतभाषादिरूपः । ध्वन्यात्मकश्च भेर्यादिशब्दः। द्विविधोऽपि शब्दोऽनित्य

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


एव। कारणजन्यत्वात्। कण्ठताल्वाद्यभिघातसंयोगजन्यो वर्णात्मकः शब्दस्तथा भेरीदण्डाघातजन्यो ध्वन्यात्मकः शब्दोऽनित्य इति प्रत्यक्षं। अयं च द्विविधोऽपि शब्दः कर्णशष्कुल्यवच्छिन्नेन नभसा श्रोत्रेन्द्रियरूपेण गृह्यते। समवायसंबंधेनाकाश एवायं वर्तते। ये तु शब्दं नित्यं वदन्ति तैः सततश्रवणप्रसंगः कथं वार्यते? कथं च तस्य स्वरूपं? यदि द्रव्यं शब्दस्तदा कथं श्रोत्रेण तस्य ग्रहणं। त्रीणि चक्षुस्त्वङ्मनांसि द्रव्य-ग्राहकाणि, अन्यानि श्रोत्रघ्राणरसनानि गुणग्राहकाणीति नियमात्। किं च शब्दस्य द्रव्यत्वे तद्विभु वाऽणु वा मध्यमपरिमाणं वा? विभुत्वे तस्य प्रत्यक्षत्वोपपत्तये विशेषगुणवत्त्वं वक्तव्यं। को हि तत्र विशेषगुणः? मध्यमपरिमाणवत्त्वे सावयवत्वं स्यात्। तच्च प्रत्यक्षेण बाधितं। अणुत्वे प्रत्यक्षत्वानुपपत्तिः। अतः शब्दस्य द्रव्यत्वं न संभवति। ननु शब्दस्यानित्यत्वे वेदस्यानित्यत्वापत्तिः। इष्टापत्तिरिति चेत्-तथा सति अप्रामाण्यप्रसंगः? उच्यते। अनित्यत्वेऽप्रामाण्यं कुत इति प्रथमतो वद। नन्विदमेव—यद्वेदानामनित्यत्वे पुरुषसंबंधस्यापरिहार्यत्वात् पुरुषकृतानां दोषाणां संबंध इति चेदुच्यते। वेदे पुरुषसंबंधोऽस्तु। स च सर्वथा यथार्थवादीत्यनेनैव सर्वदोषपरिहारे शब्दस्य नित्यत्वकल्पना तथा वेदस्यापौरुषेयत्वकल्पना निरर्थिका। न च सर्वेषां पुरुषाणामज्ञानित्वमिति वाच्यं। सृष्टिकर्तृत्वेन यः सर्वज्ञः सिद्धस्तस्यैव वेदकर्तृत्वमस्तु। सर्वज्ञ-प्रणीतत्वेन निर्दुष्टत्वं वेदानामनित्यत्वेऽपि सेत्स्यति। न हि खड्गस्य तैक्ष्ण्येन शत्रोः शकलीकरणं किंतु प्रहर्तुश्चातुर्येणैव। तथा च सर्वज्ञप्रणीतत्वेन वेदाः प्रमाणं न तु अपौरुषेयत्वेनेति ज्ञेयं।

वादिप्रतिवादिनोर्जयपराजयावुद्दिश्य न्यायदर्शने बहु लिखितं, प्रपञ्चितं च तत्तद्भाष्यकारैरपि। परन्तु तस्य प्रकृतेऽनुपयोगान्नोल्लेखः कृत इति सरलमतिभिरवधेयं।

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



## ( वैशेषिकदर्शनावतरणिका )

निरूपिता न्यायदर्शनप्रतिपादिताः प्रायः सर्वे एव पदार्थाः। आत्माऽपि शरीराद्भिन्नो नित्योऽखण्ड इति प्रतिपादितं। परन्तु न्यायदर्शने ये पदार्थाः कथितास्तेषां तत्त्वज्ञानं स्वभावज्ञानापरपर्यायं कथं भवेत्। ननूक्तं तत् साक्षात्कारात्मकं ? सत्यमुक्तं। परन्तु प्रथमतः साधर्म्यवैधर्म्यनिरूपणं विना कस्यापि पदार्थस्य ज्ञानं न संभवतीति बालोऽपि जानाति। न हि तत्र साधर्म्यवैधर्म्ये पदार्थानां निरूपिते। किं च छलजातिनिग्रहस्थानादीनां ज्ञानं कथं तत्त्वज्ञानमुपकुरुते ? अपि च ये खलु न्यायदर्शने पदार्था उक्तास्ततोऽपि अतिरिक्ताः पदार्थाः सन्ति। तथाहि। जातिपदार्थो हि अनुगतप्रतीतिविषयो भूतभविष्यत्घटादीनां बोधको घटत्वरूपः स्वीकरणीय एव। सिद्धे च तस्मिंस्तस्य कुत्रान्तर्भावः ? न च जातिपदार्थो नास्त्येव न्यायमत इति भ्रमितव्यं। तथा सति 'जात्याकृतिव्यक्तयः पदार्थः' इति सूत्रमसंगतं स्यात्। आरंभवादेऽवयवावयविभावः सिद्ध एव। तथा सति तयोः संबंधेन भाव्यं। स च संबंधो युतसिद्धयोर्घटपटयोः संयोगो न भवितुमर्हति किंतु अतिरिक्त एव स्वीकार्यः। तथा सति तस्य कुत्रान्तर्भावः ? मुक्तात्मनानात्वे प्रयोजकं किं ? यदि न किमपि, तदा तेषां भेदः कथं सिध्येत् ? तदर्थं विशेषपदार्थः स्वीकर्तव्यः। स चेत् स्वीकृतस्तदा तस्यान्तर्भावः कुत्र ? तथा चैतेषां पदार्थानामनिरूपणान्न्यूनता। अपि च तत्त्वज्ञानार्थं खलु शास्त्रं प्रवृत्तं न पुनरान्वीक्षिक्याः पार्थक्यबोधाय। अतः संशयादीनां निरूपणं निरर्थकं। अतः संक्षेपेण येषां निरूपणेन तत्त्वज्ञानं सिध्येत्तावन्त एव पदार्था निरूपणीयाः। एवं कृते लाघवमपि सहायं भवति। अतो वैशेषिकदर्शनं प्रस्तूयते। प्रायो न्यायदर्शने ये विषयाः सविस्तरं निरूपितास्ते विस्तरपरिहाराय संक्षेपेण निरूप्यन्ते। ये तु नूतनास्ते सविस्तरं निरूप्यन्ते।

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

# अष्टमं सोपानम् ।

## वैशेषिकदर्शनम् ( नित्यात्मवादः ) ।

| प्रश्नाः-- | उत्तराणि-- |
|---|---|
| १ किं ज्ञेयम् ? | १ सप्तपदार्थाः । |
| २ कीदृशो ज्ञाता ? | २ ज्ञानाधिकरणं । |
| ३ अज्ञानस्य स्वरूपं किं ? | ३ आत्मगुणविशेषः विनश्वरेषु शरीरादिषु आत्माभिमानरूपः । |
| ४ दुःखस्य स्वरूपं किं ? | ४ आत्मविशेषगुणः प्रतिकूलवेदनीयः। |
| ५ ज्ञानस्य स्वरूपं किं ? | ५ आत्मविशेषगुणः अहं नित्य इति भावनारूपः । |
| ६ दुःखध्वंसस्य (मोक्षस्य) स्वरूपं किं ? | ६ एकविंशतिदुःखानामभावविशेषः । |
| ७ एतेषु प्रमाणं किं ? | ७ प्रत्यक्षमनुमानं च । |

सिद्धो भावगणो यथैव मितितोऽभावोऽपि सिद्धस्तथा ।
ते नित्या अणवो निदानमपरा विश्वस्य कार्यस्य च ॥
नित्या जीवगणाः स्वतंत्रजगतीनाथस्य नित्यं वशाः ।
मोक्षः पूर्ववदाद्यमानयुगलं वैशेषिकाणां नये ॥ १ ॥

१

इह जगतीतले केवलं सप्तैव पदार्थाः सन्तीति वैशेषिकाणां मतं । प्रागुक्तानां षोडशपदार्थानां तत्रैवान्तर्भावात् । ते च सूत्र एवोक्ताः—

धर्मविशेषप्रसूतात् द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायानां साधर्म्य-वैधर्म्याभ्यां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसम् ( वै. सू. ४ ) ।

तत्र गुणवत्त्वं वा क्रियावत्त्वं वा द्रव्यस्य लक्षणं । तानि च-'पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशकालदिगात्ममनांसि नवैव' इति सूत्र एव निगदितानि । तत्र—गंधवती पृथिवी, शीतस्पर्शवत्य आपः, उष्णस्पर्शवत्तेजः, रूपरहितः स्पर्शवान् वायुः, शब्दगुणकमाकाशं, कालिकपरत्वा-

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



परत्वाश्रयः कालः, दिक्कृतपरत्वापरत्वाश्रया दिक्, ज्ञानाधिकरणमात्मा, सुखाद्युपलब्धिसाधनं मनः, इतिलक्षणानि द्रव्याणि। एतेषु आद्यानि चत्वारि सावयवानि। तेषां च तत्तद्गुणशालिनः परमाणवो भिन्ना भिन्ना एव। अन्यानि च नित्यानि। आद्येषु चतुर्ष्वपि कार्यरूपाणि द्व्यणुकमारभ्यान्त्यावयविपर्यन्तानि अनित्यानि। परमाणुरूपाणि तु नित्यानि। तत्र नित्यत्वमनित्यत्वं वा न स्वभावात् किंतु कारणसामग्रीसमवधानासमवधानाभ्यां बोध्यं। गुणो गुणत्वजातिमान्। ते च गुणाः—

रूपरसगंधस्पर्शशब्दसंख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगाविभागपरत्वापरत्वगुरुत्वद्रवत्वस्नेहबुद्धिसुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नधर्माधर्मसंस्काररूपाः। ते च यथायथं द्रव्येषु वर्तन्ते। कर्म तु—उत्क्षेपणापक्षेपणाकुंचनप्रसारणगमनरूपं पंचविधं। यथायथं द्रव्यवृत्त्येव। प्रसिद्धा आपामरमेत एव त्रयः पदार्थाः। अग्रिमास्तु सामान्यादयः शास्त्रसिद्धान्तमनुसृत्य सिद्धाः। तत्र सामान्यं—परमपरं चेति द्विधा। सामान्यस्य लक्षणं तु—'नित्यमेकमनेकानुगतमिति' बोध्यं। अयं भावः—एकं वा द्वौ वा घटौ वीक्ष्य सर्वेषां घटानां ज्ञानं भवति। बालकश्च ज्ञातघटो नूतनं घटमानेतुं समाज्ञप्त आपणं गत्वा तमानयति। तथा च कतिपयव्यक्तिदर्शनेन यत् सर्वासां घटादिव्यक्तीनां ज्ञानं जायते तत्किमनुमानात्मकमथवा प्रत्यक्षं? यदि परोक्षमनुमानादिस्वरूपं तदा निःसंदिग्धता न स्यात्। किं च कः खलु अतीतानागतघटेषु वर्तते हेतुर्यः खलु तेषामनुमानं कारयेत्। तस्मात् सर्वेषु घटेषु घटत्वं नाम पदार्थविशेषः कल्पनीयः। तेन साकं संनिकर्षे सर्वेषां घटानां ज्ञानं जायते। सोऽयमलौकिकः संनिकर्ष इति शास्त्रे निगद्यते। अपि च द्रव्यगुणकर्मसु सदिति अनुगतप्रत्ययो भवति। तथैवाभावेऽसदिति प्रत्ययो जायते। तत्र सत्तापदार्थः कः? यदि व्यक्तिविशेषरूपस्तदा सर्वत्र तस्यानुगतप्रत्ययो न स्यात्। नाप्यर्थक्रियाकारित्वं सत्तापदार्थः। तस्य व्यक्तिविशेष-

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


रूपतया सर्वत्रानुगतप्रत्ययस्यानुपपत्तेः । तस्मात् सत्ता नाम सामान्यं जात्यपरपर्यायं पदार्थान्तरं स्वीक्रियते । इदं सत्तासामान्यं परं । तच्च त्रिषु द्रव्यगुणकर्मसु समवायसंबंधेन तिष्ठति । ननु सामान्यादिष्वपि सदिति व्यवहारस्य सत्त्वात्तत्रापि सत्तायाः सत्त्वापत्तिः । न चेष्टापत्तिः । तथा सति तत्र सत्ताऽन्या स्यादित्यनवस्था । किं च समवाये सत्तायाः सत्त्वे समवायान्तरं संबंधत्वेन कल्पनीयं स्यात् । सत्यं । भावत्वं साक्षाद्वा परंपरासंबंधेन वा सत्तावत्त्वं । तत्र द्रव्यगुणकर्मसु साक्षात्समवायसंबंधेन सत्ता तिष्ठति, सामान्यसमवायविशेषेषु स्वाश्रयाश्रितत्वरूपपरंपरासंबंधेन । तथा चानया रीत्या सामान्यादिषु सत्तावत्त्वात् सदिति व्यवहारो युज्यत एव । नन्वभावेऽप्यनया रीत्या सत्तावत्त्वं सिध्येदिति चेन्न—आरोपे सति निमित्तं न तु निमित्तमस्तीत्यारोपः । अभावस्य च नास्तीति प्रतीतिसिद्धत्वेन सत्तावत्त्वं कथमपि तत्रारोपयितुमशक्यं । इदं च सामान्यमपरं परं च घटत्वादिकं पृथिवीत्वादिकं सत्ता च । ननु घटत्वस्य त्वया नित्यत्वं वक्तव्यं । तथा च तत् घटोत्पत्तेः पूर्वं क्वासीत् । नापि घटे समुत्पन्ने घटान्तरादागत्य नूतने घटेऽतिष्ठत् । न च घटेन सहैवोत्पन्नं । नापि घटे नष्टे नष्टं । तस्मादसमंजसैषा सामान्यस्य जातिरूपस्य कल्पना । तदुक्तं—

न याति न च तत्रासीन्न चोत्पन्नं न चांशवत् ।
जहाति पूर्वं नाधारं । अहो व्यसनसंततिः ॥

उच्यते—सर्वेषु घटेषु घट इत्यनुगतप्रतीत्युपपादनाय घटत्वं नाम सकलघटवृत्तिः कश्चन पदार्थः स्वीकरणीयः । स च यदि घटवदुत्पादविनाशशाली तदा नाभीष्टं सिध्यति । तथा च भक्षितेऽपि लशुने न शान्तो व्याधिरिति न्यायानुसरणं । अतस्तस्य नित्यत्वं वक्तव्यं । नित्ये च तस्मिन् सर्वघटवृत्तित्वं स्वीकरणीयं । तथैवानागतातीतघटवृत्तित्वमपि । न चैतदसंभवि । यथा हि अतीतानां दण्डादीनां कारणत्वमनागतानामपि यथैव घटादीनां कार्यत्वं, तथैवातीतानागतघटादिषु घटत्वस्य

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



संबंधकल्पने बाधकाभावात्। किं च कुत्र घटपदवाच्यत्वं। व्यक्ताविति चेत्तत्किं वर्तमानायां किंवाऽतीतायामनागतायां च? सर्वत्रेति चेत्कस्या एकस्या व्यक्तेः कालत्रयसंबंधस्याभावात्। न हि कालत्रयसंबंधं विहाय नित्यत्वं नाम पदार्थान्तरं। तस्मात् घटपदवाच्यत्वं सर्वेषु घटेषु वर्तमानं कंचन धर्मविशेषमधिकृत्य वक्तव्यं। स धर्म एव घटत्वं। तत्रातीतानागत-घटव्यक्तिषु घटत्वस्य संबंधः कथं स्यादिति शंकां कुर्वता मानवेन प्रथमत इदं वक्तव्यं यदतीतानागतादिघटव्यक्तीनां घटपदवाच्यत्वं कथमिति। तस्मादगत्याऽस्मत्सिद्धान्तमनुसृत्य घटत्वं परिकल्प्य तत्रैव वाच्यत्वं स्वीकृत्योपपादनीया। अतो न यातीत्यादिप्रजल्पनमज्ञानकल्पितमिति न तन्निराकरणे विशेषादरः क्रियते। यत्तु केषांचित्—घटावच्छिन्ना ब्रह्मसत्तैव घटत्वमिति व्याख्यानं तत्तु न्यायसिद्धान्तप्रतिकूलत्वादनादरणीयं। न हि ब्रह्मसत्ता वेदान्तिभिरिव नैय्यायिकैरपि स्वीक्रियते। ये तु मृत्तिका सामान्यं घटो विशेष इति परिकल्प्य सर्वेषां पदार्थानां सामान्यविशेषात्मकत्वं स्वीकुर्वन्ति। वदन्ति च—निर्विशेषं न सामान्यं, निःसामान्यो न विशेष इति। तदपि नोचितं। न हि मृत्तिका नाम किमपि स्वतंत्रं तत्त्वं नापि घटो नाम। किंतु सामान्यविशेषपदाभ्यां कार्यकारणभावमेव समुदाहरन्ति। न स स्वातंत्र्येण कश्चन पदार्थ इति सर्वं सूक्ष्मया दृष्ट्या समवधारणीयं। एवं सामान्यं नाम पदार्थान्तरं सिद्धं। एवमेव-विशेषो नाम कश्चन पदार्थ स्वीकरणीय एव। यानि अवयविद्रव्याणि घटादीनि तेषां परस्परं भेदः अवयवभेदमूलक एव। परन्तु यानि नित्यानि द्रव्याणि तेषां परस्परं भेदः कथं सिध्येत्। न हि तेषामवयवाः सन्ति। नित्यत्वात्तेषां। न च तेषां भेदस्य का वाऽऽवश्यकतेति वाच्यं। जलादिपरमाणुरूपस्य तथा पृथिवीपरमाणुरूपस्य भेदसिध्यर्थं तस्यावश्यकत्वात्। न च तस्यापि किं प्रयोजनमिति वाच्यं। तयोर्नित्यत्वानित्यत्वरूपस्वरूपभेदसिध्यर्थं तस्यावश्यकत्वात्। स च विशेषः स्वतःसिद्धभेदः। अन्यथाऽनवस्था स्यात्।

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


किं च जीवात्मनां भेदसिद्धिरज्ञानदशायां सुखदुःखादिना भवितुमर्हति तथापि मुक्तौ जीवात्मनां भेदसत्त्वे प्रमाणं किं? न च तदानीं सुखदुःखादीनां संभवः। न च पूर्वं भेद इति तदानीं भेदः सिध्येदिति वाच्यं। पूर्वं मूर्ख इति विद्वदवस्थायामपि मौर्ख्यस्य सत्त्वप्रसंगः। अतस्तत्र जीवात्मनां भेदसिध्यर्थं विशेषपदार्थोऽवश्यं कल्पनीयः। एवं समवायोऽपि पदार्थान्तरं कल्पनीयं। गुणवान् क्रियावान् घट इत्यादिविशिष्टबुद्धिर्विशेषणविशेष्यसंबंधविषया विशिष्टबुद्धित्वात् दण्डी पुरुष इतिविशिष्टबुद्धिवत्। यथा हि दण्डी पुरुष इतिविशिष्टबुद्धौ दण्डः पुरुषस्तयोः संयोगाख्यः संबंध इति त्रयो विषयाः, एवमेव गुणवान् घट इत्यत्र त्रयो विषया अवश्यं वक्तव्याः। तत्र गुणो घटश्चेति द्वौ प्रत्यक्षौ। संबंधश्च संयोगरूपो न भवति। स च युतसिद्धयोरेव। इमौ गुणघटावयुतसिद्धौ। तस्मादनयोः संयोगः संबंधो न भवितुमर्हति। तादात्म्यं च न संबंधः। स्वरूपसंबंधस्तु विशेषणरूपः। विशेषणानां च नानात्वात् सोऽपि न भवितुमर्हति। यश्च तयोः संबंधः स एव समवायो नाम। ननु समवायो नाना वैको वा। नानात्वे गौरवं। एकत्वे च वायावपि रूपवत्ताप्रतीतिः प्रमा भवेत्। सत्यं। एक एव समवायः। न च वायौ रूपवत्ताप्रतीतिः प्रमा? तत्र रूपसमवायसत्त्वेऽपि रूपाभावात्। न च संबंधसत्ता संबंधि-सत्ताव्याप्येति नियमः। सर्वेषां पदार्थानां सत्ता भिन्ना भिन्ना न कस्यापि सत्तामवलंब्य तिष्ठति। एवमभावोऽपि स्वतंत्रः पदार्थः। ननु अभावस्य न पदार्थान्तरत्वं। तस्य न घटादिवत् स्वातंत्र्येण भानं। किंतु कस्मिन्नपि अधिकरणे स भासते। तथा च भूतले न घट इति प्रतीतिर्न भूतलादन्यं घटाभावमवगाहते, किंतु रिक्तं भूतलं। अयं भावः– घटाधिकरणत्वेन भासमानं भूतलं भूतलत्वेन प्रतीतिविषयः। घटो नास्तीति प्रतीतिविषयं च भूतलं घटाभावत्वेन विषय इति बोध्यं। यथा हि एक एव देवदत्तो भिन्नभिन्नसंबंधेन पितापुत्रादिप्रतीतिविषय एवमेवेदमपि बोध्यं। मैवं।


Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



नियमेन घटादिपदार्थेष्वेव भासमानं रूपादिकं सर्वं यथा पृथक्पदार्थत्वेन स्वीक्रियते, एवमेवाभावोऽपि स्वतंत्र एव पदार्थः स्वीकर्तुमुचितः। न हि भूतलमेव घटाभावत्वेन नास्तीतिप्रतीतिविषय इति वाच्यं। एवं सति एकमेव द्रव्यं भिन्नभिन्नाकाररूपेण भासत इति स्वीकारेणैव सर्वसामंजस्ये गुणादिपदार्थकल्पना व्यर्था स्यात्। तस्मात् प्रत्यक्षमनुभवमनुरुध्य सर्वे गुणादयः पदार्था यथा कल्पितास्तथाऽयमभावोऽपि पदार्थः कल्पनीय एव। किं च रिक्तं भूतलं नास्तीतिप्रतीतिविषय इति स्वीकारे किमिदं भूतले रिक्तत्वं तद्वक्तव्यं। यदि घटशून्यत्वं, तदाऽऽगतं घटाभावेन। यद्यन्यत्तदा तन्निरूपणीयं। न च तन्निरूपयितुं शक्यं। तस्मादपि अभावो नाम पदार्थान्तरं। किं च घटोत्पत्त्यनन्तरं घटानुत्पत्त्यर्थं कस्याऽपि कारणविशेषस्याभावो वक्तव्यः। स च घटस्य प्रागभावादन्यो न भवितुमर्हति। अपि च मुक्तौ जायमानो दुःखध्वंसो नात्मनोऽभिन्नस्तथा सत्यात्मनो नित्यत्वेन संसारावस्थायाश्च मोक्षावस्थायाश्चाविशेषः स्यात्। तस्मादपि दुःखध्वंसो नामान्यः पदार्थः। अन्येषां च मनआदीनां निरूपणं सविस्तरं न्यायदर्शननिरूपणावसरे कृतमिति नात्रावश्यकतेति विरम्यते।

२

एतद्विषयकं निरूपणं न्यायदर्शने कृतं सर्वमपि अस्य वैशेषिकस्य संमतं। अत्रेदं चिन्त्यं—इच्छादीनामात्मलिंगत्वं न्यायदर्शन उक्तम्। इह तु प्राधान्येन ज्ञानमेव लिंगमिति निरूपितं। तच्च ज्ञानलिंगत्वमात्मनः सर्वतंत्रसंमतमिति बोधयितुं। नैतावतेच्छादीनामात्मलिंगत्वमस्य दर्शनकारस्यासंमतमिति तर्कणीयं। इच्छादीनामात्मविशेषगुणत्वेन स्वीकारादिति ज्ञेयम्।

३

अज्ञानं हि न्यायदर्शनप्रतिपादितरीत्या भावात्मकमात्मगुणविशेष एव, तथापि क्वचिदज्ञानमित्यस्य ज्ञानाभावोऽप्यर्थः। व्याकरणं न

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

जानातीत्यादौ व्याकरणविषयकज्ञानाभाववानयमिति शाब्दबोधस्य संमतत्वात् । न च तत्रापि अप्रमात्मकत्वं कुतो नार्थ इति वाच्यं । तत्र भ्रमत्वस्योपपादयितुमशक्यत्वात् । तत्र हि भ्रमात्मकत्वं ज्ञानस्य, यत्रैकं वस्तु अन्यधर्मेण ज्ञायते । यथा शुक्ताविदं रजतमिति । अत्रेदमिति सामान्यतो ज्ञातं शुक्तिवस्तु रजतत्वेन ज्ञायते । नैवं व्याकरणं न जानातीत्यत्र सामान्यतो ज्ञातं वस्तु । तथापि देहादावात्मबुद्धिर्भ्रम एव । अन्यत् सर्वं पूर्वं न्यायदर्शनोक्तं सविस्तरं निरूपणं वैशेषिकस्याऽपि संमतमिति बोध्यं ।

४

दुःखं हि नामात्मनो गुणः । स चोत्पादविनाशशाली । एतद्विषयकं कृतं सर्वं न्यायदर्शनोक्तं विवरणं वैशेषिकस्य संमतं । ननु दुःखं हि प्राक्तनस्य कर्मणः कार्यमिति शास्त्रसिद्धान्तः । तत्र यदि प्राक्तनं कर्म प्रवाहरूपेण सततं वर्तते तदा कुतोऽस्य नाशः कुतश्च खलु मोक्षः ? उच्यते । शास्त्रप्रामाण्यात् । शास्त्रं हि प्रमाणीभूतमस्य दुःखस्योच्छेदायोपायानुपदिशति । तस्मात् प्रथमतोऽस्य दुःखस्यारंभकं प्राक्तनं कर्मैव नश्यति । ततश्च कारणाभावात् कार्याभावोऽनायासेनैव सिध्यति। तदुक्तमीश्वरगीतासु—

**ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन ।।**

ननु न सुखं नापि दुःखमात्मनः स्वरूपमस्वाभाविकत्वात् । तथाहि । स हि वस्तुनः स्वभावो यो हि तद्वस्तु कदापि न जहाति । यथाऽग्नेरौष्ण्यं । सुखं वा दुःखं वा क्रमेण समुत्पद्य नश्यत इति न ते आत्मनः स्वभावः । सत्यं । आत्मनः स्वभावस्तु आत्मत्वमेव । तच्चाखण्डत्वं । अत एव मुक्तौ सुखदुःखयोरभावेऽपि नात्मत्वस्य हानिः । अत एव मुक्तौ दुःखस्याभावात् पुरुषार्थत्वं, न तु पुनः सुखस्योत्पन्नतयेति अवधारणीयं । अन्यत् सर्वं समानं ।

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



५

इदानीं सकलदुःखस्य नाशकं तत्त्वज्ञानं निरूपणीयं। तच्च वैशेषिकमते धर्मविशेषजनितं षट्पदार्थानां साधर्म्यवैधर्म्यज्ञानात्मकं बोध्यं। तथाहि। सर्वेषां पदार्थानां स्वभावज्ञानं विना तत्त्वज्ञानमशक्यं। न हि तत्त्वज्ञानं नाम किमपि पदार्थान्तरं, किंतु वस्तुयाथार्थ्यज्ञानं। सर्वे जगतीतलस्थाः पदार्थाः किंस्वभावा इति यावद्याथार्थ्येन न ज्ञायते तावत्तत्त्वज्ञानस्योदय एव कुतः। वस्तुस्वभावश्च द्विविधः। अनुयोगिप्रतियोगिरूपः। तत्र घटस्य घटत्वं वा कंबुग्रीवादिमत्त्वं वाऽनुयोगिरूपः। पटभेदश्च प्रतियोगिरूपः। एतदेव शास्त्रे साधर्म्यवैधर्म्यपदाभ्यां निगद्यते। तदेतत् साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां ज्ञानं सर्ववस्तूनामज्ञानिनो जीवस्यासंभवि। संभवे वा तस्य सर्वज्ञत्वापत्तिः। अत आह धर्मविशेषप्रसूतादिति। अयं हि अत्र गूढो भावः—यथा हि योगजसमाधिजन्मा धर्मविशेषः कश्चन जीवे स्वीक्रियते तथोपासनादिक्रियाविशेषाभ्यासजनितो धर्मविशेषः कस्मिंश्चिज्जीवे जायते, तेन स सर्वं पदार्थजातं हस्तामलकवत् पश्यति। साधर्म्यं वैधर्म्यमपि साक्षात्करोति। तेन नष्टाज्ञानः स दुःखं सर्वं जहाति। न कदापि मोहेन संस्पृश्यते। ननु देहादावात्मभ्रम एव दुःखस्य कारणं। तेन तद्विषयकं ज्ञानमेव तस्य निवर्तकं नान्यविषयकं। तथा च साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां कृत्स्नस्य वस्तुजातस्य ज्ञानं क्वोपयुज्यत इति चेत्। अत्रोच्यते। सत्यमेव देह आत्मभ्रम एव दुःखस्य कारणं। तथापि देहस्य पांचभौतिकत्वात् पंचानां भूतानां स्वभावज्ञानं विना न स भ्रमोऽपनेतुं शक्यः। पंचभूतानां ज्ञाने साक्षात्परंपरया वा सर्वपदार्थानां साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां ज्ञानं कारणं। तथाहि। देहे योऽयं रूपादिर्गुणवर्गो भासते तस्य देहेन साकं कः संबंध इति जिज्ञासायां समवायस्य ज्ञानमावश्यकं। याश्चलनवलनरूपाः क्रिया दृश्यन्ते तासां ज्ञानेऽपि समवायस्य ज्ञानमावश्यकं। स्वरूपदर्शनं चैतत्। अनया दिशा सर्वेषां

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


पदार्थानां ज्ञानमावश्यकमिति स्वयमनुसंधेयं । ननु आत्मज्ञानस्य यदि जन्यत्वं तदा तन्नाशे पुनरज्ञानं कुतो नात्मानं बन्धे पातयेदिति चेन्न अज्ञानस्योत्पत्तिकारणाभावात् । न हि अज्ञानस्योत्पत्तेः कारणसामग्री अस्ति । अनादित्वादज्ञानस्य । तच्च ज्ञानेन नाश्यत इत्यपि अनुभवबलेनैव स्वीक्रियते । एकदा विनष्टस्य पुनरनुत्पत्तिश्च । तस्मात् ज्ञानस्य विनाशेऽपि न पुनर्बन्धस्य भीतिः । न च तज्जन्यं कार्यमप्यनित्यं स्यात् । ततश्च तस्य विनाशे मोक्षस्यानित्यत्वं दोष इति वाच्यं । जन्यस्य भावकार्यस्यानित्यत्वं नत्वभावरूपस्य । अज्ञानध्वंसो न भावकार्यं । अभावविशेषत्वात् ध्वंसस्य । किं च ज्ञानेनाज्ञानं नाश्यते । नष्टे चाज्ञाने तन्मूलकं दुःखमपि नश्यति । ततो ज्ञाने नष्टेऽपि दुःखजनकसामग्र्या अज्ञानघटिताया अभावान्न पुनर्दुःखोदयः । एनं दुःखोदयमपुनर्भूतमवलोक्य मोक्षस्य नित्यत्वं व्यपदिशन्ति । ननु ज्ञाने नष्टे आत्मापि त्वन्मतेऽप्रत्यक्षः स्यात्तथा च मोक्षस्य ज्ञानाभावात् कथं स पुरुषार्थ इति चेदुच्यते । यथा हि सुषुप्तौ ज्ञानाभावेऽपि सा पुरुषेणार्थ्यते । न हि लुब्धोऽपि लक्षरूप्यकव्ययेन सुषुप्तिं नेच्छति । तथैव मोक्षोऽपि असंविदितोऽपि पुरुषार्थ एवेति बोध्यं ।

६

निरूपितं तत्त्वज्ञानं । अधुना दुःखध्वंसस्य स्वरूपं निरूप्यते । यद्यपि न्यायदर्शननिरूपणे सर्वं निरूपितमेव तथापि यो हि विशेषस्तमेव निरूपयामि । तत्रैकविंशतिभेदभिन्नं दुःखं हेयं । तच्च शरीरं, षडिन्द्रियाणि, षट् बुद्धयः, षट् विषयाः, सुखं दुःखं च । तत्र शरीरं दुःखायतनत्वाद्दुःखं । शरीरी हि दुःखमनुभवति नाशरीरी । ननु अशरीरस्यात्मनः संभव एव नेति चेन्न शरीरित्वं हि शरीराभिमानशालित्वं । यथा कश्चन ब्राह्मणकुलोत्पन्न आत्मानं ब्राह्मणं मन्यमानोऽन्यान् शूद्रादीन् हीनान् मन्यते । तेऽपि तं द्विषन्तः सततं तन्नाशाय प्रयतन्ते । तेन सर्वमेव

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


दुःखाकुलं भवति। अस्य दुःखस्य कारणं तस्य ब्राह्मणस्य शरीराभिमानः। यदा हि स तत्त्वज्ञानाच्छरीराभिमानं जहाति, तदा न स दुःखमाप्नोतीति शरीरं दुःखमुच्यते। इन्द्रियाणि विषया बुद्धयश्च दुःखसाधनभावात्। एभिर्हि दुःखमनुभवति आत्मा प्रदीप इव वर्तिकया तैलं। सुखं च— दुःखानुषक्तत्वात् दुःखं। ननु सुखं दुःखेनानुषक्तमिति त्वया दुःखमुच्यते, तदेतदसंगतं। न हि जगति तादृशः कोऽपि पदार्थो यश्च हेयेन नानुविद्धः। मत्स्यार्थी ह्यापणं गत्वा सकंटकान् सशल्कान् मत्स्यानादत्ते। तत्र यावदादेयं तावदेवादाय निवर्तते। शालींश्च गृहीत्वा तेभ्यस्तण्डुलानादाय तुषं परित्यजति। नैवं मनुते वृथा भारभूतैस्तुषैरेते तण्डुला अनुविद्धा इति हेया इति। तस्मात् दुःखानुषक्तमिति हेयं सुखमिति कापुरुषविचारो न बुद्धिमतां योग्य इति चेन्न। विषयेषु भुक्तेषु यत् सुखं जायते तस्य क्षणिकत्वात्तदेव क्षणिकत्वमात्मानं दुःखयति। एष नित्यस्यात्मनः स्वभावो यत् सोऽनित्यं न वाञ्छति। वाञ्छति तदा दुःखायते। न चाक्षणिकस्य सुखस्य संभव एव नेति वाच्यं। आत्मनोऽखण्डं यत् स्वरूपं तस्यैव नित्यस्य सुखस्य सत्त्वात्। न च न्यायनये नित्यसुखस्यासत्त्वान्नेदं संगतमिति वाच्यं। दुःखाभावे सुखशब्दस्य प्रयोगादिदिति बोध्यं। तथा चैकविंशतिदुःखध्वंस एव पुरुषार्थ इति ज्ञेयं।

७

निरूपिताः सर्वे प्रमेयादयो विषयाः। संप्रति प्रमाणानि निरूपणीयानि। तत्र वैशेषिकाः प्रत्यक्षं अनुमानं चेति प्रमाणद्वयमेव मन्यन्ते। तेषामयमाशयः। योऽयं शाब्दबोधस्त्वयाऽभ्युपगम्यते सोऽनुमानविषय एव। देवदत्तो ग्रामं गच्छतीति वाक्याद्ग्रामाभिन्नकर्मकगमनानुकूलकृतिमान् देवदत्त इति त्वया शाब्दबोधः स्वीक्रियते। तत्रास्माभिरिदं वाक्यमेतादृशार्थपरं प्रमाणवाक्यत्वादित्यनुमानमेव प्रमाणं मन्यते। न पृथक्

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


पदज्ञानं करणं शाब्दबोधः फलमिति । अत्र च शब्दस्य पृथक्प्रमाणत्वे विरोधो न तु पुनः प्रामाण्ये । वेदादीनां सर्वेषामपि प्रमाणत्वेन स्वीकारात् । इदं तेषां शब्दप्रमाणानंगीकरणं न सम्यक् । यथा हि गृहीतव्याप्तिस्थले साधनदर्शनादनुमितिस्तथैव गृहीतशक्तिस्थले पदज्ञानादपि शाब्दबोधस्यापामरं दृष्टत्वात् । उपमानस्यास्वीकारो यथा कथमपि क्षमार्हः । न हि सादृश्यकरणजन्या प्रतीतिः सर्वेषां विषयः । सादृश्यकरणेनापि गवयो गवयपदवाच्य इति बोधस्यैवोदयात् । गवये शक्तिग्रहार्थं सादृश्यज्ञानस्य कारणत्वस्वीकारेणैवास्योपपत्तौ पृथक्प्रमाणत्वस्वीकाराग्रहो नोचित इति तु योग्यं । तत्र यद्यपि न्यायमते तथा वैशेषिकमते वेदस्य पौरुषेयत्वेऽपि प्रामण्यं निराबाधं, तथापि यथाग्रे श्रुत्यनुसारी तर्क एव प्रमाणमिति सिद्धान्तो मीमांसकादिभिः स्वीकृतो नैवमत्र । अत्र तु तर्कस्यैव प्राधान्यं । तदनुरोधेनैव श्रुत्यादयो नेया इति सिद्धान्तः । अत एवेश्वरासिद्धौ प्रथममनुमानोपन्यासः । अनुमानेनेश्वरं प्रसाध्य तत्र श्रुत्यादयोऽपि प्रमाणमिति पश्चात्तदुपन्यासः। अत एवास्य दर्शनस्य मननशास्त्रत्वं प्रसिद्धं। इदमत्र विशेषतोऽनुसंधेयं । नास्तिकाः खलु तर्कप्राधान्यं स्वीकृत्य तद्विरोधि श्रुत्यादिकं शब्दप्रमाणं सर्वथाऽप्रमाणमेवामन्यन्त । एते तु श्रुत्युक्तमर्थं तर्केणोपपाद्य प्रमाणयन्तीति तेभ्य एषां विशेषः । अत्राऽयं गूढो भावः—योऽयं तर्कः सर्वथा नास्तिकैः प्रमाणत्वेन स्वीक्रियते, स च प्रत्यक्षमूलकः । यत्र चालौकिके विषये प्रत्यक्षस्येन्द्रियसंनिकर्षजन्यस्य संभव एव न, तत्र कुतस्तर्कस्यावसरः । तथा चालौकिकपदार्थबोधकस्य शब्दस्य प्रमाण्यं तर्कमूलकमेवेति नास्तिकानामाग्रहो निर्मूलक एवेति ज्ञेयं ।

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



## ( सांख्यदर्शनस्यावतरणिका )

निरूपिते आस्तिकदर्शनानामादिमे न्यायवैशेषिकदर्शने । यद्यपि अनयोरस्ति केषुचित् सिध्दान्तेषु भेदस्तथापि आत्मज्ञानं मोक्षस्वरूपमज्ञानस्य स्वरूपं च समानं । इदमधुना विचिन्त्यते । अस्य दृश्यमानस्य जगतो यत् खलु निदानं तदनेकं वा एकं वा ? कार्यवैचित्र्यं तु न निर्णायकं । मृत्तिकाया एकत्वेऽपि घटशरावादीनां कार्याणां वैचित्र्यस्य दर्शनात् । न च कपालादिकं कार्यविशेषं हित्वा मृत्तिका नाम नास्ति वस्त्वंतरमित्युक्तमिति वाच्यं । तथा सति मृत्तिकेति सामान्यव्यवहारो न स्यात् । न च स सामान्यनिबंधनः । सामान्यस्यासिद्धत्वात् । एतच्चाग्रे सविस्तरं निरूपयिष्यते । किं च यथा पृथिवीकार्येषु पृथिवीत्वसामान्यं तथा सर्वेष्वपि पदार्थेषु केनापि सामान्येन भवितव्यं। न च तत् पदार्थत्वं । तस्यासिद्धत्वात्। अपि च सामान्यविशेषौ नात्यन्तं भिन्नौ, नाप्यत्यन्तमभिन्नौ, किंतु भिन्नाभिन्नाविति वक्तव्यं । ते विशेषाश्च येनाभिन्नास्तत्खलु एकं सामान्यं वक्तव्यं । तथैवात्मनो ज्ञानं गुणोऽत्यन्तं भिन्नः स्वीकृतः । तच्चानुभवविरुध्दं । न हि ज्ञानस्यात्मनोऽत्यन्तं भेदः घटपटयोरिव। किंतु सहैवोपलंभः। अतो यत् सहोपलभ्यते तत्तदभिन्नमिति व्याप्तेर्ज्ञानस्वरूपमेवात्मा । यदि ज्ञानं नश्वर आत्मगुणस्तदा ज्ञानाभावदशायामात्मनो ज्ञानं न स्यात् । न च न भवत्येवेति वाच्यं । तथा सति नाहमिति सर्वो मन्येत । नैवं कोऽपि मनुते । तस्मादात्मा ज्ञानाभिन्नः । अपि च योऽयं घटो दृश्यते स कपालाभ्यामारभ्यत इति त्वया वक्तव्यं । न च तत्र परिमाणान्तरं दृश्यते । अतः स कपालाभ्यां नात्यन्तं भिन्नः। परं च ' एकेन विज्ञातेन सर्वं विज्ञातं भवति ' इत्युपनिषत्सु श्रूयते । तत्र बंधमोक्षव्यवस्थानुपपत्त्या पुरुषबहुत्वं तु सिद्धमेव । जगदुपादानभूतं यदि जडं तत्त्वमेकं स्वीक्रियते तदाऽनायासेन तद्विकारभूतं जगत् ज्ञातमेव भवेदित्युपपन्नमुपनिषद्वचनमित्यादिसिद्धान्तानां प्रतिपादकं सांख्यमतं प्रस्तूयते ।

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

# नवमं सोपानम्।

## सांख्यदर्शनम् ( अखण्डप्रकाशात्मवादः ) ।

| प्रश्नाः — | उत्तराणि :— |
| --- | --- |
| १ किं ज्ञेयम् ? | १ सविकारा प्रकृतिः । |
| २ कीदृशो ज्ञाता ? | २ अखण्डश्चिद्रूपः । |
| ३ अज्ञानस्य स्वरूपं किं ? | ३ ज्ञानावरको भावविशेषः । |
| ४ दुःखस्य स्वरूपं किं ? | ४ प्रातिकूलभावनाविषयः । |
| ५ ज्ञानस्य स्वरूपं किं ? | ५ प्रकृतिपुरुषान्यताख्यातिरूपः स्वरूपप्रकाशः । |
| ६ दुःखध्वंसस्य (मोक्षस्य) स्वरूपं किं ? | ६ पुरुषवृत्तित्वेन दुःखस्य बाधितत्वं । |
| ७ एतेषु प्रमाणं किं ? | ७ प्रत्यक्षमनुमानं शब्दश्च । |

१

त्रैगुण्यान्वितसत्प्रधानप्रकृतेः कार्यं समस्तं जगत् ।
सच्चिन्निर्गुणभोगभाक्च पुरुषोऽकर्ता न चास्तीश्वरः ॥
मुक्तिर्भेदाविवेकतस्तु अनयोस्तत्कापिलानां मते ।
सांख्यानां त्रितयं प्रमाणमपि तु श्रौतं प्रधानं मतं ॥ १ ॥

यदिदं जगत् दृश्यते तत् सद्वाऽसद्वा ? असदिति चेत् कथं तस्य दृश्यत्वं ? तस्य कारणमपि सद्वाऽसद्वा ? असदिति चेत् कथं ततः सतो दृश्यस्योत्पत्तिः ? सदिति चेत् कथं ततोऽसतोऽस्य जगत उत्पत्तिः ? किमिदं सत्त्वं वाऽसत्त्वं वेत्यादयो विकल्पा विचारयितुर्मनसि प्रादुर्भवन्ति । तत्र सत्त्वं च न जातिविशेषो न वाऽर्थक्रियाकारित्वं । दोषात् । किंतु त्रिकालाबाध्यत्वं । तच्च जगति कथं स्यात् ? सदैव विपरिवर्तते कार्यजातं । अतोऽस्य जगतो यन्मूलकारणं तस्य त्रिकाला-


Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



बाधितत्वं वक्तव्यं । तन्मूलकोऽयं जगति सत्त्वव्यपदेशो भवति । तथा चास्य जगतो यन्मूलकारणं तत् त्रिकालाबाधितमित्युक्तं भवति । तच्चेदं सत्त्वं परमाणूनां नित्यत्वेऽपि नोपपद्यते । परमाणूनां नित्यत्वेऽपि तदारब्धस्य घटस्यासत्त्वात् । न हि घटेन साकं परमाणूनामभेदो येन परमाणुनिष्ठं सत्त्वं घटे भासेत । अतः कार्यस्य सत्त्वोपपत्तये तस्य कारणेन सहाभेदो वाच्यः । न च स परमाणूनां घटेन साकं संभवति । न्यूनपरिमाणत्वात् परमाणूनामधिकपरिमाणत्वात् घटस्य । तस्मात् कार्यापेक्षयाऽधिकपरिमाणशालि कारणं स्वीकर्तव्यमित्यापातितं ।

किंच–यदि सतो मूलकारणादसत् कार्यं जायत इति सिद्धान्तत्वेन स्वीक्रियते तदा कथं कपालाभ्यां घट एव जायते न शशशृंगं । न हि घटोत्पत्तेः प्राक् शशशृंगस्य घटस्य चास्ति कोऽपि विशेषः । असत्त्वाच्चोभयोः । ननु कपालौ घटस्य कारणं न शशशृंगस्येति वैषम्यमिति चेदसति कार्ये किंनिरूपितं कारणत्वं कपालयोः ? तस्मात् सता कारणेनासतः कार्यस्य संबंधः कार्यकारणभावरूपः सुतरां दुर्निरूपः ।

परं च—यद्युत्पत्तेः पूर्वं कार्यं नास्ति तदा कथं घटस्य कपालावेवोपादानं न तन्तवः । पटस्य तन्तव एव न कपालाविति नियमोपपत्तिः ? न हि संभवति वंध्यापुत्रस्येदं राज्यं न चण्डवर्मण इति । अस्ति तु नियमः । तस्माद्युत्पत्तेः पूर्वमपि कार्यं सदेव ।

अपि च–यद्युत्पत्तेः पूर्वं कार्यमसत्तदा सर्वस्माज्जायेत । असत्त्वाविशेषात् । न ह्युत्पत्तेः प्रागसत्त्वं वा सत्त्वं वा निर्धारयितुं शक्यं । सत्त्वाभाव एवासत्त्वमिति मनसि कृत्वाऽसत्त्वमुच्यते ।

उपरिनिवेदितैः सर्वैरपि हेतुभिरिदमनुमीयते, उत्पत्तेः प्रागपि सदेव कार्यमिति । नन्वेवं कारणानां वैय्यर्थ्यापत्तिः । घटार्थी हि घटनिष्पत्त्यर्थं मृत्तिकादण्डचक्रादिकारणजातं संपादयितुं प्रयतते । यदा च स तं घटं निष्पादयितुं प्रयतते तदा स तमसन्तं निश्चित्यैव प्रयतते न सन्तं मत्वा ।

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


अन्धकारे वर्तमानं घटं संपादयितुं न दण्डचक्रादिकारणजातं संपादयति। यदासन्नेवोत्पत्तेः पूर्वं घटस्तदा कारणानां संपादने प्रयोजनं किं? किं चोत्पत्तेः पूर्वं कार्यं सत्तदा जलाहरणकार्यं कस्मान्न भवति ? अभिव्यक्त्य-भावादिति चेत् केयमभिव्यक्तिः । यदि घटस्य धर्मस्तदा सा सती वा न वेति अनवस्था दुस्तरा । अथ यदि घटात्मिकैव न कार्यान्तरमिति तदाऽसदेव कार्यं प्राप्तं । किं च यत्र घटादि कार्यं सदेवांधकारादिना प्रतिबंधकेनाच्छादितं प्रत्यक्षं न भवति तत्र प्रतिबंधकापनयनाय प्रदीप-प्रज्वालनादिकं समनुष्ठीयते । यत्र चासदेव कार्यं तत्र दंडादिकारण-जातं व्याप्रियते । तथा च कारकज्ञापककारणजातं भिन्नं भिन्नं दृष्टं । यदि सदेव कार्यं तदा सर्वं कारणजातं ज्ञापकमेव स्यात् । न किमपि कारकं । न चेष्टापत्तिः । तथा सति घटार्थी प्रदीपं प्रज्वाल्यैव कृतकृत्यो भवेत्। न चैवं दृश्यते । तस्मादसदेव कार्यं । न च तावता शशशृंगतुल्यत्वं तस्य । शशशृंगं तु कदापि न जातमिति तस्य संभव एव न । घटादिकं तु जायमानं दृष्टमिति तस्य कारणत्वं दंडादिषु संभावितमिति चेदत्रोच्यते। अभिव्यक्तिः सती वेति प्रश्नो निरर्थकः। उत्पत्तिः सती वा न वेति प्रश्न-समानत्वात् । तथा चाद्यक्षणसंबंधेत्यादिकं यदुत्पत्तिपदार्थविवेचनं त्वया क्रियेत तस्य मयाऽपि अभिव्यक्तिवादिना स्वीकारात् । अभिव्यक्तिकारण-सामग्र्यपि भिन्नैव । यथा कूपखनकेन जलाभिव्यक्त्यर्थं खनित्रादिकम-पेक्ष्यते न प्रदीपादि । नव्यभिव्यक्त्यर्थं पटादिकमपनीयते न पुनः खनित्रादि । जलाहरणसामर्थ्यं चाभिव्यक्तस्यैव न तिरोहितस्य । न चैता-वता कार्यभेदः । तथा सति गच्छतस्तिष्ठतो देवदत्तस्य भेदप्रसंगः । न चोत्पत्तेः पूर्वं कार्यस्यासत्त्वे शशशृंगाद्भेदः संभवासंभवाभ्यां वारयितुं शक्यः। असतः खलु कौ संभवासंभवौ ? न ह्यसति विशेषे वंध्यासुतस्य संभवो गगनकुसुमस्यासंभव इति वक्तुं शक्यं । तस्मादुत्पत्तेः पूर्वं कार्यं सदेवेति सिद्धं । अत्रेदं हृदयं—कार्यस्य प्रयोजनं न सत्त्वस्य व्यवस्थापनं ।

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



नापि जातिविशेषः किंतु स्वरूपमेव । तच्च त्रिषु कालेष्वपि अनपायि । न हि जातु घटः पटो भवति । नापि पटो घटः । यत् खलु घटस्य त्रिषु कालेष्वपि स्वरूपं न विपरिवर्तते तदेव तस्य सत्त्वं वक्तव्यं । तच्च कारणात्मत्वं विहायान्यन्न संभवि । तथाहि । घटो हि त्रिषु कालेषु जायमानो मृदात्मत्वं न व्यभिचरति । एकमेव मृत्तत्त्वं कार्यकारणरूपाभ्यां व्यपदिश्यते । तत्र मृदो विशेषावस्था जलाहरणसामर्थ्यशालिनी घट-शब्देन व्यपदिश्यते । अन्या सामान्यावस्था कारणपदेन । एतेन कार्यं कारणाद्भिन्नमभिन्नं वेत्यादयो विकल्पा निरस्ताः। भेदाभेदस्यैव सिद्धत्वात् । न च जैनमतप्रवेशः। तैः प्रकारभेदेन वस्तुन एव भेदाभेदयोः स्वीकारात् । एकं घटात्मकमेव वस्तु घटत्वेन सत् पटत्वेनासदिति तेषां सिद्धांतः । नैवमस्माकं । किंतु घटो मृत्तिकेति कस्यापि एकस्यैव वस्तुनः सकल-जगदुपादानभूतस्य सामान्यविशेषावस्थाव्यपदेशः । एतदुक्तं भवति— सर्वस्यापि कार्यस्योपादानभूतमेकं तत्त्वं किमप्यस्तीति । ननु यदि सर्वस्यापि जगतो मूलभूतमेकं द्रव्यमस्ति तदा जगति यद्वैचित्र्यं दृश्यते तत् किंमूलकमिति चेदुच्यते । न्यायमते यथा पृथिवीपरमाणूनामेकविध-त्वेऽपि पाकवशात् कार्येषु रूपरसादीनां वैचित्र्यं, तथैव जगत आरम्भके द्रव्ये समानेऽपि प्राणिनां भोगादृष्टवैचित्र्येण वैचित्र्यमिति वक्तुं शक्यं । न हि कार्यवैचित्र्यं प्रति उपादानकारणवैचित्र्यमेव कारणं न निमित्तकारण-वैचित्र्यमिति नियमः । पार्थिवेषु कार्येषु पाकरूपनिमित्तकारणवैचित्र्यस्यैव कारणत्वोपलब्धेः । तथा च मूलतत्त्वे समानेऽपि प्राणिनां भोगादृष्टैरेव तत्र नानाविधाः परिणामा भवन्तीति सांख्यसिद्धांतः । नन्वेवमपि मूल-भूतस्यैकस्य द्रव्यस्य सिद्धौ तत् कीदृशस्वभावमिति वक्तव्यमेव । येन तत् सर्वेष्वपि कार्येषु अनुगतरूपेण ज्ञातं भवेत् । उच्यते । जगति ये घटपटादयः पदार्थाः समुपलभ्यन्ते तेभ्यः सुखदुःखमोहाः प्रजायन्ते । यथा हि कस्यचिदिभ्यस्य कण्ठे विलसन्तं रत्नहारं वीक्ष्य दरिद्रस्य दुःखं जायते ।

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



चौरस्य मोहो भवति। धनिकस्य तं बिभ्रतः सुखं भवतीति सर्वेषां नोऽनुभवः। तत्र कथं खलु भिन्ना इमे परस्परविरुद्धा भावा एकस्माद्रत्नहाराद्भवन्तीति विचारणीयं। मध्ये च कस्येमे भवन्ति? किं चेतनस्याथवा परिणामिनोऽन्तः-करणस्येति चिन्तनीयम् । तत्र चैतेषां भावानामुत्पादविनाशशालि-तया तेऽपि कस्याप्युत्पादविनाशशालिन एव पदार्थस्य परिणामा भवितुम-र्हन्ति नापरिणामिनश्चेतनस्य । तथा च परिणामिनोऽन्तःकरणस्यैवेमे धर्मा इति सिद्धं । तत्रान्तःकरणमपि तस्यैव कार्यं, यस्यायं रत्नहारः कार्यं । तत्र किं रत्नहारेण सहान्तःकरणस्य संयोगे इमे भावा जायन्ते उत स्वातंत्र्येण । स्वातंत्र्येणेति तु बाधितं । चक्षुषा रत्नहारे दृष्टे इमे भावा जायन्त इत्यनुभवः। ततश्च रत्नहारेण साकमन्तःकरणस्य संबंधे सति रत्नहारस्थानि सुखदुःखमोहकारणानि तथाऽन्तःकरणस्थानि सुख-दुःखमोहकारणानि मिलित्वाऽनुभवपथमायान्ति । योऽसावनुभवस्त इमे भावा इति निर्दुष्टं । एतेन रत्नहारस्यापि सुखदुःखमोहात्मकत्वं सिद्धं । नन्वान्तरा इमे भावा न बाह्या अनुभवविरोधादिति चेदुच्यते । असत्कार्य-वादस्य पूर्वमेव निराकृतत्वान्नासदुत्पद्यते । ततश्चेमे भावाः प्रादुर्भूताः क्वचित् सद्रूपा एव । रत्नहारान्तःकरणयोः समानकारणजन्यत्वादुभ-यत्रापि भवितुमर्हन्ति । न च कूपे जलमन्यच्छरावे तु तत एवोद्धृतं जल-मन्यदिति केनापि दृष्टं । बाह्यान्तरव्यवहारस्तु साक्षिप्रत्यक्षमूलकः। ते च भावाः शुद्धेऽन्तःकरणे वर्तमानाः साक्षिणा प्रकाश्यन्ते । रत्नहारस्य तामसत्वात्तत्र साक्षिप्रतिबिंबस्यास्फुटतया न ते प्रकाशन्ते । नैतावता ते धर्मा न रत्नहारस्य किंत्वन्तःकरणस्यैवेति युक्तं । असति बाधके कार्य-कारणयोः समानगुणकत्वं सर्वतंत्रसंमतं ।

अनेन निरूपणेन मूलकारणं किंस्वरूपमिति कथितकल्पमेव । तथापि स्पष्टं निरूपिते साधारणमतिभिरपि ज्ञातं भवेदिति पुनर्निरू-पयामि । सर्वेषां पदार्थानां सुखदुःखमोहात्मकतया तत्कारणीभूतं द्रव्यं

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



सुखदुःखमोहात्मकमेव । तत्र चैषु त्रिषु गुणेषु कस्यचिदेकस्य न्यूनत्वेनाधिक्येन वा कार्यवैजात्यं भवति। तत्र ये खलु अन्तःकरणप्रमुखा आन्तराः सुखादयः प्रसिद्धाः पदार्थास्तेषु सत्त्वस्याधिक्यं। ये खलु बाह्या रजोवर्धकाः पदार्थास्तेषु रजस आधिक्यं । ये तु पाषाणादयोऽथ च जाड्यस्य वर्धकाः पदार्थास्तेषु तमस आधिक्यमिति फलबलेन कल्पनीयं। तत्रायं संग्रहः ।

मूलप्रकृतिरविकृतिः । महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त ॥
षोडशकस्तु विकारः । न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः ॥१॥

तत्र सर्वेषां दृश्यमानानां पदार्थानां मूलं प्रकृतिः। अत्र प्रकृतिनामधेयं साभिप्रायं। प्रकृतिरेव सर्वं प्रकर्षेण करोति न पुरुषः। इदं मूलं द्रव्यं प्रकृतिरेव न कस्याऽपि विकारभूतं। योऽयं विकारः सोऽनुभूयते । नैवं प्रकृतिरनुभूयते किंतु कार्यदर्शनेनानुमीयते । महदाद्याः सप्त–( महत्–अहंकार–पञ्चतन्मात्राणि ) प्रकृतिविकृतयः । महत्तत्त्वं हि प्रकृतेर्विकारोऽहंकारस्य प्रकृतिः। एवमहंकारो महतो विकारः, पञ्चतन्मात्राणां प्रकृतिः। पञ्चतन्मात्राण्यपि अहंकारस्य विकारः, षोडशविकाराणां प्रकृतिः, षोडशविकाराश्च ( पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि पञ्च कर्मेन्द्रियाणि पञ्च भूतानि मनश्च ) विकारा एव न कस्यापि तत्त्वस्य प्रकृतिरिति बोध्यं । पुरुषस्तु केवलप्रकाशात्मा न कस्याऽपि प्रकृतिर्नापि विकृतिरिति कारिकार्थः ।

ननु सर्वमिदं कारिकयोक्तं पदार्थजातं शब्दप्रामाण्येन स्वीकर्तव्यमुत युक्तितोऽपीदं सिध्यति ? न च शब्दप्रामाण्यस्वीकारेऽपि का हानिरिति वाच्यं । तथा सति सांख्यशास्त्रस्य मननशास्त्रत्वमसिद्धं स्यात् । मननशास्त्राणि हि युक्तिप्रधानानीति सुप्रसिद्धमिति चेत् । सत्यं । यत् खलु मूलं तत्त्वं तस्याऽपि विकार्यत्वे मूलत्वमेव न सिध्येत् । का क्षतिरिति चेत्तथा सत्यनवस्थादोषः। तस्य परिहाराय मूलं-मूलमेव प्रकृतिरूपं स्वीकरणीयं । योऽयं देहादिषु अहंकारो यत्संबंधाच्च विषयेषु ममकारः स सर्वेषां चित्तविकाराणामादिम इति अनुभवसिद्धं । यो हि आत्मान-

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


महंकाराभिन्नं न मनुते न स विषयेषु ममकारं स्थापयितुं शक्नोति । सोऽयमहंकारो महत्पदेनोच्यते । ननु विषयान् वीक्ष्य द्रष्टृत्वमात्मनि मनुते विषयांश्च दृश्यान् । तत् कथं सर्वेषामादिभूतोऽयमहंकार इति चेदुच्यते । सुषुप्तौ हि गाढं सुप्तः सर्वोऽपि जन उत्थाय स्वकार्याणि समारभते । तादृशकार्याणामारंभात् पूर्वं स नियमेनात्मानं द्रष्टारं मनुते । स एवाहंकारः । तत्र विषयाणामभावान्न तन्निरूपितस्य द्रष्टृत्वापरपर्यायस्याहंकारस्य ज्ञानं । एतदुक्तं भवति– अहमाकारवृत्तिरेवाप्रकटितदृश्यविषया महत्तत्त्वपदेन निगद्यते । तदुक्तं श्रुतौ—

एकोऽहं बहुस्यां प्रजायेय इति ।

अत्रैकोऽहमिति वृत्तिर्महत्तत्त्वपदेनोच्यते । अस्माच्च महत्तत्त्वादहंकार उत्पद्यते। अयं चाहंकारो विषयेषु ममकारानुविधायिनी वृत्तिः। एतस्मादेव विषयेषु ममकारा जायन्ते । न च महत्तत्त्वात्तथाऽस्याहंकारस्य को वा विशेषः ? अयं हि विशेषो यत् महत्तत्त्वं केवलं स्वरूपविषयकोऽहंकारः । अयं चाहंकारो विषयेषु ममत्वकारीति । अस्मादहंकारात् पञ्चतन्मात्राणि एकादशेन्द्रियाणि च । तत्राहंकारो ममत्वविधायिनी वृत्तिरित्युक्तं । तच्च ममत्वं कियत्सु पदार्थेष्वित्यपेक्षायामाह–एकादशेन्द्रियाणि पञ्चतन्मात्राणीति। अयं भावः–अहंकारस्त्रिगुणात्मकः–तत्र यः सात्विकोंऽशस्ततो ज्ञानेन्द्रियाणि चक्षुरादीनि मनश्च । यो हि राजसोंऽशस्ततः कर्मेन्द्रियाणि । अवशिष्टात्तामसादंशात् पञ्चतन्मात्राणि । ननु कथमेवं ज्ञायते तामसादंशात् पञ्चतन्मात्राणि राजसात्तु कर्मेन्द्रियाणीति । उच्यते । इह सर्वत्र लोके कार्येण कारणमनुमीयते । यथा हि चिकित्सायां शैत्यस्य दर्शनेन शैत्यकारिणां पदार्थानां सेवनमनुमीयते । औषधयोजनाऽपि तदनुमानं प्रमाणीकृत्यैव क्रियते। तथैवास्मिन् दर्शनशास्त्रेऽपि कार्येण कारणस्यानुमानं क्रियते । तत्र कार्यं यादृशगुणकं दृष्टमसति बाधके कारणमपि तादृशगुणकमेव स्वीक्रियते । तथा च ज्ञानस्य सत्वगुणकार्यतया ज्ञानकारिणी-

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



न्द्रियाणि सत्वकार्यभूतानीति अनुमीयते। एवमेव कर्मेन्द्रियाणां रजोगुणाधिक्यदर्शनात्तत्र रजःकार्यत्वं। पञ्चतन्मात्राणां तमोगुणाधिक्यदर्शनात्तत्कार्यत्वं तेषां निश्चीयते। ननु ज्ञानेन्द्रियाणां चक्षुरादीनां ज्ञानसाधनत्वादिन्द्रियत्वमुचितं। तच्च नैय्यायिकप्रभृतिभिः स्वीकृतमपि। तथापि कर्मेन्द्रियाणां हस्तादीनामिन्द्रियत्वे किं प्रमाणमिति चेदुच्यते—ज्ञानसाधनत्वमिन्द्रियत्वं चेत्तत्केवलं मनस्येव संभवति न चक्षुरादिषु। यदि परंपरया ज्ञानसाधनत्वं तद्दित्युच्यते तदा हस्तादिषु कुतो न? कमपि पदार्थविशेषं दूराद्वीक्ष्य तमादातुमुत्कः पादाभ्यां तस्य समीपं गत्वा हस्तेन तमादत्ते। तत्र साक्षादुपकारित्वं मनस्येव नान्यत्र। चक्षुरादिसमुपकारित्वं तु पादहस्तस्यापि। वस्तुतस्तु इन्द्रस्य शरीरस्वामिनो जीवस्येमानि उपकारीणि इति विग्रहे निर्विवादं हस्तादीनां कर्मेन्द्रियत्वं। किं च ज्ञानसाधनत्वाच्चक्षुरादीनामिन्द्रियत्वमभ्युपगच्छतां नैय्यायिकानां कर्मसाधनेषु हस्तादिषु इन्द्रियत्वास्वीकारे क आग्रहः। ज्ञानमपि चाक्षुषादिकं क्रियाविशेष एव। तस्मादर्धजरतीयस्यानौचित्यात् कर्मेन्द्रियाणामपि स्वीकार आवश्यकः। ननु कानीमानि पञ्चतन्मात्राणि? किं परमाणुस्वरूपाणि आहोस्विद्भिन्नानि। किं चैतेषां स्वीकारे प्रमाणं? उच्यते। न नैय्यायिकस्वीकृतपरमाणुरूपाणीमानि तन्मात्राणि। किंतु तेभ्योऽपि सूक्ष्माणि। तथाहि। परमाणवो हि न्यूनाधिकगुणशालिनः। तत्र पृथिवीपरमाणुषु चत्वारोऽपि विशेषगुणाः सन्ति। अपां परमाणुषु त्रयः, तेजसः परमाणुषु द्वौ, वायोः परमाणुषु एक एव। तत्र यदि चतुर्णामपि समानं सौक्ष्म्यं तदा केषांचिदधिकगुणशालित्वं केषांचिन्न्यूनगुणशालित्वं कथं स्यात्। तन्मात्राणां तु प्रत्यक्षदृश्यमानभूतकारणत्वात् परसूक्ष्मत्वं योग्यं। एतेन नैय्यायिकसिद्धान्तस्वीकृताः परमाणव एव पञ्चतन्मात्राणीति केषांचिद्भ्रमो निरस्तो वेदितव्यः। तत्र प्रत्यक्षं दृष्टेषु पञ्चसु महाभूतेषु पञ्चानामपि

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


गुणानामुपलंभात्तत्रापि न्यूनाधिक्यस्यानुभवादनुभवानुरोधेन तत्प्राधान्यं निधाय व्यपदेशाः क्रियन्ते । तथाहि । आकाशे शब्दस्य प्राधान्येन समुपलंभात्तत्र शब्दतन्मात्रस्याधिकोंऽशः । अन्येषां चतुर्णां न्यूना अंशाः । तेन भूयस्त्वादाकाशपदेन तस्य भूतस्य व्यपदेशः । एवमेव सर्वत्रावशिष्टेषु बोध्यं । ननु कथं खलु आकाशस्य महाभूतस्य वा तन्मात्ररूपस्य वा जन्यत्वं । नैय्यायिका हि शब्दगुणकमाकाशं नित्यं स्वीकुर्वन्तीति चेदुच्यते । यथा हि घटादीनां कार्यत्वं मृद्विकारतया चक्षुरादीन्द्रियग्राह्यत्वेन वा स्वीक्रियते तथैव तन्मात्ररूपस्य वा महाभूतरूपस्य वाऽऽकाशस्य कार्यत्वमहंकारविकारतया श्रोत्रेन्द्रियग्राह्यतयाऽवश्यं स्वीकर्तव्यं । न हि अस्मन्मते न्यायमत इव कर्णशष्कुल्यवच्छिन्नं नभः श्रोत्रमिति श्रोत्रस्य लक्षणं । किंतु चक्षुरादिवदिन्द्रियविशेषरूपत्वमेव । न चास्ति विशेषो येन कश्चन विशेषः श्रोत्रेन्द्रिये स्यात् । अपि चास्मन्मते केवलं प्रकृतिरेवाविकृतिरन्यत् सर्वं विकृतिरेव । यद्याकाशं नित्यं स्यात्तदा कथं खलु तस्य विकार्यत्वं । एवं स्थिते श्रुतिरपि एकविज्ञानेन सर्वविज्ञानं कथयन्ती सार्था भवति । न हि विकाराणां प्रकृतितः पृथगवस्थानं कल्पयितुं शक्यं । नन्वेवमाकाशस्याऽपि उत्पादविनाशौ स्यातां? भ्रान्तोऽसि । न ह्यस्मन्मते न्यायमत इव कस्याऽपि वस्तुन उत्पादविनाशौ किंत्वाविर्भावतिरोभावावेव । सर्वस्यैव वस्तुनः सत्त्वेन त्रिकालाबाध्यत्वस्य स्वीकारात् । आविर्भावतिरोभावौ तु भवत एव । ननु आकाशस्य प्रादुर्भावात् पूर्वं महत्तत्त्वादीनां विकाराणामुत्पत्तिरेव कथं? अवकाशरूपस्याकाशस्याभावादिति चेन्न । भौतिककार्याणामुत्पत्तौ अवकाशस्यास्यावश्यकता । न त्वभौतिकेषु कार्येषु । महत्तत्त्वमारभ्येन्द्रियपर्यन्तानि कार्याण्यभौतिकानि । अद्यापि भूतानामनुत्पत्तेः । न च महदादीनां कार्यत्वमेव नेति वाच्यं । अर्थक्रियाविशेषकारित्वस्य कार्यत्वस्य तत्राप्यविशेषात् । न हि भौतिकमेवार्थक्रियाविशेषं करोति नाभौतिकमिति राजाज्ञा । प्रत्युत भौतिकसृष्टेरभौतिकसृष्टिपूर्वकत्वादभौतिक-


Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



सृष्टिरेव विशेषेण कार्यं करोतीत्यनुभवः। न हि कुंभकारः स्वकल्पनामनुसृत्य यथा घटं निर्माति नैवं घटः स्वतंत्रः कुंभकारमनसि कल्पनाजालं जनयतीति दृष्टं। तस्मादभौतिकस्याऽपि सृष्टित्वमस्त्येव। तत्र भूतसृष्टेः पूर्वमभौतिकसृष्टिरिति न्याय्यं। लोकेऽपि अनुभवः—कुंभकारो हि कुंभं विरिरचयिषुः प्रथमं स्वमनसि सर्वं संकल्प्य मृत्तिकायां तादृशमेवाकारं कल्पयति। तेनाभौतिकी सृष्टिः पूर्वमिति युक्तं भवति। ननु जडस्य कुतः कल्पनाशक्तिरिति चेन्न। केवलस्य मूलत्रिगुणस्य न कल्पनाशक्तिः किंतु तस्य स्वभावः। अग्रे चादृष्टसहितस्य त्रिगुणस्य क्रमेण परिणामा इति न किंचिदनुपपन्नं। ननु सत्वरजस्तमोगुणाः परस्परं विरुद्धधर्माणः कथमेकं कार्यं कुर्युरिति चेन्न। यथा हि परस्परद्रोहशीला अपि सिंहव्याघ्रादय एकेन केनापि प्रबलेनाधिष्ठिताः स्वविरोधं विहायानुकूला इव कार्यं कुर्वन्ति तथैव प्रबलेन भोक्त्रदृष्टेनाधिष्ठिता एते त्रिगुणा ऐकरूप्येण वर्तमानाः स्वस्वकार्याणि कुर्वन्ति। अत एव यदा तददृष्टं भोगेन क्षीयते तदा सर्वे त्रिगुणा विभिन्नाः कार्यविमुखा जायन्ते। तस्माददृष्टाश्रिता एते त्रयो गुणाः कारणमिति सिद्धं। इदमेव विषयीकृत्य सामान्यरूपेण सर्वत्र व्यवहारो जायते। यथा घटः सन् पटः सन्नित्यादिषु सत्ताव्यवहारोऽनुस्यूतो दृश्यते। विशेषाश्च घटपटादयो व्यावर्तमानाः प्रत्यक्षमुपलभ्यन्ते। तत्र कः सत्तापदार्थ इदं त्रिगुणं विहायान्यो भवितुमर्हति? यथा हि घटशरावादिषु मृत्तिकेति सामान्यं तथैव सर्वेषु कार्येषु एकं त्रिगुणात्मकमेव सामान्यं स्वीकर्तव्यं। ननु अचेतना घटादयो न जलाहरणादिकं कार्यं कुर्वन्तो दृश्यन्ते। तस्मात् कथं जडस्य कर्तृत्वमिति चेदुच्यते। कर्तृत्वं तु कार्यानुकूलकृतिमत्त्वं। तच्च निर्गुणे पुरुषे चेतने न संभवति। किंतु अन्तःकरणे। तच्च जडमेवेति जडस्य कर्तृत्वं नासंभवि। वस्तुतः सांख्यमते कर्तृत्वं कार्यसिद्धयनुकूलपरिणममानत्वं। तत्र परिणममानत्वं तु गुणानां स्वभावतः सिद्धं। कार्यसिध्दयनुकूलत्वं चादृष्टेन विहितमिति न कापि अनुपपत्तिः।

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


यथा हि घूणाक्षरन्यायेन संजाते आकारे निक्षिप्तं तप्तं सुवर्णं तमेवाकारं बिभर्ति, तथैवादृष्टेन विहिते आकारे त्रिगुणं प्रविश्य तादृशभोगानुकूलमेवाकारं बिभर्ति । तत्र का वा चेतनस्यावश्यकता । एतेनेश्वरस्वीकारोऽपि निराकृतो विज्ञेयः । अदृष्टं विहायेश्वरः कार्यं कर्तुं न प्रभवति, वैषम्यनैर्घृण्यदोषापातात् । तथा चावश्यकादृष्टेनैव सर्वसामंजस्ये ईश्वरकल्पना निरर्थिकेति सांख्यसिद्धान्तः । अतो भोक्तॄणामदृष्टेनाधिष्ठितं प्रधानमेव तत्तदाकारपरिणतं पुरुषस्य भोगं साधयतीति सिद्धं जगदुपादानमेकं तत्त्वं । तच्च प्रकृतिरिति । तच्च परममूलत्वादेव स्वतंत्रं । यदि परतंत्रं स्यान्नूनं विकारो भवेत् । नैवं संभवति । अतः स्वतंत्रं तदित्येव न्याय्यमिति बोध्यं । न च जगदुपादानं परमाणव इति मते एकविज्ञानेन सर्वविज्ञानस्य संभवोऽस्ति । अनेकत्वात्परमाणूनां । न च परमाणुद्वयसंयोगोऽपि संभवति । निरवयवत्वात्तेषां । तस्मादारंभवादोऽविचाररमणीय इति न तत्रादरः सतामिति बोध्यं ।

२

निरूपितं प्रमेयम् । प्रमाता निरूपणीयः । तत्रात्मनो लक्षणं न्यायनये इच्छाद्वेषसुखदुःखादिगुणाश्रयत्वं यदुक्तं तन्न निर्दुष्टं । तथाहि । पदार्थे चक्षुरादिभिरिन्द्रियैः साक्षात्कृते तद्विषयिणीं सुखदानयोग्यतां स्मृत्वेच्छा जायते । यथा दूराच्छर्कराखण्डं साक्षात्कुर्वन् बालकस्तन्निष्ठं समनुभूतपूर्वं माधुर्यं स्मृत्वा पुनस्तस्यादानाय प्रवर्तते इति सर्वेषां नः प्रत्यक्षं । तत्रेच्छादयः सर्वे गुणा उत्पादविनाशशालिन इत्यपि प्रत्यक्षमेव । तत्र नित्यस्याखण्डस्यात्मनो गुणा अनित्याः कथमिति विचारास्पदं । सर्वत्र गुणगुणिभावस्थले सांख्यवादे तादात्म्यमंगीक्रियत इति पूर्वमेव निरूपितं । न हि घटरूपयोः समवायः किंतु तादात्म्यमेव । तथा च तयोरभेदात्तदन्यतरनाशे तेन रूपेण तस्य नाश आवश्यकः । घटरूपयोर्मध्ये घटस्य वा रूपस्य वा नाशे परिणाम आवश्यकः । तथा च पूर्वरूपे

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



नष्टे नूतने जाते सोऽयं घटो न वेति संशयो दुर्वारः। एवं स्थिते यदि इच्छादिगुणवत्त्वमात्मनि स्यात्तदा तदाश्रयस्यात्मनो गुणनाशे परिणामापत्तिर्गले पतिता। न च का हानिरिति वाच्यं। तथा सति आश्रयस्यात्मनः संशयविषयत्वापत्तिर्दुर्वारा। न चात्मनः संदेहविषयत्वं कदापि कस्याऽपि अनुभूतिविषयः। महच्चैतदाश्चर्यं यत् सर्वपदार्थेषु संदेहविषयतामापन्नेष्वपि न कदाचिदात्मा संदेहविषयः। तस्मान्नायं कार्यरूपेणाऽपि परिणामी। ननु कोऽयं कार्यरूपेण परिणामः ? यदि कार्यं, तदाऽऽरंभवादस्वीकर्तॄणां नैय्यायिकानां मतमनुसृत्य तस्यातिरिक्तत्वं स्वीकर्तव्यं। तथा च कार्यरूपेण कारणस्य परिणाम इति रिक्तं वचः। यदि च कारणमेव, तदा प्रत्यक्षबाधः। न हि घटं पश्यन् घटेन जलमाहरन् हालिकोऽपि घटं मृत्तिकामेवावगच्छति। तस्मान्न कार्यरूपेण कारणस्य परिणाम इति वाक्यस्यार्थं जानीमह इति चेन्न। पदार्थे हि सर्वत्र सामान्यविशेषभावौ सर्वैरेव ज्ञायेते। तथाहि। घटं वाञ्छन् मानवः प्रथमं मृत्तिकामानयति। कश्च घटेन साकं मृत्तिकायाः संबंध इति प्रथमं जिज्ञासामहे। स हि जानाति नूनं मृत्तिकया घटो भवतीति। तत्र विचार्यमाणे सामान्यरूपं मृत्संज्ञं समानीय तद्विशेषरूपं घटसंज्ञं जनयति। येन च स जलमाहृत्य पिपासां शमयितुं प्रभवति। तत्र योऽयं सामान्याकारो निराकारः स मृत्संज्ञया व्यपदिश्यते। स एव सामान्याकारः कारणपदेन शास्त्रे व्यपदिश्यते। अथ च योऽयं विशेषाकारः साकारः, स घटपदेन व्यपदिश्यमानोऽर्थक्रियां कुरुते। स एव शास्त्रे कार्यशब्देन निगद्यते। एतदुक्तं भवति। याविमौ सामान्यविशेषौ तावेव शास्त्रे कारणकार्यशब्दाभ्यां व्यवह्रियेते। तावेव च मृत्तिकाघटपदभाजौ भवतः। सर्वेषां कार्याणामन्तिमं यत् सामान्यं रूपं तदेकं त्रिगुणात्मकं तदेव कारणं। तद्भिन्नं सर्वं कार्यजातं विशेषरूपमेव। एतयोश्च सामान्यविशेषयोस्तादात्म्यमेव। एवं स्थिते यदि सुखदुःखेच्छादीनामात्मगुणत्वं तदा तदुपादान-

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


मात्मैव स्यात्, तथा च कार्यकारणयोस्तादात्म्यात्तेषां नाश आत्मनाशापत्तिर्दुर्वारा । न चात्मनाशोऽनुभवविरोधादप्रामाणिक इति वाच्यं । यथा चानुभवविरोधादात्मनाशो न स्वीक्रियत एवमेव तस्य परिणामित्वमपि मृत्तिकावदप्रामाणिकमेव । न हि यथा घटशरावोदंचनादिभिन्नेषु कार्येषु परिणता मृत्तिका दृश्यते तथाऽऽत्मा । आत्मा हि सर्वदा स्वरूपेणैकेन चैतन्येनैवानुभूतो भवति । तस्मादात्मा न परिणामी भवितुमर्हति । प्रयोगश्च—आत्मा न परिणामी सदैवैकरूपेणानुभूतत्वात् । यन्नैवं तन्नैवं यथा मृत्तिकादीति व्यतिरेकी दृष्टान्तः । न चासिद्धिः । सुखदुःखादिषु सर्वत्र प्रकाशमानत्वेनानुभूतत्वात् । ननु यद्येते नात्मनो गुणास्तदा कस्यैते भवेयुरिति चेदुच्यते । एते हि परिणामशीलाः परिणामिन एव कस्यचित् पदार्थस्य भवितुमर्हन्ति । सर्वत्र कार्येषु त्रिगुणात्मकं प्रधानशब्दव्यपदेश्यमेव तत्त्वं परिणामाश्रय इति पूर्वमेव निरूपितं । तच्च न साक्षात्तदाश्रयो भवति किंतु कार्यद्वारा । तच्च कार्यमन्तःकरणं । तस्यान्तःकरणस्यैवैते सुखदुःखादयो गुणा नात्मनः । प्रयोगश्च—अहं सुखीत्यादयोऽनुभवा अहंप्रत्ययसामानाधिकरण्येन भासमाना अन्तःकरणस्यैव धर्माः । सर्वत्र तद्रूपसामानाधिकरण्येनैव भासमानत्वात् । यद्धि यत्सामानाधिकरण्येन भासते स तस्यैव धर्मो यथा मृत्सामानाधिकरण्येन भासमानो घटः । न चात्माऽपि सुखदुःखादिष्वनुस्यूतत्वेन भासत इति व्यभिचार इति वाच्यं । यथा तेषु तेषु भिन्नभिन्नरूपशालिषु काचगोलकेषु दीपप्रकाशोऽनुस्यूतत्वेन भासते न परिणामितया तथैव सुखदुःखादिषु चैतन्यमनुस्यूतत्वेन भासते न परिणामितयेति न व्यभिचार इति बोध्यं । सुखादीनामन्तःकरणधर्मत्वे श्रुतिरपि अनुकूलैव । तद्यथा—कामः संकल्पो विचिकित्सा श्रद्धाऽश्रद्धा धृतिरधृतिर्ह्रीर्धीर्भीरेतत् सर्वं मन एवेति । अत एव कृतिरपि नात्मधर्मः किंत्वन्तःकरणस्यैव । ननु कृतेरात्मधर्मत्वे का हानिरिति चेत् कृतेर्गुणतया तन्नाशे पुनरपि तेन रूपेणात्मनाशो दुर्वारः स्यात् । इदमत्राकूतं, जानाति, इच्छति, यतत इति क्रमः सुप्रसिद्धः । तत्र

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



सविषयकज्ञानं जन्यमन्तःकरणस्यैव धर्मः। प्रयोगश्च—सविषयकं जन्यज्ञानं कार्यरूपं कस्यचित् परिणामिन एव धर्मः जन्यत्वात्। यज्जन्यं तत् कस्याऽपि परिणामिन एव कार्यमिति मृत्तिकाघटादिषु सुलभो व्याप्तिग्रहः। एवं स्थिते तत्सामानाधिकरण्येनानुभूयमाना इच्छायत्नादयस्तस्यैव कार्यत्वेन तदाश्रया भवितुमर्हन्ति। इति। ननु सविषयं ज्ञानमपि यद्यन्तःकरणस्यैव धर्मस्तदा विज्ञानवादात् सांख्यवादस्य को वा विशेषः। ननु पुरुषस्य स्वतंत्रस्य स्वीकारो विशेष इति चेन्न। तथा सति पुरुषे प्रमाणाभावात् स न सिध्येदेव। अन्तःकरणस्यैव स्वयंप्रकाशरूपत्वस्वीकारेण सामंजस्ये पुरुषस्य स्वीकार-कल्पना व्यर्थेति चेन्न। अन्तःकरणस्य स्वयंप्रकाशत्वस्वीकारो न युक्तः। तथाहि। अन्तःकरणं स्वयं न प्रकाशते किंतु परेण प्रकाश्यते जन्यत्वात्। यज्जन्यते तत् परप्रकाश्यमिति सुलभो घटादिषु व्याप्तिग्रहः। न च सात्विकत्वमुपाधिः। अप्रयोजकत्वात्। प्रतिक्षणपरिणामशा-लिनो वृत्तिपदवाच्या ज्ञानादयो यदि स्वयंप्रकाशा नास्त्येभ्योऽतिरिक्तः कश्चन नित्यः पदार्थस्तदा कथमेषां जन्यानां सुखदुःखादीनामुत्पत्तिस्तथा नाशश्च ज्ञातुं शक्यः। न हि प्रज्वलिष्यतः प्रशान्तस्य वा प्रदीपस्य प्रकाशो घटं दर्शयितुं प्रभवति किंतु सतः। ज्ञायन्ते चैषामुत्पत्त्यादयः सर्वैः। साक्षात्क्रियन्ते च कामादीनामुत्पत्त्याद्या भावविकाराः। तस्मान्न ते स्वयंप्रकाशाः। किंच कार्यरूपा अपि अन्तःकरणादयो यदि स्वयंप्रकाशास्तदा घटादयः कस्मान्न स्वयंप्रकाशा भवेयुः। न च तामसत्वं घटादीनाम-प्रकाशरूपत्वे प्रयोजकमिति वाच्यं। मूलमेकं कारणं प्रधानमिति स्वीकारात्। न च जगतः कारणं नाना, किंत्वेकमिति प्रधानवादे सिद्धा-न्तितं। तस्माद्यथैव घटादयोऽप्रकाशाः, एवमेवान्तःकरणादयोऽन्तःकरणधर्मा वाऽप्रकाशा इति बोध्यं। यथा हि सुखदुःखादीनामुत्पादविनाशशालित्वे तदधिष्ठानत्वेनात्मा नामैको नित्यः पदार्थो नैय्यायिकैः स्वीकृतः, तथैव तेषु तेषु कामादिषु प्रकाशत्वेनानुभूतः पुरुष इति तत्त्वान्तरं सांख्यैः

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


स्वीक्रियते । प्रयोगश्च–सुखादयो भावा न स्वयंप्रकाशा विस्मृतिविषयत्वात् घटवत् । यन्नैवं तन्नैवं । यथा चैतन्यं । चैतन्यं हि न कदाऽपि विस्मर्यते । विस्मृतेरपि वृत्तिरूपत्वेन परप्रकाश्यत्वमावश्यकं । यच्च विस्मृतेः प्रकाशकं तस्यैव चैतन्यरूपत्वात् । ननु किमिदं चैतन्यं नाम ? किं गुणविशेषोऽथवा द्रव्यविशेष उत तत्त्वान्तरं ? नाद्यः–तथा सति आत्मनस्ततो भेदः स्यात् । अत एव न द्वितीयः, तत एव न तृतीयः । किंतु ज्ञानमेव । तच्चात्मनि समवायेन वर्तत इति आत्मा चेतन उच्यत इति चेन्न । ज्ञानाश्रयत्वं न चेतनत्वं किंतु ज्ञानस्वरूपत्वं । द्विविधं हि ज्ञानं । विषयाकारशालि प्रकाशकं च । तत्राद्यं शास्त्रे वृत्तिपदेनोच्यते । तच्चोत्पादविनाशशालि । द्वितीयं तु नित्यं सर्वदा प्रकाशरूपं । यस्य कृपया सुषुप्तावपि 'न किंचिदवेदिषम्' इति वृत्त्यभावो ज्ञायते । इदं ज्ञानमेव सांख्यशास्त्रे प्रमाता चेतनः पुरुष इति शब्दैर्व्य-पदिश्यते । ननु नित्यस्य ज्ञानस्य सत्त्वे प्रमाणं किमिति चेदिदमेव–यत् वृत्तेरुत्पत्तिलयौ ज्ञायेते । न हि वृत्तेरुत्पत्तिकाले तथा विलयकाले सा वृत्तिरस्ति । नापि वृत्त्यन्तरं । तस्माद्वृत्तेरुत्पादविलयौ येन ज्ञायेते तदेव नित्यं ज्ञानं, तदेव च चैतन्यपदेनोच्यते । एतेन स्वयंप्रकाशा वृत्तिरेवा-त्मेति निरस्तं । अनित्यज्ञानाश्रय आत्मेत्यपि । तथा च वृत्तिषु ज्ञानव्यप-देशो भाक्त इति बोध्यं । नन्वेवमहं घटं जानामीति ज्ञानं कथमिति चेदुच्यते–अहमाकारा तथा घटाकारा वृत्तिर्जायते । तत्र प्रकाशार्थं चैतन्यस्य प्रतिबिंबं पतति । तेन सा वृत्तिः प्रकाशिता भवति । प्रकाशे च तथा वृत्तौ च भेदाग्रहादेकज्ञानाभासः । वस्तुतस्तु अहमाकारा तथा विषयाकारा वृत्तिर्भिन्नैवेति बोध्यं । किं च यदि वृत्तिज्ञानेनैव जन्येना-त्मनो ज्ञानं तथाऽऽत्मनि चेतनत्वव्यपदेशस्तदा नष्टे तस्मिन् जन्यज्ञाने आत्मनो ज्ञानाभावान्नाहमस्मीति प्रतीतिर्जायेत । तथैव नाहं चेतन इत्यपि प्रतीतिः संभवेत् । न चेदमनुभूतं । तस्मात् नित्यज्ञानस्वरूपत्वे-नैवात्मनश्चैतन्यं नान्यथेति ज्ञेयं । ननु चैतन्यरूपत्वे आत्मनो व्याप-

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


कत्वेन सर्वदा ज्ञानोत्पत्तिः स्यात्। तथा च सर्वे सर्वज्ञा भवेयुः। न चेदमनुभवगोचरः। तस्माच्चैतन्याश्रयत्वमेवात्मनो वक्तुं युक्तं। वृत्तेरुदयास्तौ चानुमानेन ज्ञायेते न प्रत्यक्षेण। तदानीं प्रत्यक्षसामग्र्यभावात्। सुषुप्तावपि वृत्त्यभावो न प्रत्यक्षेण किंत्वनुमानेन। तच्चानुमानमित्थं। यदि तत्र ज्ञानमभविष्यत्तर्हि घटादिज्ञानवत् व्यज्ञास्यत, न च ज्ञायते, तस्मान्नास्तीति। तथा चानेनैव सर्वसामंजस्ये चैतन्यस्वरूपमात्मनोऽयुक्तमिति चेन्न। ज्ञाताऽऽत्मा नित्य इति नैय्यायिकैः स्वीकृतं। तत्र जिज्ञास्यते। तत्र यदि ज्ञानमनित्यं, नूनमात्माऽपि कुतो नानित्यः? भोगापवर्गयोर्भिन्नकर्तृकत्वे कृतविप्रणाशाकृताभ्यागमप्रसंगं वारयितुमात्मनि नित्यत्वमंगीकर्तव्यमिति चेत्तथैव ज्ञाननित्यत्वमपि स्वीकार्यं। तथाहि। ज्ञानस्यानित्यत्वे आत्मन एव सिध्द्यभावात् कुतः खलु कृतविप्रणाशाकृताभ्यागमदोषः। मानाधीना मेयसिद्धिरिति न्यायात्। तत्र मानेषु प्रत्यक्षानुमानोपमानागमरूपेषु जन्येषु ज्ञानमिति सार्वत्रिकोऽनुभूयमानः पदार्थोऽंगीकर्तव्यः। न च सामान्येन स व्यवहार उपपादयितुं शक्यः। सामान्यस्य जातिरूपस्य पदार्थान्तरस्यानंगीकारात्। सर्वेषु विशेषेषु यत् खलु सामान्यं तत्त्वं, तदेव विषयीकृत्यानुगतप्रतीत्युपपत्तौ न सामान्यस्यातिरिक्तस्य कल्पनाया आवश्यकत्वं। तथा च ज्ञानमेव स्वयंप्रकाशरूपमेकं सामान्यमेतेषु कल्पनीयं। किं च निर्विकल्पादुत्पन्नस्य सविकल्पस्य ज्ञानमनुव्यवसायेन भवतीति नैय्यायिका वदन्ति। तत्र जिज्ञास्यते-अनुव्यवसायस्याऽपि सविकल्पवज्जन्यतया तस्य ज्ञानं कुतो जायत इति वक्तव्यं। तस्याप्यनुव्यवसायान्तरेणेति चेत्तथा सति दुर्वाराऽनवस्था। न चानुव्यवसायस्य प्रत्यक्षं भवत्येव। तच्च केन भवतीति जिज्ञासैव नोदेतीति व्यर्थोऽनवस्थाकल्पनेति वाच्यं। विचारे प्रवृत्ते जिज्ञासा नोदेतीति कथनं निरर्थकं। यदि जिज्ञासा नोदेतीति विचारो न क्रियते, तदा संसारे कस्य वात्मनो जिज्ञासा जायत इति तद्विचारोऽपि निरर्थकः स्यात्। तस्मादनुव्यवसायस्य प्रत्यक्षं केनेति

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

प्रश्नो न निरर्थकः । अगत्या तस्य स्वयंप्रकाशत्वे स्वीकृते नित्यत्वं गले पतितमेव । स्वप्रकाशत्वं चेतरानधीनसत्ताकत्वं, स्वसत्तायामितरानपेक्षत्वं वा वक्तव्यं । तच्च जन्यस्य ज्ञानस्य न संभवति । कार्यस्य कारणसामग्र्यधीनत्वं सुप्रतीतमेव । अतः स्वप्रकाशत्वं ज्ञानस्य स्वीकुर्वद्भिः सर्वैरपि तस्य नित्यत्वं स्वीकरणीयमेव । ननु ज्ञानस्य स्वयंप्रकाशस्य नित्यत्वे सर्वदा विषयभानं कुतो नेति चेदुच्यते । यद्यपि ज्ञानस्वरूप आत्मनि अयं प्रकाशो नित्यस्तथापि विषयाणां प्रकाशे संबंधमपेक्षत एव । तथाहि । घटः कदाचित् ज्ञायते कदाचिन्नेति सर्वेषामनुभवः । तादृशमनुभवं प्रमाणीकृत्य प्रकाशस्य घटेन साकं संबंधः कादाचित्कः कल्पनीयः । स च संबंधः प्रकाशग्राहिण एव वस्तुनः कल्पनीयः । प्रकाशाग्राहिणो वस्तुनः संबंधकल्पने प्रयोजनस्यासिद्धेः । तत्र सुखदुःखादय आन्तराः पदार्थाः सदा ज्ञायन्ते न बाह्या घटादयः। किमत्र कारणं? विचार्यमाणे च घटादीनां तामसत्वं सुखदुःखादीनां सात्विकत्वं विहाय नान्यत् किमपि सिध्यति । तथा च तामसस्य घटस्य प्रकाशार्थमन्तःकरणेन तस्य संबंधो वाच्यः । स एव संबंधो वृत्तिः । तथा च चक्षुःसंयुक्ते घटेऽन्तःकरणसंबद्धे सति तेन द्वारा प्रकाशसंबंधात् घटस्य प्रकाशो भवति । अपगते संबंधे पुनर्घटोऽप्रकाश एव । एतदुक्तं भवति । अयं प्रकाशः स्वरूपे नित्यः, अन्तःकरणधर्मेषु नित्यसांनिध्यात् सदा संबद्धः, घटादिषु बाह्येषु तु वृत्तिसंबंधात् संबद्ध इति न किंचिदनुपपन्नं । इदमेव प्रमातुः स्वरूपं नान्यत् । तत्र बौद्धानां मते यत् क्षणिकविज्ञानरूपत्वं प्रमातुः स्वरूपं, तथा मध्यमपरिमाणत्वं जैनानां मते, तन्निराकृतमेव । नित्यात्मवादिनां नैय्यायिकानां मतेऽपि दूषणं दत्तं। इदानीं सुखात्मवादिनो निराकर्तव्याः । तत्रेदमुच्यते । यत् खलु प्रमातुः स्वरूपं तच्चैतन्याखण्डरूपमुपलब्धं न पुनः प्रमातुः सुखरूपत्वं । तथा सति दुःखस्यानुपलब्धिप्रसंगः। न हि सुखस्योपलब्धौ दुःखोपलब्धेः संभवः । सुखदुःखयोः परस्परविरोधात् । तत्र यथा दुःख-


Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

स्वरूपत्वं प्रमातुरनुभवविरुद्धं तथैव सुखस्वरूपत्वं। न हि दुःखस्वरूपत्वं यथाऽनुभवविरुद्धं तथा सुखस्वरूपत्वं नेति अनुभवः। तस्मात् सुखरूपत्वमात्मनः कल्पयितुमशक्यं। तथा च सांख्यमते नित्यचैतन्यमेव प्रमातुः स्वरूपं। तच्च व्यापकमपि प्रतिदेहं भिन्नं भिन्नमिति नाना। अन्यथा चैत्रस्यानुभवे मैत्रस्य स्मरणापत्तिर्दुर्वारा स्यात्। अतो नित्यचैतन्यस्वरूपः प्रमाता प्रतिशरीरं भिन्नो विभुरिति बोध्यं।

३

निरूपितं प्रमेयं प्रमातुश्च स्वरूपमपि। अधुनाऽज्ञानस्य स्वरूपं वक्तव्यं। तत एव दुःखाख्यस्य बंधस्य संभवः। तत्राज्ञानं नाम न ज्ञानाभावः किंतु ज्ञानविरोधि भावान्तरमिति स्वीकर्तव्यमेव। न हि यथा पाषाणो जानातीत्यस्य वाक्यस्याप्रामाण्यं तथैव पाषाणो न जानातीति वाक्यस्याप्रामाण्यं न। तस्माद्यथा ज्ञानेन चैतन्यस्य संबंधोऽपेक्ष्यते तथैवाज्ञानेनाऽपि। तस्मान्न खलु अज्ञानं नाम ज्ञानाभावः। किंतु यथा ज्ञानं सत्वधर्मस्तथैवाज्ञानं नाम तमोधर्मः। तत्र यथा सत्कर्मणामाचरणात् सत्वे वृद्धिं गते ज्ञानोत्कर्षः शुद्धचित्तवृत्तिरूपः संभवति, एवमेव पापकर्मणां समाचरणात्तमसो वृद्धौ अज्ञानं वर्धते। एतदुक्तं भवति। यत् खलु अज्ञानं बंधकारणमुच्यते तन्न पुरुषधर्मः, नापि ज्ञानं वृत्तिरूपं पुरुषधर्मः, किंतु चेतस इमौ धर्मौ। तत्र चेतसि सत्ववृद्धौ ज्ञानं शुद्धसत्वरूपमुत्पद्यते। तमोवृद्धौ अज्ञानं मलिनवृत्तिरूपं संजायते। तस्मादज्ञानं नाम चित्ततामसवृत्तिरूपो भावपदार्थ इति सिद्धं। नन्वेवं सति पुरुषेण सह तस्य संबंधाभावात् कथं तस्य दुःखजनकत्वं ? सत्यं। नास्ति पुरुषेण प्रमात्रा सह तस्य साक्षात् संबंधः किंतु औपाधिकस्तु अस्त्येव। तथाहि। यथा हि मुखं दिदृक्षुः पुरुषः स्वमुखस्य प्रतिबिंबं दर्पणे पश्यति तदा दर्पणनिष्ठा रेखाः स्वमुखनिष्ठा मन्यते, तथैव चित्तवृत्तिप्रकाशार्थं संबद्धः पुरुषश्चित्तवृत्तिसमवेतान् कामक्रोधादिविकारानात्मनिष्ठान् मन्यते मत्वा च

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


शोचति परिहाराय च यतते । अयमेव चित्तवृत्त्या समं पुरुषस्य भोक्तुरौपाधिकः संबंधः । तथा च चेतसि तमोगुणाधिक्ये कामक्रोधादिषु विकारेषु प्रबलेषु तत्संबद्धः पुरुष आत्मन्येव कामक्रोधादिविकारजातं मन्वानः शोचति । सोऽयं शोको बंध इत्युच्यते । तत्कारणीभूतमज्ञानमित्यपि । यदि नैवं, अथ च कश्चन पृथिव्यादिवत् स्वतंत्र एवाज्ञानपदार्थः स्वीक्रियते, तदा तस्य नित्यत्वापत्त्या नाशासंभवेन मोक्षानुपपत्तिर्दुर्वारा स्यात् । ननु यथाऽज्ञानं तामसं चित्तवृत्तिरूपं स्वीक्रियते तथैव ज्ञानमपि सात्विकं चित्तवृत्तिरूपं स्वीकृत्य सर्वोपपत्तौ पुरुषस्य ज्ञानस्वरूपत्वकल्पना किमर्थेति चेत् सत्यं । परन्तु ज्ञानस्य केवलसत्ववृत्तिरूपस्य स्वीकारे तदुत्पत्तिविनाशयोः प्रत्यक्षं कथं स्यादिति तदन्यथानुपपत्त्या नित्यं ज्ञानं चैतन्यापरपर्यायं परिकल्प्यते । नैवमज्ञानस्य नित्यत्वकल्पने किंचिद्गमकं विद्यते। प्रत्युत तस्य नित्यत्वे मोक्षानुपपत्तिर्दोष एव । अतोऽज्ञानं तामसं चित्तवृत्तिरूपं पुरुषेण सह स्वप्रकाशार्थं संबद्धं पुरुषमेव मोहयति । नानाविषयेषु पुरुषं प्रवर्तयत् नानाविधैर्दुःखैराकुलं तनोति । तच्च न नित्यं, नाप्यनित्यं, किंत्वनिर्वचनीयमिति वेदान्तिनः । वयं तु तदनित्यमेव मन्यामह इति बोध्यम् ।

४

निरूपितमज्ञानस्य स्वरूपम्। अधुना तत्फलं दुःखं निरूपयामि । यद्यपि बाधनालक्षणं दुःखमिति, प्रतिकूलवेदनीयं दुःखमिति वा, दुःखस्य लक्षणं सर्वसंमतं तथापि तस्य वृत्तिरूपत्वं वाऽऽत्मगुणत्वं वा क्षणिकवृत्तिरूपत्वं वेति महान् विवादः । तस्य निराकरणार्थं प्रयत्यते । तत्र दुःखं नाम क्षणिका चेतोवृत्तिरिति बौद्धाः। ते हि मन्यन्ते—यथा खलु इष्टलाभजनिता चेतोवृत्तिः सुखरूपा क्षणिका, तथैवानिष्टपदार्थसंसर्गजनिता चेतोवृत्तिरपि दुःखरूपा क्षणिकैव भवितुमर्हति । अत एव दुःखभराक्रान्तोऽपि जीवः सुखं वाञ्छन् प्रयतमानो दरीदृश्यते । यदि च

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


दुःखमेकान्तं भवेन्नूनं तन्नाशाय कोऽपि न प्रयतेत । जीवानामेष स्वभावो यत्ते नित्यं पदार्थं सदाभिवाञ्छन्ति न कदापि तन्नाशं कांक्षन्ति। अत्यल्पमिदमुच्यते । यत्ते सदैव परिवृत्तिं कस्यापि नेच्छन्ति । एवं स्थिते दुःखं यदि एकान्ततो भवेत्तदा तदेव सुखं भवेत् ? दुःखं च नश्यति सुखं च समुपजायत इति सर्वेषां प्रत्यक्षत्वेन ते उभे अपि अनित्ये इति स्वीकर्तव्यं । अनित्यं च धर्मो नित्यस्य न भवितुमर्हतीति पूर्वमेवोपपादितं । तस्माच्चेतस एवेमे इत्यगत्यांऽगीकर्तव्यं । तत्र किमिमे क्षणिके वाऽक्षणिके वेति विचारे न क्षणिके एवेत्याग्रहः श्रेयान् । कदाचिद्दुःखसंततेः कदाचिच्च सुखसंततेः सततमनुभवात् । तस्माद्यावत्कालमनिष्टस्य पदार्थस्य संयोगो दुःखवृत्तिजनकत्वेन स्वीकृतो वर्तते तावत्पर्यन्तं सा दुःखवृत्तिरेकैवेति न क्षणिकत्वमेव तस्याः । एषैव रीतिः सुखवृत्तिस्थलेऽपि ज्ञेया । तेन च दुःखेन चेतोवृत्तिरूपेण सह पुरुषस्य न तात्त्विकः संबंधः किंतु अज्ञानमूलकः । यथा हि दर्पणस्थं मलिमानमगृहीतप्रतिबिंबभेदो द्रष्टा स्वमुख एव मन्यमानः शोचति । प्रतिबिंबस्य च भेदं गृहीत्वा तं मलिमानं दर्पणनिष्ठं ज्ञात्वा शोकं जहाति । तथैव प्रकृतेऽपि ( चेतोवृत्ति सुखं वा दुःखं वा ) वृत्तिस्वरूपयोर्भेदमगृहीत्वाऽऽत्मन्येव तत् सुखं वा दुःखं वा मन्वानः शोचति । अथ च तत् सुखं वा दुःखं वा चेतस्येव मन्वानस्तं शोकं जहाति । ये खलु नैय्यायिकादय आत्मन्येव सुखं वा दुःखं वा समवायसंबंधेन स्वीकुर्वन्ति, तेषां मते मोक्षस्य दुःखनाशरूपस्याशैव नास्ति । न हि सूर्यस्तावदुष्मणा रहितः स्यादिति संभावयितुमपि शक्यं । सूर्यस्योष्णस्वभावत्वात् । तस्मादज्ञानेन कल्पितपुरुषसंबंधं दुःखं नाम चेतोविकाररूपं तत्त्वं सांख्यानां मते वेदनीयमित्यलमतिविस्तरेण ।

५

अज्ञाने निरूपिते तत्परिपान्थिरूपं ज्ञानं निरूपितकल्पमेव । तथापि

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


दुरूहतया शिष्यबुद्धिवैशद्यार्थं पुनः सविस्तरं निरूप्यते । तत्र तत्त्वज्ञानमित्यत्रास्ति विग्रहद्वयं । तत्त्वस्य ज्ञानमित्येकः षष्ठीतत्पुरुषः । अन्यश्च—तत्त्वं च तत् ज्ञानं चेति कर्मधारयः । तत्र प्रथमपक्षे तत्त्वज्ञानं घटज्ञानवच्चेतोवृत्तिरूपमेवोत्पादविनाशशालीत्यवगन्तव्यं । ननु कथमिदं मोक्षस्य साधकं स्वयमुत्पादविनाशशालित्वादिति चेदत्रोच्यते। अत्यारूढं हि विषयवासनामूलं तमो नित्यज्ञानरूपमात्मानमसत्कल्पं विधत्ते । तेन जीवो हि गाढांधकारे पतित आत्मानमसन्तमेव मन्यते । मन्यमानश्चैवं विषयाकृष्टमना अत्यन्तं प्रतिकूलानि पापानि समाचरति। यदा तु पूर्वसंचिताद्वा सज्जनसमागमाद्वा सत्कर्मणामाचरणाद्वा तत्तमो न्यूनीभवति सत्वं च परिवर्धते, तदा क्रमेण विषयानुरागो न्यूनीभवति । सत्कर्माचरणवासना प्रतिदिनं शनैः शनैः परिवर्धते। सा च क्रमेण वर्धमाना पराकाष्ठां यदा समाप्नोति तदा तमो नामशेषकल्पं जायते। सर्वत्र शुद्धं सत्वमेव भासते । तेन च पुरुषस्य प्रकाशः स्वरूपज्ञानरूपोऽनायासेन प्रतीतिविषयो भवति । ज्ञाते च पुरुषस्य स्वरूपेऽज्ञाने निःशेषमस्तंगते पुरुषो दुःखविहीन इव भवति तेन स मुक्त इत्युच्यते । तथा च प्रतिबंध्यज्ञाननिराकरणद्वाराऽस्य तत्त्वज्ञानस्य मोक्षसाधनता सिध्यतीति बोध्यं । नन्वेवमनेनैव सर्वसामंजस्ये द्वितीयविग्रहस्य कथमावश्यकता ? सत्यं । तमसि नामशेषकल्पे दुःखे च नष्टे मोक्षः सिद्धकल्पः । परन्तु अस्य मोक्षस्य नित्यत्वं कया युक्त्या वक्तव्यं। मोक्षस्य नित्यत्वं तु सर्वतंत्रसिद्धान्तः । तथा च यदि स्वरूपज्ञानान्मोक्षः पदार्थान्तरं तदा सोऽनित्यो भवेत् । ज्ञेयत्वात् । यत् खलु ज्ञेयं तदनित्यमिति व्याप्तेः सांख्यसिद्धान्ते निर्दुष्टत्वात् । तस्मात् स्वरूपज्ञानात्मकत्वं तस्य वक्तव्यमेव । तस्य नित्यत्वेन मोक्षोऽपि नित्यो भवति । तदेतत् सर्वं द्वितीयविग्रहस्वीकारं विना न भवतीति तत्स्वीकार आवश्यकः। एवं च सांख्यसिद्धान्ते ज्ञानपदवाच्यं पदार्थद्वयं स्वरूपज्ञानं विषयज्ञानं चेत्यवगन्तव्यं । वस्तुतस्तु स्वरू-

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi.

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


पज्ञानपरिच्छेदकत्वात् वृत्तौ ज्ञानत्वोपचार इति तु न्याय्यमिवाभाति। तदित्थं संक्षेपेण निरूपितं तत्त्वज्ञानस्य स्वरूपं।

६

निरूपितं ज्ञानस्य मोक्षोपायीभूतस्य स्वरूपं। सम्प्रति मोक्षस्य स्वरूपं सांख्यमते वक्तव्यं। तत्र बौद्धानां मते समानाकारा चेतोवृत्तिरेव मोक्षपदेनाभिधीयते। वैषम्यं खलु दुःखस्य कारणमिति सर्वेषामनुभवसिद्धं। तस्मिन् विनष्टे न दुःखस्य संभावनाऽपि। चेतसस्तु सततं परिणमनशीलतया तत् समानाकारां वृत्तिं सूत एव। तथा च दुःखध्वंसस्य यद्यपि मोक्षत्वं बौद्धसंमतं तथापि न तस्य नित्यत्वं नाप्येकत्वं तैः स्वीक्रियते। नैय्यायिकास्तु—स्वसमानाधिकरणदुःखप्रागभावासमानकालीनत्वं दुःखध्वंसे स्वीकुर्वन्तस्तं मोक्षत्वेन व्यपदिशन्ति। परन्तु यथा दुःखं न नित्यं तथैव तस्य ध्वंसोऽपि न नित्य इति वक्तव्यं। अन्यथा दुःखप्रागभावोऽपि नित्यो भवेत्। तस्मात् ध्वंसप्रतियोगितया यथा प्रागभावोऽनित्यः, एवमेव प्रागभावप्रतियोगितया ध्वंसोऽप्यानित्यः कुतो नेति विचारार्हं। सांख्यमते चाभावस्याधिकरणात्मकत्वेन पुरुषवृत्तिदुःखध्वंसः पुरुषरूप एव। तेन तस्य नित्यत्वमंजसा सिध्यति। तत्रेदानीं विचार्यते—दुःखध्वंसरूपस्य मोक्षस्य नित्यत्वं यद्यपि पुरुषस्वरूपत्वेनोपपादयितुं शक्यते तथापि ध्वंसस्योत्पन्नतया नात्यंतिकत्वं तस्मिन्नंजसा सिध्यति, किंतु दुःखात्यन्ताभावं स्वीकृत्य। पुरुषे हि अज्ञानेन दुःखं कल्पितमासीन्न तु वास्तविकमिति सांख्यसिद्धान्तः। तथा च तत्र त्रैकालिको दुःखस्यात्यंताभावः सार्वकालिक इति तस्य नित्यत्वं। ननु भूतले घटो नास्तीत्यस्यात्यंताभावस्य कथं त्रैकालिकत्वं घटानयनानन्तरं तस्य नाशादिति चेन्न—यश्च यत्र त्रिषु कालेष्वपि न वर्तते तत्र तस्यात्यंताभाव इति स्वीकारान्न काचिदनुपपत्तिः। यथा वायौ रूपं नास्तीति प्रतीतिरत्यंताभावविषया। तत्र वायौ रूपस्य त्रिषु

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

कालेष्वपि संबंधाभावात् । तथैव प्रकृते पुरुषे त्रिषु कालेष्वपि दुःख-संबंधस्यानंगीकारात्तत्र दुःखात्यंताभावो नित्य एवेति ज्ञेयं । वस्तुतस्तु इदमेव न्याय्यं । अन्यथा मोक्षस्य नित्यत्वं दुरुपपादितं भवेदिति सूक्ष्मया दृष्ट्याऽवगन्तव्यं ।

७

उक्तं प्रमेयजातं । अधुना प्रमाणानि निरूपणीयानि । तत्र सांख्यानां मते—प्रत्यक्षमनुमानं शब्दश्चेति त्रीणि प्रमाणानि । तत्र प्रति-विषयाध्यवसायो दृष्टमित्यादिलक्षणस्य भिन्नत्वेऽपि अन्यत्सर्वं समानमेव । अयमत्र विशेषः । तत्र चार्वाकमते प्रत्यक्षस्यैव प्रामाण्यं नान्येषामिति स्थितिः । बौद्धमारभ्य न्यायपर्यन्तमनयोः प्रत्यक्षानुमानयोः समं प्रामाण्यं तथा शब्दस्याऽपि । परन्तु सांख्यसिद्धान्ते शब्दस्य स्वातंत्र्येण प्रामाण्य-मुच्यते । इदमुक्तं भवति—यः खलु प्रत्यक्षानुमानयोर्न विषयः स शब्दस्य विषय इति । तेन शब्दस्य स्वविषये स्वातंत्र्येण प्रामाण्यमुक्तं भवति । तदुक्तमीश्वरकृष्णकृतासु सांख्यकारिकासु—

सामान्यतस्तु दृष्टादतीन्द्रियाणां प्रतीतिरनुमानात् ।
तस्मादपि चासिद्धं परोक्षमाप्तागमात् सिद्धं ॥ १ ॥

इत ऊर्ध्वं च शब्दप्रामाण्यं पूर्वप्रमाणयोः प्रत्यक्षानुमानयोः प्रामाण्यमति-क्रम्य वर्धिष्यत इति बोध्यं । युक्तमपीदं । कथं खलु सत्कर्मणां सततमा-चरणेन शुद्धे योगाभ्यासाच्च स्थिरीकृते चेतसि ये विषयाः प्रकाशन्ते तेषां पश्वादिसाधारणेन प्रत्यक्षेण वानुमानेन वा ज्ञानं शक्यं । तत्र सांख्यमते यद्यपि वेदोऽपौरुषेयस्तथापि तस्य प्रामाण्यमबाधितविषयकत्वेन । तच्च लौकिकस्य शब्दस्य समानमिति न कोऽपि विशेषः । न चैवं सति वेदस्यापौरुषेयत्वकल्पनायाः किं प्रयोजनमिति वाच्यं । तस्यापौरुषेयत्वेन स्वतःसिद्धं प्रामाण्यं । लौकिकस्य तु अनुमानेनेति संक्षेपः ।

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

## ( पातञ्जलदर्शनस्यावतरणिका )

निरूपितं कपिलप्रणीतं निरीश्वरवादकं स्वतंत्रप्रधानतत्त्वबोधकं सांख्यदर्शनं। तत्र पुरुषस्य नित्यत्वमंगीकृत्य स्वयंप्रकाशत्वसिध्दान्त-ख्यापनेन बहुतरमुपकृतं। परन्तु प्रधानं यदि स्वयमेव जगदाकारेण परिणमेत तदा तत् सदैव परिणमेत न पुनः विरमेत्। जडस्वभावस्या-नपायात्। किं च अचेतनं प्रधानं स्वयमेव जगदाकारेण परिणमत इति सिद्धान्तोऽनुभवमपलपति। लोके तु अचेतनं शकटादि चेतनेनाश्वेन वा वृषभेण वाऽधिष्ठितमेवाभिलषितं कार्यं करोतीति दृष्टं। न चाश्ववृषभौ शरीरेण शकटं वहत इति प्रत्यक्षं दृश्यते, तच्च शरीरमचेतनमेवेति वाच्यं। तथापि तत्र चैतन्यं तु अस्ति। तथा च चेतनविशिष्टस्यैव तच्छरीरस्य कारणत्वं स्वीकर्तव्यं न केवलस्य। तस्मादचेतनायाः प्रकृतेः कोऽपि प्रवर्तकोऽगीकर्तव्यः। अन्यच्च—यदिदं तत्त्वज्ञानं प्रकृतिपुरुषभेदग्रहणात्मकं तत् पुरुषस्य कथं भवतीति विचारणीयं। न च तस्य बोधकः कश्चनास्ति। अतस्तदुपदेशकः कश्चन स्वीकरणीयः। स न बद्धः। अन्यथा स्वयमन्धः परस्मा अन्धाय कथं मार्गं दर्शयितुं प्रभवेत्। अपरं च—यद्यपि सत्कर्मणामाचरणेन चित्तं शुद्धं भवति तथापि ज्ञानप्रतिबंधकं तस्य चांचल्यं दूरीकर्तुं ध्यानधारणादयोऽवश्यमनुष्ठेयाः। तत्र यदि अनादिमुक्तः कोऽपि नास्ति तदा कस्य वा ध्यानं कस्य वा धारणा। अपि च—प्रारब्धकर्मणां भोगादेव क्षय इति सिद्धान्ते कर्मणामानंत्यात्तेषां भोगेन क्षय एवासंभवीति कथं तत्त्वज्ञानस्योदयः? तदेतेषां प्रश्नानामुत्तरदायि पातञ्जलदर्शनं योगाख्यं प्रस्तूयते। यत्र च विशेषस्तत्र विशेषतो व्याख्यानं विधीयते। यत्र तु ऐकमत्यं तत्र संक्षेपेणोल्लेख इति ज्ञेयं।

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

# दशमं सोपानम् ।

## योगदर्शनम् ( अखण्डप्रकाशात्मवादः ) ।

| प्रश्नाः— | उत्तराणि— |
|---|---|
| १ किं ज्ञेयम् ? | १ ईशाधिष्ठिता सविकारा प्रकृतिः । |
| २ कीदृशो ज्ञाता ? | २ नित्यश्चिद्रूपः, ईश्वरश्च । |
| ३ अज्ञानस्य स्वरूपं किं ? | ३ ज्ञानप्रतिबंधकं मोहशक्तिरूपं । |
| ४ दुःखस्य स्वरूपं किं ? | ४ शास्त्रनिषिद्धाचरणजन्यश्चेतोविकारः |
| ५ ज्ञानस्य स्वरूपं किं ? | ५ प्रकृतिपुरुषयोर्भेदग्रहः । ईश्वर-साक्षात्कारश्च । |
| ६ दुःखध्वंसस्य (मोक्षस्य) स्वरूपं किं ? | ६ ईश्वरध्यानेन सकलदुःखनिवृत्तिः । |
| ७ एतेषु प्रमाणं किं ? | ७ प्रत्यक्षमनुमानं शब्दश्च । |

ईशाधिष्ठितकार्यकारिप्रकृतेः कार्यं समस्तं जगत् ।
जीवः पूर्ववदेव किंतु जगतीनाथः परं संमतः ॥
तच्छरणीकरणेन मुक्तिरमला पूर्वोक्तमानत्रयं ।
ध्यानावस्थितनिर्मलात्ममनसां मान्यं मतं योगिनां ॥१॥

१

तत्र सांख्यैर्यादृशी प्रकृतिस्त्रिगुणात्मिका नानाविधपरिणामशालिनी जगत्कारणत्वेन स्वीक्रियते तथैव योगिभिरपि । केवलं तस्याः स्वातंत्र्यं न तेऽङ्गीकुर्वन्ति । ते हि वदन्ति-जडस्य यो हि स्वभावस्तं स्वभावं तत् कदापि न परित्यजति । अग्निर्हि सदैवोष्णस्पर्शशाली तं स्वभावं परित्यज्य शीतः संवृत्त इति न कदाऽपि दृष्टं न प्रामाणिकमुखाच्छ्रुतं । एवं स्थिते यदि प्रकृतिः सत्वरजस्तमःस्वभावा जगदाकारेण परिणमेत, तदा यस्याः सात्विकं कार्यजातं तत्सात्विकमेव सर्वदैव भवेत् । नैवं दृश्यते । सात्वि-



Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

कस्याऽपि साधुचेतसस्तामसोदयदर्शनात् । तस्मान्न स्वभावेन प्रकृतिः परिणमत इति न्याय्यं । ननु धर्माधर्मौ तस्याः प्रवर्तकौ । तथाहि । जलं सदैव वहति तच्च नियतं क्षेत्रं निनीषुः कृषीवलो मार्गे स्थितं प्रतिबंधकं मृच्चयमपनयति न तु पुनर्जलं कर्षति, तथैव धर्माधर्मौ तत्तत्कार्यप्रतिबंधकीभूतं कार्यमपनयतः, प्रकृतिश्च जलवदपनीते प्रतिबंधके स्वयमेव तदाकारेण परिणमत इति नास्ति प्रवर्तकस्य चेतनस्यावश्यकतेति चेन्न । यथा हि तत्र प्रतिबंधकीभूतमृच्चयस्यापवारणार्थं कृषीवलोऽपेक्ष्यते, एवमेवात्रापि प्रतिबंधककार्यवारणाय कश्चन चेतनोऽपेक्षणीय एव । किं च धर्माधर्मावपि प्रकृतिकार्यतयाऽचेतनावेव । तत्कथं तौ प्रकृतिं प्रवर्तयितुं प्रभविष्यतः । अपि च अयं धर्मः, अयमधर्म इति बोधयितारं विना कथमवगमः । न हि घटपटाविव वस्तुभूतौ धर्माधर्मपदार्थौ । एकस्यैव कर्मणो धर्मजनकत्वेऽन्यस्याधर्मजनकत्वदर्शनात् । यथा हि अहिंसा ब्राह्मणस्य धर्मः, क्षत्रियाणां तु हिंसा धर्मः । न हि हिंसाऽहिंसा भवत्यहिंसा वा हिंसेति । तस्मात्तत्तद्देशकालौ तथा तेषां तेषां मानवानां स्थितिं विलोक्य विहितानि कर्माणि धर्माधर्मबोधकानि निःसंशयं चेतनं गमयन्ति । ननु वेदोऽस्ति तद्बोधक इति चेन्मैवं । न हि वेदोऽपि जडः स्वयं बोधयितुं चेतनवत् प्रभवति । तस्मादस्ति चेतनः प्रकृतेः प्रवर्तयिता सर्वज्ञ इति स्वीकर्तव्यमेव । ननु अस्तु चेतनः कश्चित् परन्तु तस्य सार्वज्ञ्ये किं मानमिति चेदुच्यते—तत्तत्प्राणिकृतान् धर्माधर्मान् साक्षात्कृत्य तदनुरोधेनैतेषां सुखदुःखादिव्यवस्थाविधानं सार्वज्ञ्यं विना नोपपद्यत इति तदेव गमकं । न हि कश्चन जीवो भाविनः सुखदुःखोपभोगाननुलक्ष्य तत्साधनानि निर्मातुं शक्नोति । अत एव धर्माधर्मौ न कस्याऽपि जीवस्य प्रत्यक्षाविति सर्वतंत्रसिद्धान्तः । एवं च प्राप्तं तस्य सर्वजगच्चालकत्वं । तथा प्रकृतेरपि स एव प्रवर्तक इति सिद्धं नः समीहितं । ननु प्रथमं धर्माधर्मौ वा प्रथमं सर्वज्ञो वा ? यद्याद्यः पक्षस्तदा

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



किं चेतनकल्पनया । तस्य स्वीकृतिं विनाऽपि धर्माधर्मयोः सिद्धत्वात् । नान्त्यः । तथा सति जगति धर्माधर्मौ सृष्ट्वा सुखदुःखे विरचयतस्तस्य चेतनस्य वैषम्यनैर्घृण्ये प्रसज्जेताम् । मैवं । संसारस्यानादित्वेनादोषात् । तथाहि । संसारः कदा प्रादुरभूदिति निर्णयो भवेत्तदा खलु चेतनः पूर्वो वा धर्माधर्मौ वा पूर्वौ इति प्रश्नः संभवति । न त्वेतदस्ति । संसारः कदा प्रादुरभूदिति निर्णेतुं केनापि न शक्यते। इदमेव मनासि कृत्वा ते ते सर्वे दर्शनकाराः संसारस्यानादित्वं स्वीकुर्वन्ति । तस्मादस्थानेऽयं प्रश्नः । लोकानुरोधेन तु अचेतनं चेतनाधिष्ठितं कार्यं करोतीतिं बहुशो दृष्टतया प्रकृतेः स्वकार्यकारित्वे चेतनाधिष्ठितत्वं प्रयोजकं ब्रूमः । एवं चेतने सर्वज्ञे सर्वजगच्चालके परमात्मनि सिद्धे तदिच्छामनुसृत्य सर्वं जगज्जायत इति कल्पनाऽप्युपपद्यते । ननु नैय्यायिकस्वीकृत ईश्वरवाद एवायमिति न कोऽपि विशेष इति चेत्। सत्यं । नैय्यायिकस्वीकृतेश्वरो यद्यपि नित्य-स्तथापि न चेतनः । इच्छादिगुणाश्रयश्च । न चास्मन्मते तथा गुणाश्रयः किंतु यथा पुरुषोऽन्तःकरणद्वारा स्वाभिलषितं साधयति तथैव निर्मलशुद्धसत्वप्रकृतिद्वारा जगदीश्वरः सर्वं कार्यं करोतीति सिद्धान्त-स्वीकारादिति बोध्यं । तथा च परमेश्वरेण प्रकृतिद्वारा निर्मितमिदं जगज्ज्ञेयमिति भावः । अन्यत्सर्वं समानं ।

२

निरूपितं ज्ञेयं। इदानीं ज्ञातृस्वरूपमुच्यते। तत्र यथा सांख्यैर्नित्यः स्वयंप्रकाशः पुरुषः स्वीकृतस्तथैव योगिभिरपि स्वीक्रियते । परन्तु स यथा प्रकृतेर्भेदं सन्तमजानन् शोचतीति तैः स्वीकृतं सिद्धान्तं ते नानु-मन्यन्ते । योगिनामयमाशयः—न केवलमयं पुरुषश्चेतोवृत्तिरूपान् कामक्रोधादीनात्मन्येव मन्वानः शोचति किंतु सर्वसाक्षिणं व्यापकं दीनानुग्राहिणं परमात्मानमजानन् शोचति । स यदि चराचरपालकं परमेश्वरं जानीयात्तथा स्वीयानि साधूनि असाधूनि वा कर्माणि तस्मै

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



समर्पयेत्तदा न स कदापि शोकभाक् भवेत्। किं च यत् प्रकृतिपुरुषभेद-ग्रहात्मकं तत्त्वज्ञानं तदन्वयव्यतिरेकाभ्यां भवतीति सांख्या मन्यन्ते। परन्तु तौ सदैवान्वयव्यतिरेकौ वर्तेते परन्तु ज्ञानं कदाचिदेव कस्यचिदेव जायत इति अवश्यं तस्य कारणविशेषेण भाव्यं। स च कारणविशेषो गुरूपदेशं विना नान्यः संभवति। स च गुरुः स्वगुरुप्रसादाच्छिन्नाज्ञान-पटल इति क्रमेण परमात्मैवादिगुरुः सर्वेषां सिध्यति। तदुक्तं।

**स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्।**

ननु स शरीरी किंवाऽशरीरी? आद्येऽज्ञानस्य सत्त्वप्रसंगः। शरीरं हि धर्मा-धर्माभ्यां जायते। धर्माधर्मौ च विहितप्रतिषिद्धाचरणं विना न संभवत इति विदितं। तथा च शरीरस्य सत्त्वेनाक्षिप्यमाणौ धर्माधर्मौ स्वकारणस्याज्ञा-नस्य सत्त्वमाक्षिपत एवेति क्व परमात्मसत्त्वं। यद्यन्त्यस्तदा तस्य कण्ठ-ताल्वाद्यभिघातरूपकारणाभावात् कथमुपदेष्टृत्वं। उपदेष्टा हि मनसा प्रतिपाद्यान् विषयान् पर्यालोच्य तद्वाचकान् शब्दान् कण्ठताल्वाद्य-भिघातैरुच्चारयति, येन श्रोताऽर्थं प्रतिपद्यते। तथा चोपदेशकारणीभूत-कण्ठताल्वादीनामभावात् कथमुपदेष्टृत्वं? मैवं। उभयथाऽपि संभवात्। यथा हि ध्यानधारणादिसामर्थ्यसंपादितसंस्कारविशेषो योगी स्वभवन एव स्थितस्तेषां तेषां जंतूनां चेतःसु प्रेरणां विधाय कार्याणि करोति, तथैवा-लौकिकसामर्थ्यशाली परमेश्वरः स्वसत्तामात्रेण लोहचुंबको लोह इव तेषु तेषु जीवानां निर्मलेषु अन्तःकरणेषु प्रेरणां करोति। तां प्रेरणामेवोपदेशशब्देन जना व्यवहरन्ति। यद्येतन्न विश्वासास्पदमित्युच्यते तदा नट इव भक्ताना-मनुग्रहार्थं नैमित्तिकं देहमादायोपदेशविधानं नासंभवि। न चैतावता तन्निमित्तौ धर्माधर्मौ। नापि तयोर्जनकमज्ञानं। कुत इति चेद्यथा शैलूषस्य नास्ति स्वीकृतवेषाभिमानः। केवलं सभ्यानां रंजनार्थमेव तस्य स्वीकारात्। तथैव परमात्मना भक्तानामनुग्रहाय तत्त्वोपदेशाय स्वीकृते देहेऽभिमानाभावान्न धर्माधर्मावित्युचितमेव। अज्ञानसत्त्वस्य तदभिमान-

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by Gangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


वत्त्वं प्रयोजकं वक्तव्यं । अन्यथा जीवन्मुक्तस्यापि धर्माधर्मौ स्यातां । तदभिमानसत्तां प्रति तु आत्मज्ञानं नाशकमिति तूभयोस्तुल्यमेव । तथा च चेतोवृत्तिकामक्रोधादितादात्म्यमध्यस्य संसारसुखदुःखव्याकुलान् सर्वानपि पुरुषान् यथार्थं तत्त्वमुपदिश्य यो हि सततमुद्धरति स पुरुषविशेषोंऽगीकर्तव्य एव । अन्यत्सर्वं समानम् ।

३

निरूपितं प्रमातुः स्वरूपं । अधुनाऽज्ञानस्य स्वरूपं वक्तव्यं । यद्यपि कापिलमतसम्मतं प्रकृतिपुरुषयोर्भेदग्रहाभावात्मकमज्ञानस्य स्वरूपं योगिनामपि सम्मतं, तथापि तदेव तस्य स्वरूपं नान्यादित्यवधारणं न सम्मतमिति पुनर्निरूप्यते । यथा हि पुरुषः प्रकृतेः स्वीयं भेदमजानंस्तामात्मत्वेनाध्यस्य तन्निष्ठमुत्पत्त्यादिकं विकारजातमात्मन्येव मन्यते, तथैवात्मानमेव सर्वेश्वरं सर्वश्रेष्ठं मन्वानः परमात्मानं सर्वसुखदुःखकारणममन्वानः शोचतीत्येतदपि सत्यमित्यंगीकर्तव्यं । तथा चेश्वराज्ञानमपि शोककारणं । तदपि अज्ञानस्यैकं स्वरूपं भवितुमर्हति । ननु ईश्वराज्ञानं कथं दुःखकारणमिति चेदुच्यते—ईश्वरोऽस्ति, यो हि सुकृतदुष्कृतयोः साक्षात् द्रष्टेति ज्ञाने विद्यमाने जीवः प्रकृत्यज्ञानवशोऽपि न तादृशानि कुकर्माणि कर्तुं प्रभवति यादृशानि परमेश्वरो नास्तीति निश्चितमतिर्जीवो विदधाति । अयमत्र गूढो भावः—स्वभाव एषोऽज्ञानस्य यत्तन्निरंकुशं यथेच्छं वर्तते । तदेव यदि केनापि नियम्यते तदा तन्निरंकुशं न भवति । अत्र च लौकिकदृष्टान्तोऽपि संगच्छते । यो हि सेवक आत्मानमेव प्रभुं मन्वानो यथेच्छं यथा विहरति दुःखानि च शासनजन्यानि लभते, न तथाऽऽत्मानं सेवकं मन्वानः सेवकः । किमत्र कारणं ऋतेऽज्ञानात् ? तस्मादेतदपि दुःखकारणमज्ञानत्वेन स्वीकरणीयमेव । नास्ति परमेश्वरस्य धर्मोपदेशः । इदमपि अज्ञानमेव । स हि परमात्मा जीवानामुद्धाराय सन्मार्गोपदेशकं वेदादिकं शास्त्रं प्रणीतवान् । परन्तु विषयमोहसमाकुलितबुद्धिर्जीवस्तदेतद्

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


सर्वं कपोलकल्पितमप्रामाणिकं मन्वानः प्रतिषिद्धसमाचरणरतिरभक्ष्यं भक्ष्यं मन्वानः श्वेव प्रतिकूलमाचरन् दुःखांभोधौ निमज्जति। एतदपि अज्ञानस्य स्वरूपान्तरमित्यवश्यमंगीकर्तव्यमिति न संदेहलवोऽपि।

४

निरूपितमज्ञानं। अधुना तत्कार्यं दुःखं निरूपणीयं। यद्यपि दुःखस्य प्रतिकूलवेदनीयत्वं सर्वसंमतं लक्षणं तथापि तत् कारणभेदेन भिद्यत एव। तथाहि। सांख्यास्तु केवलप्रकृतिपुरुषभेदाग्रहानिबंधनमेव दुःखं चेतोविकाररूपं स्वीकुर्वन्ति तन्न सम्यक्। यत् खलु आपाततः सुखदायकमपि परिणामे विपरीतफलदायि तदपि दुःखमिति स्वीकर्तव्यं। यथा हि परस्त्रीगमनं शास्त्रेण निषिद्धमपि समाचरन् सुखमेव लभते। तथापि तत् दुःखमेव। यदि तु प्रतिकूलवेदनीयत्वमेव दुःखस्य लक्षणं यदि वाऽप्रतिकूलवेदनात्मकश्चेतोविकार इत्येव तस्य लक्षणं, तदोपरिदर्शिते परकान्तासंसर्गसुखेऽव्याप्तिः। ननु तत् सुखमेव न दुःखमिति कुतोऽव्याप्तिरिति वाच्यं। शास्त्रनिषिद्धत्वात्तद्दुःखमेव स्वीकरणीयं। यदि तत् सुखं; कथं शास्त्रेण निषिध्येत ? सुखं हि अनुभूयमानं यदि शास्त्रेण निषिध्येत नूनमप्रमाणं शास्त्रं भवेत्। न चैतद्युक्तं। तस्मादज्ञानतोऽनुभूयमानमपि सुखं दुःखमेवेति वक्तव्यं। तच्च न प्रतिकूलवेदनाविषय इत्यव्याप्तिस्तदवस्थैव। अतो न तस्य दुःखलक्षणत्वं युक्तं। ननु किं तर्हि दुःखस्य लक्षणं ? उच्यते। शास्त्रनिषेधविषयत्वं हि दुःखत्वं। तथाहि। यत् खलु सुखं वा दुःखं वा न तत् केनापि जीवेनाज्ञानाकुलमतिना ज्ञातुं शक्यते। पश्वादीनां नास्ति सुखदुःखादिविज्ञानं। यत् खलु इन्द्रियाणां तृप्तिकरं तत् सुखमिति मत्वा तदाचरणे ते प्रवर्तन्ते, यच्चेतद्विरुद्धं तत् दुःखं मन्वाना निवर्तन्ते। परन्तु विपरीतमनुभवं लभन्ते। तस्माद्यत् खलु भूतभविष्यद्वर्तमानज्ञानिना सर्वज्ञेन सर्वं पदार्थजातमालोच्य निर्णीतं तदेव प्रमाणीकृत्य सुखदुःखयोर्व्याख्या करणीया। अत

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

एवाधर्मजन्यं दुःखं धर्मजन्यं सुखमिति लक्षणं साधु । धर्माधर्मयोर्लक्षणे अपि-विहितकर्मजन्यो धर्मः, प्रतिषिद्धकर्मजन्यस्त्वधर्म इति । तथा च शास्त्र-निषेधविषयत्वं परंपरया दुःखलक्षणं भवितुमर्हतीति बोध्यं ।

५

अधुना योगिनां दर्शने तत्त्वज्ञानस्य स्वरूपं विवेचनीयं । तच्च यद्यपि तद्वति तत्प्रकारकज्ञानत्वमित्येव तेषामपि सम्मतं, तथापि तदु-पायाश्च भिन्ना इति प्रसंगतो निरूप्यन्ते । तत्राज्ञानं नाम तमोगुणस्य धर्म इति पूर्वमेव निरूपितं । तद्विरोधितया ज्ञानस्य वृत्तिरूपस्य सात्विकत्वमर्थादेवागतं । तथा च—

"सत्वात्संजायते ज्ञानं" —

इति भगवदुक्तिरपि संगच्छते। तत्त्वज्ञानाच्च मोक्ष इति सर्वतंत्रसिद्धान्तः । तथा च मुमुक्षुणा यथा तमःक्षयो भवेत्, यथा च सत्वं वर्धेत, तथा वर्त-नीयमिति क्रमप्राप्तं । अत एव—

"आहारशुद्धौ सत्वशुद्धिः, सत्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः"

इति वचनमपि संगच्छते । तत्र सत्वशुद्धिकारणीभूताहारव्यवस्था मन्वादिस्मृतिभिर्व्यवस्थापितेति न तत्र योगिनां पृथक् व्यवस्थाऽऽवश्यिकी । चित्तस्याहारादिना सात्विकत्वेऽपि संस्कारजन्यतच्चांचल्यस्य नाशाय तथा तत्त्वज्ञानोपयोगिनः स्थैर्यस्य च जननाय योगशास्त्रेणोपायाः कथ्यन्ते । तस्य चारंभः 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः' इत्यारभ्य महता विस्तरेण कृतः । तत्र तांस्तान् समाधीनभिधाय तदशक्तस्य निष्कामकर्माचरणमुपदिश्य तत्राप्यसमर्थस्य 'ईश्वराभिध्यानाद्वा' इति परमात्माभिध्यानमुपायः कथितः । तत्खलु परमेश्वराभिध्यानं तत्स्वरूपमविज्ञाय न संभवतीति तेषां तेषा-मवतारकार्याणामनुकूलमूर्तिप्रतिमादिध्यानमपि विहितं । तथा च सदा-चरणेन तथा निष्कामकर्मणामाचरणाल्लब्धसत्वाधिक्यो योगी यथाऽ-भिमतभगवत्स्वरूपध्यानेन स्थिरचित्तस्तस्मिन् चित्ते प्रतिबिंबितं पुरुषं तथा

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

विविधकार्यकारिणीं चित्तवृत्तिरूपेण प्रत्यक्षमनुभूतां प्रकृतिं भेदेन ज्ञात्वा कृतकृत्यो भवति। यद्यपि सांख्यानामिव योगिनामपि प्रकृतिपुरुषविवेकग्रहेणैव मोक्षः संभवति, तथा च सांख्यमत इव योगिमतेऽपि प्रकृतिपुरुषविवेकग्रहरूपमेव तत्त्वज्ञानं, तथापि तस्य कारणं केवलं अन्वयव्यतिरेकाविव सांख्या मन्यन्ते। न तथा योगिनः। योगिनस्तु चित्तनिरोधमारभ्य कथितास्ते ते समाधयस्तथा परमात्मनि सर्वक्रियाणां समर्पणमपि तद्धेतुत्वेन मन्यन्त इति विशेषः। तत्र निष्कामकर्माचरणं कीदृशं? ते ते समाधयः कीदृग्रूपाः? ईश्वरे समर्पणं नाम किं? इति सर्वमपि कथनीयं। तथापि तदेतत्सर्वं निरूपितं गौरवदोषावहं भवेदिति मत्वा न क्रियते। संक्षेपतः—

एवं तत्त्वाभ्यासान्नास्मि न मे नाहमित्यपरिशेषं।
अविपर्ययाद्विशुद्धं केवलमुत्पद्यते ज्ञानम्॥

अनया कारिकया निरूपितं सांख्यानां तथा योगिनां मते केवलज्ञानस्य कीदृशं स्वरूपमिति। किंच—ईश्वरस्य प्रकृतिसंसर्गरहितस्य केवलस्य साक्षात्कारे जाते पुरुषस्याऽपि केवलस्य वस्तुतो निःसंगस्य सतः प्रत्यक्षं जायते। पुरुषसाक्षात्कारे जाते सर्वमज्ञानं नामशेषीभवतीति किमु वक्तव्यं। तस्माद्यथाऽन्यैरुपायैः समुत्पादितं पुरुषज्ञानं दुःखनाशाय तथा परमात्मसाक्षात्करणमपि दुःखनाशायेति बोध्यं।

६

निरूपितं तत्त्वज्ञानं। अधुना फलीभूतो मोक्षो निरूपणीयः। स चैकविंशतिदुःखध्वंसरूप इति नैय्यायिकाः। दुःखध्वंस इति सांख्या योगिनश्च। तत्र दुःखप्रकाराणामनेकविधत्वान्नैव तेषामियत्ताऽवधारयितुं शक्या। तस्माद्दुःखत्वावच्छिन्नस्य ध्वंस इति न्याय्यं। ननु ध्वंसप्रागभावयोः प्रतियोगिता न सामान्यधर्मावच्छिन्नेति कथं दुःखत्वावच्छिन्नस्य ध्वंसस्य संभव इति चेन्न। यदा हि कस्याऽपि दुःखस्य अस्तित्वं नास्ति, तदा

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


दुःखत्वाच्छिन्नस्य ध्वंसस्य स्वीकारे न कोऽपि दोषः । अन्यथा मोक्षस्य दुःखध्वंसरूपता न स्यात् । तत्र बौद्धमारभ्य योगिपर्यन्तं सर्वेऽपि दर्शनकारा दुःखध्वंसरूपमेव मोक्षं मन्वते । तथापि तत्र विशेषोऽस्ति । तत्र दुःखध्वंसं पदार्थान्तरमभावात्मकं मन्यमाना आत्मनि तस्य सत्त्वं तार्किकाः स्वीकुर्वन्ति । न चैवं योगिनां मते । ते हि दुःखध्वंसं पुरुषस्वरूपमेव मन्वानाः पुरुषमेव मुक्तं व्यपदिशन्ति । अयं हि योगिनां गूढो भावः—यदि न नित्यचेतनपुरुषस्वरूपो दुःखध्वंसस्तदा तस्य नित्यत्वं कथमुपपादनीयं । नित्यपुरुषस्वरूपत्वे तु स्वतःसिद्धमेव मोक्षस्य नित्यत्वं । अत एवाभावस्याधिकरणस्वरूपत्वस्वीकार आग्रहो योगिनां । किं च—तथात्व एव तस्य व्यापकत्वं सिध्यति । अन्यथैतच्छरीरावच्छेदेन दुःखध्वंससत्त्वेऽपि अन्यशरीरावच्छेदेन दुःखस्य सत्त्वान्मोक्षस्याव्याप्यवृत्तित्वं स्यात् । न च मोक्षस्याव्यापकत्वे का क्षतिरिति वाच्यं । तथा सति मोक्षस्य परमपुरुषार्थत्वं न सिध्येत् । अयमत्र भावः—दुःखस्य चोत्पादविनाशशालितया तन्नियमेन नश्यति पुनरुत्पद्यते च । परन्तु एतादृशदुःखध्वंसस्य निसर्गाधीनत्वेन न पुरुषार्थत्वं । पुरुषार्थत्वं चापुनरुत्पत्त्या । सा च दुःखस्यापुनरुत्पत्तिः केवलं यो ह्यपुनरुत्पत्तिरूपस्तत्स्वरूपत्वकल्पनेनैवोपपादनीया । जगति उत्पत्तिस्थितिलयरूपभावविकाररहितो हि केवलं पुरुषः परमात्मा च । तत्सारूप्यकल्पनेनैव मोक्षस्यापुनरुत्पत्तिरूपनित्यत्वं कल्पयितुं शक्यमिति पुरुषस्वरूपो यो दुःखध्वंसः स एव मोक्ष इति मन्तव्यं ।

७

निरूपितं सर्वमपि प्रमेयजातं । अधुना प्रमाणानि निरूपणीयानि । तत्र यद्यपि न्यायमतवत् 'इन्द्रियार्थसंनिकर्षोत्पन्नं ज्ञानं प्रत्यक्षं' इति प्रत्यक्षलक्षणं योगिनामपि संमतं, तथापि तन्न सर्वप्रत्यक्षज्ञानस्य लक्षणं भवितुमर्हति । योगी तु विनाऽपि इन्द्रियार्थसंनिकर्षं सर्वमपि भूतं भवन्तं


Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


भविष्यन्तं च साक्षात्करोति । तस्मात्तत्साधारण्येन लक्षणं तु चैतन्यमित्येव वक्तव्यं । ननु योगिनामीदृशे सामर्थ्ये किं प्रमाणमिति चेत् सहस्रशः श्रुतिस्मृतिवादा इति जानीहि। किं च—इन्द्रियाणां बाह्यानां वाऽऽन्तराणां वा शक्तिसमुत्कर्ष उपायसिद्धो दृश्यते । ये खलु साधारणजननेत्राणामविषयास्ते चाञ्जनसंसर्गोपनीतप्रतिबंधकविशेषनेत्राणां विषया इत्यपि बहुशोऽनुभूतं। तथा च ये खलु सततध्यानधारणादिकमिन्द्रियाणां शक्तिवर्धकमुपायजातमनुतिष्ठन्ति तेऽपि शक्तिविशेषं लब्ध्वा प्रथममसाक्षात्कृतमर्थं साक्षात्कर्तुं शक्नुवन्ति । तस्मादस्ति योगजं सामर्थ्यमित्यंगीकर्तव्यमेव । तत्र योगिनो द्विविधाः, युक्तयुंजानभेदतः । तदुक्तं—

**योगिनो द्विविधाः प्रोक्ताः युक्तयुंजानभेदतः ।**
**युक्तस्य सर्वदा भानं चिन्तासहकृतोऽपरः ॥**

अनुमानं च योगिनामपि प्रमाणत्वेन सम्मतं । न तत्र कोऽपि विशेषः । शब्दोऽपि प्रमाणमेव । तत्राप्तोक्तः शब्द एव प्रमाणमिति सम्मतमेव । तत्र वेदस्येश्वरोक्तत्वात् प्रामाण्यमेव । न च शरीराभावे कथमुपदेष्टृत्वमीश्वरस्येति वाच्यं । यथा हि अत्र स्थितो योगी स्वयोगसामर्थ्येन विप्रकृष्टं वाऽसन्तं वा पदार्थं साक्षात्कुरुते, उपदिशति च । तदुपदेशानुरूपं वर्तमाना जनाः श्रेयो लभन्ते दुःखान्मुच्यन्ते च । तथैव शरीराभावेऽपि कुतो नेश्वरस्योपदेष्टृत्वं ? ननु योगिनामस्ति त्रिकालज्ञानमित्युक्तं । त्रिकालज्ञाः सर्वं भावि साक्षात्कृत्य दुःखानां परिहाराय ते जनानुपदिशन्तीत्यपि । तथा च वेदानामपि तादृशयोगिकृतत्वकल्पनयैव सामंजस्येऽप्रत्यक्षस्येश्वरस्य कल्पना निष्फलेति चेन्न । योगिनां सामर्थ्यस्य जन्यतया कार्यत्वं निर्विवादं । तथा च तदुपाया अपि आवश्यकाः। तथा च तेषामुपायानामुपदेश आवश्यकः। स च येनानुष्ठितः स ईश्वर इति स्वीकर्तव्यमेव । किं च तेषां नानात्वेन वैमत्यस्य संभवादेकस्यैवोपदेशकस्य कल्पनोचितेति परमात्मसिद्धिः ।

---

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


निरूपितानि आस्तिकदर्शनेषु चतुर्णां न्यायवैशेषिकसांख्ययोगनामभिर्भिन्नानामास्तिकानां दर्शनानि। तत्र न्यायवैशेषिकयोर्यद्यपि अस्ति शब्दप्रामाण्यं तथापि तर्कस्यानुमानापरपर्यायस्य मुख्यं प्रामाण्यं। शब्दस्य तदनुरोधेन प्रामाण्यं। सांख्ययोगयोश्च तर्कस्येव शब्दस्यापि समं प्रामाण्यं। क्वचित् स्थलविशेषे शब्दस्यैव प्रामाण्यं नानुमानस्येति वृत्तं। अधुनाऽलौकिके विषये सर्वथा शब्दस्यैव प्रामाण्यं। क्वचित्तदनुरोधेनाऽनुमानस्यापीति वदतोः पूर्वोत्तरमीमांसानाम्ना भिन्नयोरास्तिकदर्शनयोर्विवेचनं कर्तुमिष्टं। तत्र वैदिकः पूर्वमीमांसको ब्रूते—अस्तु नाम योगिनां सामर्थ्यं। तथापि तत्र शब्दस्यैव प्रामाण्यं नान्येषामित्यंगीकर्तव्यं। न हि योगसामर्थ्यमस्मादृशां जीवानां प्रत्यक्षेण द्रष्टुं शक्यं। तस्माच्छब्दमेकं विहाय नान्यन्निःसंदिग्धं प्रमाणं केनापि स्वीकर्तुं योग्यं। शब्दोऽपि द्विविधोऽलौकिको लौकिकश्च। तत्र लौकिकः केनापि पुरुषेण स्वार्थमभिलक्ष्योच्चारित इति संदिग्धप्रामाण्यः प्रमाणमेव भवितुं नार्हति। न हि नाहं वञ्चक इति शतशोऽपि वञ्चकेनोक्ते शब्दे कश्चन प्रामाण्यमंगीकरोति। प्रमाणस्य चैष स्वभावो यत्तेन निःसंदिग्धेन भाव्यं। प्रमेयनिर्णयार्थं समानीतं प्रमाणपि संदिग्धं भवेन्नूनं जगत्यान्ध्यं प्रसज्येत। एवं स्थिते लौकिकस्य शब्दस्य संदिग्धप्रामाण्यतया न प्रामाण्यं। अलौकिकश्च शब्दो वेदरूपः सर्वथा प्रमाणं। स च यदि पौरुषेयस्तदा तस्याऽपि लौकिकशब्दवत् संदिग्धप्रामाण्यतया प्रामाण्यं न भवेत्। तथा च जगति आन्ध्यं दुर्वारं। तस्मादगत्या तस्यापौरुषेयत्वं पुरुषसंबंधाभावरूपमवश्यमेष्टव्यं। तथा च सर्वप्रमाणप्राणभूतो वेदो यद्वदति तत् स्वीकर्तव्यं। स तु विधिनिषेधात्मक एव प्रमाणं। अन्यच्च परंपरया तस्यैवोपकारकमिति न स्वातंत्र्येण प्रमाणमिति।

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

# एकादशं सोपानम् ।

## पूर्वमीमांसादर्शनम् ।

| प्रश्नाः — | उत्तराणि :— |
| --- | --- |
| १ किं ज्ञेयम् ? | १ कर्तव्यं । तदनुरोधेनान्यत् सर्वं । |
| २ कीदृशो ज्ञाता ? | २ विहितकर्तव्यसमर्थोऽधिकारी । |
| ३ अज्ञानस्य स्वरूपं किं ? | ३ स्वस्मिन् कर्तव्यविधानासामर्थ्यभावनं । |
| ४ दुःखस्य स्वरूपं किं ? | ४ तन्मूलको मानसस्तापः । |
| ५ ज्ञानस्य स्वरूपं किं ? | ५ कर्तव्यविधानभावना । |
| ६ दुःखध्वंसस्य (मोक्षस्य) स्वरूपं किं ? | ६ तन्मूलिका मानसी शान्तिः । |
| ७ एतेषु प्रमाणं किं ? | ७ अपौरुषेयो वेदः। तदनुसारि प्रत्यक्षमनुमानं च । |

**कर्तव्यं श्रुतितो विदन्ति मनुजाः कृत्वा लभन्ते सुखं ।**
**निर्दुष्टा श्रुतिरेव मानमपरं तत्संमतं मन्यते ॥**
**मुक्तौ साधनमिष्टकामरहितं कर्माग्निहोत्रादिकं ।**
**नो ईशो न च चित्तवृत्तिरमला ज्ञानं न मीमांसकः ॥ १ ॥**

१

इह जगतीतले यद्यच्छास्त्रपदेन निगद्यते तत् सर्वं प्रवृत्तिनिवृत्त्यन्यतरपरं । मानवान् हि असंस्कृतचेतसो योग्यमार्गोपदेशेन संस्कृताचित्तान् विधातुं किल शास्त्रं प्रवृत्तं । न चायमुद्देशः केवलं सिद्धपदार्थान्वाख्यानेन संभवेत् । अतः शास्त्रमुपरिकथितलक्षणमेव भवितुमर्हति । किं च यानि हि प्रत्यक्षादीनि प्रमाणानि तानि च पश्वादिभिः समानि। न च मानवेन पशुना भवितव्यं । तस्मात् पशूनामगम्यो योऽलौकिकार्थस्तस्य गमकं

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


यत् प्रमाणं तदनुषंगित्वात् खलु प्रत्यक्षादिषु प्रमाणत्वव्यवहारः । अपि च प्रमाणेन खलु प्रमेयं ज्ञात्वा तल्लाभेन कृतकृत्यता संपादनीयेति खलु सर्वेषामभीष्टं । तत्र सिद्धपदार्थेषु जिज्ञासैव नोदेति । सिद्धत्वात्तेषां । तत्राप्राप्येऽर्थे जिज्ञासा भवति । तस्य प्राप्तिमार्गं समुपदिशच्छास्त्रं प्रमाणं भवति । यथा खलु पान्थः कंचन ग्रामविशेषं गन्तुकामो मार्गमजानन् कमपि पृच्छति ततश्च मार्गं ज्ञात्वा गच्छन् तं ग्रामं प्राप्नोति, एवमेव पुरुषार्थमजानानः पुरुषः शास्त्रं पुरुषार्थोपयोगिनं मार्गं पृच्छति ततश्च तं ज्ञात्वा तथा कुर्वन् लभते च पुरुषार्थं । तस्मात् प्रवृत्तिनिवृत्त्यन्यतरपरं शास्त्रमेव प्रमाणं नान्यत् इति सिद्धं । एवं स्थिते तेन शास्त्रेण यत् प्रतिपादितं तदेव ज्ञेयमित्यर्थात् सिध्यति । ननु ज्ञेयं नाम ज्ञानविषयः । स च घटादिः । यदा हि मानवो नेत्रे समुद्घाट्य पश्यति तदा घटेन साकं चक्षुःसंनिकर्षे सति अयं घट इति ज्ञानं जायते । तन्न प्रवृत्तिनिवृत्त्यन्यतरपरशास्त्रजनितं । तथा च तद्विषयीभूतस्य घटस्य कथं ज्ञेयत्वं ? सत्यं । न केवलं चक्षुषः समुद्घाटनेन घटस्य ज्ञानं जायते किंतु पिपासाकुलः पिपासां शमयितुमिच्छुः जलमुद्दिधीर्षुर्घटमभिवांञ्छति तदा घटचक्षुःसंयोगे घटस्य ज्ञानं जायते । तत्र प्रवृत्तिविषयत्वात् घटस्य ज्ञेयत्वं न स्वातंत्र्येण । यदि नैवं, तदाऽऽपणे गच्छतस्तत्रस्थैः सर्वैः पदाथः सह चक्षुःसंनिकर्षस्य सत्त्वात् सर्वेषां ज्ञानं कुतो न जायत इति वक्तव्यं । मन्मते तु तत्र प्रवृत्त्यभावादेव न ज्ञानं । नापि जिज्ञासा । तथा च शास्त्रेण प्रतिपादितो विषय एव ज्ञेय इति निर्विवादं । शास्त्रे च नित्यानि कानिचिदनित्यानि कानिचित् कानिचिदैहिकफलानि कानिचिदामुष्मिकफलानि कर्माणि कथितानि । तत्रैहिकफलानामपि कर्मणां क्षणविध्वंसित्वात् कथं तेभ्यः फलमित्याशंका सर्वेषां भवति सुतरां चामुष्मिकफलानां कर्मणां विषय इति तामाशंकां निवर्तयितुं शास्त्रं जगदुत्पत्तिं तथा भोक्तुः स्वरूपं च प्रतिपादयति । न स्वातंत्र्येण । स्वातंत्र्येण तेषां

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



विचारस्य निष्प्रयोजनत्वात् । नन्वेवमपि जगदुत्पत्त्यादिकं ज्ञेयत्वेन सिद्ध-मेवेति चेन्न, गौणत्वेन तत्सिद्धं । न तु प्रामुख्येन । प्रामुख्येन तु कर्तव्यस्यैव ज्ञेयत्वं । यथा हि ब्राह्मणभोजने कर्तव्ये ब्राह्मणानां लक्षणविज्ञानस्य न प्राधान्यं तथैव जगदुत्पत्त्यादीनां बोध्यं । तत्र यदि पाञ्चभौतिको देह एव भोक्ता तदा तस्यैवात्र विनाशात् कथं कर्मफलभोगः ? तस्याभावे शास्त्रमप्रमाणं भवेदिति स कीदृश इति विचार्यते । तदनुरोधात् पञ्चानामपि भूतानां तथा मनआदीनां जडपदार्थानामुत्पत्तिस्तथा स्थितिलयौ कथं भवत इत्यपि विचार्यते । तत्र सृष्टेरुत्पत्तिस्थितिलयेषु साक्षात् मीमांसकानां नास्ति विशेषतो वक्तव्यं । तद्विचारस्याप्रस्तुतत्वात् । केवलं विचारितेषु दर्शनेषु केषां विचाराः शास्त्रसंमताः शास्त्रप्रतिपाद्यकर्तव्यांशस्योपकारका इत्येव तैर्विचार्यते । स्थिते चैवं सांख्यविचारिताः पदार्थाः शास्त्रसंमता इति त एव स्वशास्त्रे स्वीक्रियन्ते । तथाहि । जगत उत्पत्त्यादिकारण-मेकमनेकं वेति विचारे एकमित्यत्र शास्त्रमनुकूलं वर्तते । तथा च शास्त्रं-'तस्मादेतस्मादात्मन आकाशः संभूतः, यतो वेमानि भूतानि जायन्ते' इत्यादि । अत्र च श्रुतमेकत्वं जगत्कारणस्य सांख्यमतस्यानुकूलं न पुन-र्नैय्यायिकस्य । दूरे चान्येषां । तस्मात् सांख्यशास्त्रे यत् जगत उत्पत्त्यादिकं वर्णितं तत् सर्वं मीमांसकानां सम्मतामिति बोध्यं । तथा च पूर्वमीमांसक-मते ज्ञेयं प्रथमतो विहितं कर्तव्यं । तच्च शास्त्रप्रतिपादितं । तस्य च साधनीभूतत्वेन ज्ञेयं गौणं सांख्यसिद्धान्तानुसारि जगदुत्पत्त्यादिकं सर्व-मिति संक्षेपतो ज्ञेयम् । मुख्यं ज्ञेयं कर्तव्यानां कर्मणां स्वरूपं तच्च मीमांसाशास्त्रे सविस्तरमुपपादितमिति नेह प्रपञ्च्यते ।

२

निरूपितं संक्षेपेण ज्ञेयस्य स्वरूपं । अधुना क्रमप्राप्तं ज्ञातुः स्वरूपं वक्तव्यं । यद्यपि तदपि गौणमेव तथापि न जगदुत्पत्त्यादिवदत्यन्तं गौणं । कर्मफलस्य भोक्त्रा संबंधात् । तत्र यानीमानि अलौकिकफलानि कर्माणि

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

'स्वर्गकामो ज्योतिष्टोमेन यजेत' इत्यादीनि तानि अप्रमाणानीति तु न संभवति। स्वयंसिद्धत्वाच्छास्त्रप्रामाण्यस्य। कथमिदमिति चेदेतद् सविस्तरमग्रे उपपाद्यते। तथा च भोक्तुरनित्यत्वे एतेषामप्रामाण्यं दुर्वारमिति तत्परिहाराय स नित्यः परिकल्प्यते। तथापि स न्यायमतवन्न जडः किंतु चेतनः। यदि भोक्ता जडः स्यात्तदा पाषाणात्तस्याविशेषाद्भोगाभावप्रसंगः। तस्मादगत्या स चेतन इति अंगीकरणीयं। तथापि सांख्यमत इव न स चेतनः किंतु चिदचिद्रूप इति वक्तव्यं। अन्यथा तस्य जडधर्मस्याज्ञानस्याश्रयत्वं न स्यात्। न हि सूर्ये तमास्तिष्ठति। नाप्यन्यत्र तिष्ठति, तस्याज्ञातत्वप्रसंगात्। तथा च सूर्ये एव यथा तेजास्तिमिरयोराधिकरणता तथैव ज्ञानाज्ञानाश्रय आत्मेति चिदचिद्रूप एव सः। नापि सांख्यमत इवाकर्ता। तथा सति कर्मणः फलं तस्मिन्न स्यात्। न ह्यकर्तुः फलमिति लोकेऽपि दृष्टं। ननु कर्मणः फलं भोगः प्रकृतिनिष्ठोऽपि यथा पुरुषे समारोप्यते तथैव कर्तृत्वमपि कुतो नेति वाच्यं। भोक्तृत्वस्य तथा कर्तृत्वस्यात्मनि कल्पनायां नानुमानं प्रमाणं किंतु शास्त्रमेव। तच्चात्मनः कर्तृत्वभोक्तृत्वकल्पनेऽनुकूलं नानुमानेन गौणं कल्पयितुं युक्तं। स्वर्गकामो यजेत इति हि शास्त्रं यागस्य कर्तुः स्वर्गफलभोक्तृत्वं वदति। तथा च श्रुतानुमितयोः श्रुतसंबंधो बलीयानिति न्यायेन श्रौतं कर्तृत्वं तथा भोक्तृत्वं जीवे कल्पयितुं योग्यं। तस्मात्कर्ता तथा कर्मफलानां भोक्ता नित्यश्चिदचिद्रूप आत्मेति मीमांसकसिद्धांतः। स च प्रतिशरीरं भिन्नत्वान्नाना। एकत्वे भोगवैचित्र्यसंपादकस्य कर्मवैचित्र्यस्योपदेशः शास्त्रकृतो व्यर्थः स्यात्। शास्त्रं हि 'वसन्ते ब्राह्मणोऽग्नीनादधीत, ग्रीष्मे राजन्यः, शरदि वैश्यः' इत्यादिकं तत्तद्वयोऽवस्थावर्णाश्रमादिकं निमित्तीकृत्य तानि तानि कर्माणि विधीयमानमवश्यमात्मभेदमंगीकुरुते। ननु स विभुर्वाऽणुर्वा। शास्त्रं तूभयत्राप्यनुकूलं। तथा च शास्त्रं "महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति"। स एष अणुः अणोरणीयान्। श्यामाको वा श्यामाकतण्डुलो वेत्यादिकं। उच्यते। शास्त्र-

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


स्योभयत्रानुकूलत्वेऽपि सुखदुःखादीनां प्रत्यक्षत्वे आश्रयगतस्य महत्त्वस्य कारणत्वेन क्लृप्ततया विभुत्वमेव तस्योचितमिति बोध्यं।

३

निरूपितं ज्ञातुः स्वरूपं। साम्प्रतमज्ञानस्य स्वरूपं वक्तव्यं। यद्यपि 'अतस्मिंस्तद्बुद्धिः' इति सर्वसंमतं लक्षणमज्ञानस्य मीमांसकानामपि संमतं तथापि तद्विशेषं प्रति वैमत्येनाज्ञानस्य विषेशलक्षणं वक्तव्यमेव। तच्च शास्त्राप्रमाण्यमतिरिति संक्षेपत उच्यते। तथाहि। जायमानो हि जीवः स्वचित्तवशात् प्राय ऐन्द्रियकेषु अर्थेषु प्रवर्तमानः सुखलवं लब्ध्वाऽऽत्मानं कृतकृत्यं मन्वानः पुनस्तादृशसुखलाभाय प्रवर्तते। तादृशप्रवृत्तिप्रतिबंधकान् द्वेष्टि। आपातरमणीयामिन्द्रियप्रवृत्तिं सुखसाधनत्वेन प्रमाणं मन्वानस्तन्मतिर्भवति। तादृशप्रवृत्त्यनुकूलमनुमानमपि प्रमाणत्वेन मन्यते, शब्दमपि तथाभूतं। यानि चेन्द्रियार्थसुखप्राप्तिविरोधीनि शब्दरूपाणि वचनानि शास्त्रे समुपलभ्यन्ते तान्यप्रमाणानि मन्वान उदास्ते विरुद्धं वा समाचरति। तेन स सततं दुःखमनुभवति। 'न सुरां पिबेत्' इति हि शास्त्रवचनमप्रमाणीकृत्येन्द्रियसुखलालसाव्याकुलो हि कश्चन मानवो यथेच्छं सुरां पिबेत्तदा स किं सुखी भवेत्? स च दुःखांभोधौ निमग्नो दुःखेनैव प्राणांस्त्यजेत्। ननु यदि कश्चन मितपानं सुरायाः कुर्यात्तदा स सुखी भवेन्न वा? यदि नेत्युच्यते तदा प्रत्यक्षविरोधः। अथ भवेदित्युच्यते तदा शास्त्रप्रामाण्यं कथं? उच्यते। न भवेदेवेति प्रथमः पक्ष एव श्रेयान्। न च प्रत्यक्षविरोधः। कतिपयदिनसुरापानेनौत्सुक्योल्हासलाभेऽपि यथा यथा सुरापानं वर्धेत तथा सर्वेषामिन्द्रियाणां शक्तिदौर्बल्यमेव भवेत्। इन्द्रियसुखानां चैष नियमो यत्तानि क्रमेण सेवमानानि अधिकमधिकमेव वाञ्छन्ति। तदाधिक्यलाभाय तत्कारणानामपि वृद्धिमेव तान्यपेक्षन्ते। तथा च यथा क्रमेण वर्धमानो वन्हिः काष्ठान्याधिकानि वाञ्छति तथैवेन्द्रियसुखानि भुज्यमानानि साधनाधिक्यमपेक्षन्ते। न च

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

परिमितशक्तिस्तावन्ति संपादयितुं शक्नोति । अतो दुःखमेव स लभते न सुखं । किं चैन्द्रियसुखानि परेषामपीडया लब्धुमशक्यानि । तथा चैन्द्रियसुखार्थिना स्वसुखार्थं परपीडनमवश्यं कर्तव्यं । तेऽपि पीडिता जना दुर्बलाः प्रकटं प्रतिकर्तुमक्षमा मनःसु निभृतं द्वेषेण ज्वलन्ति । अनुकूलं समयं प्रतिपालयन्ति । लब्ध्वा च तादृशं समयं तं नाशयितुं चेष्टन्ते । तेन स परं दुःखायते । तस्मादिन्द्रियेषु तथाऽनुमाने च प्रामाण्यबुद्धिं विहाय यः शास्त्रप्रामाण्यमेवावलंबते स एव सुखी भवति । तदविरोधेन प्रत्यक्षस्य तथाऽनुमानस्य च प्रामाण्यस्वीकारेऽपि न क्षतिरिति । यथा शास्त्रेऽप्रामाण्यबुद्धिरज्ञानं, एवं स्वस्मिन् शास्त्रावि-हितकर्मानुष्ठानसामर्थ्याभावविज्ञानमप्यज्ञानमेव । बहवो हि जना ऐन्द्रिय-सुखपरित्यागेऽशक्ता आत्मदौर्बल्यमपरुपितुकामाः स्वस्मिन्नशक्तिविशेषं देशकालकल्पितं भावयन्ति, साऽपि भावना तेषामज्ञानमूलिकैव । "अहरहः संध्यामुपासीत" इति हि शास्त्रं । तस्य प्रामाण्यमभ्युपगच्छन्नपि प्रभाते शीतवातजन्यं दुःखमसहिष्णुर्न संध्यामुपास्ते । चिन्तयति च यद्यहम-धुनोत्थाय संध्योपासनं करिष्यामि तर्हि ज्वराक्रान्तो भविष्यामि तेन महदनिष्टं भविष्यतीति । मन्वानश्चैवं स्वपिति न संध्यामुपास्ते । नापि मनसीत्थं कुरुते—अनेन विहितकर्माननुष्ठानेन शास्त्रस्याप्रामाण्यं मया समा-पादितमिति । इदमपि अज्ञानमूलकमेव । सुस्वरूपां परकान्तां तरुणीं पश्यन् तस्यै स्पृहयति । प्रयतते च तां प्राप्तुं । तदा नैवं मनसि कुरुते 'न परदारान् गच्छेत्' इति शास्त्रानुज्ञोल्लंघनजन्यं पातकं मयि संभवेदिति । इदमपि अज्ञानमूलकमेव । तस्यास्याज्ञानस्य नानाविधाः शास्त्रविहितत्याग-निषिद्धानुष्ठानमूलकपापसंचयकारणीभूता वेदितव्याः । शास्त्रविरुद्धाचार-प्रवृत्तिर्जीवानामज्ञानमूलिकेति संक्षेपः ।

४

अज्ञानं निरूपितं । इदानीं तत्कार्यं दुःखमुपपादनीयम् । तच्च


Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

शास्त्रविहिताचारानाचरणजन्यस्य निषिद्धाचरणजन्यस्य वा पापस्य फलं। 'न सुरां पिबेत्' इति शास्त्रे सुरापानक्षणिकसुखमोहमुग्धचेताः समुल्लंघ्य प्रतिषिद्धं सुरापानं समाचरति। तेन जन्यपापस्य फलं दुःखात्मकं मनःसंतापकं स लभते। सुरापो हि प्रव्यथितगात्रस्तादृशं दुःखातिरेकं समनुभवति यद्वक्तुमपि अशक्यमिति विदितमेव सर्वेषाम्। तद्धि दुःखं न सांख्यवच्चेतसो धर्मः किंतु आत्मनः कर्तुरेव। तथा सत्येव तस्य पापफलत्वमुपपद्यते। यदि तु भोगः पुरुषधर्मः, दुःखं तु चेतसो धर्मः स्वीक्रियते, तदा कार्यकारणयोः सामानाधिकरण्यं न स्यात्। यदि त्वेतत्परिहारार्थं चेतस एव भोगस्तदा जडस्य कथं भोग इति विचारास्पदम्। किं च तदतिरिक्तस्य पुरुषस्य सत्त्वे प्रमाणमपि वक्तव्यं भवेत्। तस्मादेतेषां सर्वेषां दोषाणां परिहाराय भोक्तुरात्मन एव कर्तृत्वं तत्फलभोक्तृत्वं च स्वीकरणीयम्। न च न्यायमतप्रवेशः। चिदचिद्रूपस्य विशेषात्। तद्धि दुःखं न क्षणिकं, नापि नित्यं किंतु यावत् कर्मस्थायीति मन्तव्यम्। यथा हि तैलेन प्रज्वालितो दीपो यावत्तैलमेक एव, तथैवैकेन शुभेनाशुभेन वा कर्मणा प्रवर्तितं सुखं वा दुःखं वा तावत्कालिकमेकमेव। तत्र दुःखकारणं शास्त्राप्रामाण्यबुद्धिरिति पूर्वमेव निरूपितम्। तस्या विविधरूपतया तज्जन्यानां दुःखानामपि विविधरूपत्वमंगीकर्तव्यमेव। यत्तु तद्दुःखं क्षणिकमिति ये वदन्ति, तैः कारणसत्त्वेऽपि कार्यनाशः किंमूलक इति वक्तव्यम्। शास्त्रविरोधश्च— 'ब्रह्महा खलु अनन्तकालं दुःखभाजनं भवति' इति। तस्मात्कर्मकालस्थायी आत्मगुणविशेषः पापफलं दुःखमिति ज्ञेयमिति संक्षेपः।

५

अधुना ज्ञानस्वरूपं निरूपणीयं। तत्र केचनेन्द्रियार्थसंयोगाज्जायमानो मानसो गुणविशेषो ज्ञानमिति वदन्ति। अन्ये च पूर्वोक्तसंयोगजन्यमात्मगुणविशेषं निगदन्ति। वयं तु ब्रूमः। ज्ञानं नाम मानसी क्रिया।

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



तथाहि । इन्द्रियेण साकं चक्षुषः संनिकर्षे मनसि चात्मना संयुक्ते ज्ञानं संजायत इति सर्वेषामेवानुभवः। तत्र मनःक्रियाजन्य आत्मनि क्रियाविशेष एव ज्ञानं। यावत्कालमिन्द्रियेण सहार्थस्य तथेन्द्रियेण सह मनसः संयोग-क्रिया प्रचलति तावत्कालं ज्ञानसंततिरपि तिष्ठतीति निर्विवादं । अत एव यथा तडागे वायुसंयोगजन्याः लहर्यः क्रियाविशेषात्मिकास्तादृशलहरीजन्या अन्या लहर्योऽपि क्रियाविशेषा एव, तथैवेन्द्रियार्थसंयोगजन्यं ज्ञानमपि क्रियाविशेष एव। यदि तु ज्ञानं न क्रिया तदा ज्ञानार्थमुपदिष्टा विधयो निर-र्थकाः स्युः। तथाहि । शास्त्रं हि कर्तव्यमुपदिशति । तत्र यदि ज्ञानस्य न क्रियात्वं तदा तदुपदेशः कथं ? उपदेशो हि लिङ्लोट्तव्यत्-प्रत्ययरूपेण विधिना भवति । दुग्धं पिब विषं मा भुंक्ष्व । 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म। तज्जलानिति शान्त उपासीत' इत्यादि ज्ञानो-पदेशकानां विधीनामानर्थक्यं भवेत् । न चैतन्न्याय्यं। तथा सति शास्त्रा-प्रामाण्यप्रसंगो दुर्वारो भवेत् । ननु शास्त्रस्यैकदेशस्याप्रामाण्येऽपि 'सत्यं वद, धर्मं चर,' इत्यादीनां प्रामाण्यमस्त्येवेति कथं शास्त्रस्याप्रामाण्यमुच्यते ? उच्यते । शब्दस्य लौकिकस्य वाऽलौकिकस्य वैष स्वभावो यत् तत्रा-प्रामाण्यशंकायां सर्वस्यापि अप्रामाण्यं दुर्वारं भवति । नच कोऽपि मानवः सर्वदा मिथ्यैव वदतीति वक्तुं शक्यं। कदाचित् सत्यमपि वदति, कदाचि-दसत्यमपि वदति, परन्तु एकदा मिथ्यावदनेन दूषिते मानवे जनाः कदाऽपि न विश्वसन्तीति सर्वजनीनं । तस्मादांशिकमपि अप्रामाण्यं शास्त्रस्य नांगीकरणीयं । तथा सति सर्वाप्रामाण्यं दुर्वारं। प्रकृत-मनुसरामः । तथा च प्रदर्शितज्ञानोपदेशकविधीनामप्रामाण्यपरिहाराय ज्ञानस्य क्रियारूपत्वमंगीकार्यं । न च ज्ञानस्य क्रियारूपत्वे तत्र यथेष्ट-व्यवहारापत्तिः, यथा हि पद्भ्यां गच्छति, अश्वेन गच्छति, न वा गच्छति। तथैव शास्त्रेऽपि भवेदिति वाच्यं । शास्त्रप्रामाण्यबुद्धेर्नियामकत्वात् । यथा हि लोके नियामकाभावाद्यथेष्टं व्यवहारो न तथा शास्त्रे । प्रामाण्यबुद्धिः

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



सदैव यथेष्टव्यवहारं निरुणद्धि। एतदेव शास्त्रस्यालौकिकत्वं। तथा सत्येव शास्त्रस्याऽपि मोक्षोपयोगित्वं सिद्ध्येत्। तथाहि। यो हि संसारे समासक्तचेता जीवो नानाविधानि पापानि कर्माणि कुर्वन् प्रत्यहं दुःखाग्निना दंदह्यमानचेताः कदाचिन्निर्वेदं प्राप्तोऽस्मात् दुःखांभोनिधेरात्मानं मोचयितुमिच्छति तदा तं प्रति शास्त्रं क्रमेण वैराग्यमुपदिशत् ध्यानधारणादिकं वा नित्यकर्मानुष्ठानं वा समुपदिशतीति सर्वैरपि दार्शनिकैर्वक्तव्यं। केवलं 'परमात्माऽस्ति सच्चिदानन्दरूपः, सर्वं यद्दृश्यते तन्मिथ्या' इत्यादि कथनेन कस्य लाभो भवेत्। सर्वमिदमनित्यं तस्मात्त्वमत्रासक्तिं मा कुरु इत्युपदेशेऽस्ति तथाचरणरूपां क्रियां कर्तुमिच्छा। तस्मान्न केवलं वस्तुस्वरूपबोधनं ज्ञानं सुखसाधनं किंतु तथा ज्ञात्वा तदनुष्ठानरूपं। तथा चागतं ज्ञानस्य क्रियास्वरूपत्वं। तत्र मोक्षोपयोगिनो ज्ञानस्याऽपि स्वरूपे महती विप्रतिपत्तिः? तथाहि। केचन शून्यमिति भावयन्ति। केचिन्नित्योऽहमिति भावयन्ति। अन्ये तु सच्चिद्रूपमात्मानं भावयन्ति। परे तु सच्चिदानन्दरूपमात्मानं भावयन्ति। एताः सर्वाः कल्पनाः स्वस्वकपोलकल्पिताः सन्तिं। तत्र शास्त्रं यद्वदेत्तदेव प्रमाणत्वेन स्वीकरणीयं। एतेषां सर्वेषां पदार्थानामलौकिकत्वेन तत्र शास्त्रमेकमुत्सृज्य नान्यत्प्रमाणं भवितुमर्हति। शास्त्रं च स्वतःप्रमाणमिति वयमनुपदमेवोपपादयिष्यामः। शास्त्रं च नित्यानि कर्माणि चोदयति। तेषामकरणे प्रत्यवायं ब्रूते। न हि प्रत्यवायवान् कश्चन मोक्षेऽधिकारी भवितुमर्हति। तस्मात्प्रत्यवायपरिहारार्थं नित्यकर्माणि मुमुक्षुणाऽनुष्ठेयान्येव। प्रारब्धकर्मणां तु भोगादेव क्षयः। संचितानां तु नित्यकर्मणामाचरणात् क्षयः। आसक्त्यभावादेव क्रियमाणानामभावः। एवंरीत्या सर्वकर्मक्षये भोगस्याभावादेवात्मा मुक्तो भविष्यति। न तु एतदर्थं ज्ञानस्यास्ति अपेक्षा। ननु शास्त्रविरोधः? सत्यं। 'तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति' इत्यत्र विहितं ज्ञानमुपासनात्मकं वा भावनात्मकं वा कर्मरूपमेव। तथा च नित्येषु कर्मसु तस्याऽपि

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



अन्तर्भावः कर्तव्यः । यदि च केवलं नित्यस्य वा सच्चिदानन्दरूपस्य वाऽऽत्मनो ज्ञानमेव कारणं तदा यः कोऽपि संसारी अनन्तकल्मषराशिकलुषितचेता अपि एतद्वाक्यं पठित्वा तदर्थं चावगम्य कृतकृत्यः संसारपाशान्मुच्येत । न चैवं सुलभो मोक्षः कस्यापि मते । अत एव स परमपुरुषार्थ इत्युच्यते । ननु नैवं केवलं वाक्यज्ञानं तत्त्वज्ञानपदेन विवक्षितं, किंतु अनुभवात्मकमिति चेदागतं मार्गेण। कोऽयमनुभवः? चिरं शास्त्रविहितकर्मानुष्ठानजन्या दृढा चित्तवृत्तिरेवानुभवो नान्य इति सर्वसंमतं । तथा च शास्त्रप्रामाण्यस्वीकारपूर्वकं यच्छास्त्रीयकर्तव्यानुष्ठानं तदेव ज्ञानपदेनेह विवक्षितमिति बोध्यं ।

६

निरूपितं ज्ञानस्य स्वरूपं । अथ तत्फलीभूतस्य दुःखाभावस्य स्वरूपं वक्तव्यं । नित्यकर्मानुष्ठानेन विफलीकृते संचितकर्मजाते निर्मल आत्मा आसक्तिरहितः शास्त्रप्रामाण्यदत्तहस्तावलंबो न शोचति । यानि तु प्रारब्धदुःखानि तानि च निरासक्त्या सेवमानो न विरुद्धं वाऽनुकूलं वा चेष्टते । तेन न कोऽपि संस्कार आत्मनि संजायते । संस्काराभावाच्च नाज्ञानमपि कार्यकरणसमर्थं भवति । ननु मुक्तावस्थायां मीमांसकमतेऽज्ञानं वर्तते न वा ? यदि वर्तते तदा मोक्षस्यासंभवः । न ह्यज्ञानी मुक्तो भवितुमर्हति । यदि तु न वर्तते तदा तस्य नाशः केनेति वक्तव्यं । न हि नित्यकर्माचरणात्मकेन ज्ञानेन तस्य नाशो भवितुं योग्यः, तस्याविरोधात्। एकं विरोधि द्वितीयेन विरोधिना निवर्त्यते तेजसा तम इव । न चात्र नित्यकर्मणा सहाज्ञानस्य विरोधः। अज्ञानस्य विरोधि ज्ञानं न तु कर्मेति चेत् । सत्यं । अज्ञानस्याऽपि कर्मरूपत्वात् । शास्त्रे प्रामाण्यबुद्धिरहितः खलु प्रतिषिद्धानि कर्माणि समाचरति, तेन जीवो दुःखमनिशं भुंक्त इति पूर्वमेवोपपादितं । तत्र दुःखस्य कारणं प्रतिषिद्धाचरणं तज्जनकं शास्त्राप्रामाण्यज्ञानं । तथा च साक्षात्कारणं बंधस्य प्रतिषिद्धाचरणमिति

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



तदेव ज्ञानेन विहितकर्मानुष्ठानरूपेण निवर्त्यते। किं च यथा हि ज्ञानं कर्मरूपमुपपादितं तथैवाज्ञानमपि कर्मरूपमुपपादयितुं शक्यं। तथाहि। यथाहि ज्ञानं दृष्टोऽनुभवः कर्मरूपस्तथाऽज्ञानमपि तद्विरोधिनी चित्तवृत्तिरेव। वृत्तिश्च कर्मरूपेति मीमांसकासिद्धान्तः। न हि गुणक्रियाभिन्नं तदाश्रयीभूतं द्रव्यं नाम किंचित्। तस्माद्विरोधिकर्मकाले विरोधिकर्मणोऽसत्त्वं न्यायप्राप्तमिति न मोक्षेऽज्ञानस्य संभवः। अपि च ये खलु ज्ञानस्य विरोधित्वादज्ञानस्य निवृत्तिमुपपादयन्ति तैरज्ञानस्य निवृत्तिपदार्थो विवेचनीयः। यद्यभावस्तदा सतोऽसत्त्वापादनं शास्त्रविरुद्धमिति अप्रामाणिकमेव। न हि सदसद्भवति। अथ नाशस्तदाऽपि पूर्वोक्तैवापत्तिः। अतस्तिरोभावनं तद्वक्तव्यं। तच्च कर्मस्वरूपान्नातिरिच्यते। त्रिविधं हि कर्म—प्रादुर्भवनं, तिरोभवनं, स्थितिश्च। यत्र चैतदुभयं प्रादुर्भवनं तिरोभवनं च नास्ति सा स्थितिरित्युच्यते। तथा चाज्ञानस्य तिरोधाने कर्मस्वरूपत्वं तस्य निराबाधमेव। तत्र दुःखध्वंसो नाम न पदार्थान्तरं किंतु अधिकरणस्वरूप एव सः, स चात्मस्वरूपान्नातिरिच्यते। न हि केवलमासक्तिरहितं कर्तव्यविधिपालनापनीतसकलकल्मषमात्मस्वरूपं विहाय दुःखाभावो नाम स्वतंत्रः कश्चन पदार्थः। स चापूर्वशान्तिस्वरूप इति तस्य परमपुरुषार्थत्वमपि सिध्यति।

७

प्रमेयं निरूपितं। अधुना प्रमाणं निरूपणीयं। तत्र लौकिकेषु पदार्थेषु प्रत्यक्षमनुमानं लौकिकः शब्दश्च कामं प्रमाणतां लभन्तां, परन्तु अलौकिकेषु पदार्थेषु पुनर्जन्मादिषु वाऽऽत्मादिषु वा परलोकादिषु वा सर्वथाऽलौकिकेनैव केनापि प्रमाणेन भवितव्यं। यमर्थं पशवो न जानन्ति तमर्थं मानवाः पशुसाधारणेन प्रमाणेन प्रमिण्वन्तीति कथनं कथं प्रामाणिकं भवेत्। तस्मादलौकिकेषु पदार्थेषु अलौकिकमेव प्रमाणं। अत एव मनुष्यानेवाधिकरोति शास्त्रं स्वार्थप्रमितौ न पशून्। तत्र

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

किमिदमलौकिकं प्रमाणं भवितुमर्हति इति चिन्तायां वेद एव तादृशं प्रमाणं भवितुमर्हति । तथाहि । साम्प्रतं प्रचलितेषु सर्वेषु धर्मग्रंथेषु वेद एव परमप्राचीन इति न कस्याऽपि विमतिः । तत्र ये खलु कर्तव्यविधयः समुपदिष्टाः सन्ति, येषामाचरणेन मानवोऽभ्युदयं तथा निःश्रेयसं च लभते, ते किं केनाऽपि समनुभूय लिखिता आहोस्विन्न लिखिता इति विचार्यते । तत्र यद्याद्यः पक्षस्तदा ते किं तेन घुणाक्षरन्यायेन संप्राप्ता आहोस्वित् केनापि विशेषेण प्रमाणेन ? नाद्यः । तथा सति तस्य प्रमेयत्वानुपपत्तेः । न हि घुणाक्षराणि विरचयिता कीटकः प्रामाणिको भवति । नान्त्यः, तथा सत्यनवस्थापत्तिः स्यात् । तस्माद्यानि इमानि अलौकिकपदार्थप्रतिपादकानि वाक्यानि तान्यपि अलौकिकान्येव भवितुमर्हन्ति । किमिदमेतेषामलौकिकत्वमिति चेत् अपौरुषेयत्वमित्यवगच्छ । यथा हि लौकिकानि वाक्यानि प्रमाणान्तरेण प्रत्यक्षेण वाऽनुमानेन वा पदार्थं साक्षात्कृत्योच्चार्यन्ते नैवेमानि तथा, किंतु स्वतःसिद्धानि । ननु तथापि वाक्यत्वं कथं तेषामिति चेदुच्यते । तानि नित्यान्येव वाक्यानि । यद्यपि तत्र पदविभक्त्यादिकं सर्वमुपलभ्यते, तथापि तदपि नित्यमेव । न च लोके यथा रामशब्दं गृहीत्वा तस्य कर्मत्वविवक्षया द्वितीया विभक्तिः क्रियते तथा वेदे भवति । तस्य नित्यत्वात् । यदि नैवमथ च केनापि पुरुषेण विरचितो वेदस्तदाऽप्रमाणं स्यात् । तस्मान्निर्विशेषप्रामाण्यसिद्धये वेदस्यापौरुषेयत्वमेवास्थेयं नान्या गतिरित्यवधेयं । ननु लौकिकपुरुषस्य कामक्रोधाक्रान्ततयाऽप्रामाणिकत्वेन तत्संसर्गात्तदुच्चरितमपि वाक्यमप्रमाणं भवति । तथापि यदि कश्चन रागद्वेषरहितः पुरुषविशेषस्तस्योच्चारयिता भवेत्तदा नैष दोषः । प्रामाण्यमपि आप्तोक्तत्वेन सिध्यतीति चेत् मैवं । कामक्रोधादिरहितस्य शरीरिणोऽभाव एव । न हि एतादृशः कोऽपीह जगतीतले वर्तते यः कामक्रोधरहितः केवलं परेषामनुग्रहायैव प्रयतमानः शरीरी । न च मुक्तात्मनि व्यभिचारः ।

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

कर्तृत्वेन विशेषणात्। यः कर्ता स कामक्रोधादिमानेवेति व्याप्ते-र्निर्दुष्टत्वं। किं च—योऽयमीश्वरो जगत् सृजति तत्र किं प्रयोजनं तद्वक्तव्यं। यदि जीवानुद्धरिष्यामीति संकल्पस्तदा विषमं जगत् संसृज्य तत्र च जीवा-न्निधाय ततस्ततो मोचनार्थं प्रयतिष्यमाणस्येश्वरस्य महत्कारुणिकत्वं प्रकटीकृतं। प्रक्षालनाद्धीति न्यायेन जगतः सर्जनमेव मा भूदिति न भवेद् दुःखस्य लेशोऽपि। किं च विषमं जगत्सृजत ईश्वरस्यैव वैषम्य-नैर्घृण्ये कुतो न? तत्तत्प्राण्यदृष्टवशादिति चेत्तथा सति तेनैवादृष्टेन सर्वसिद्धौ परमेश्वरकल्पना व्यर्था। न चादृष्टजननार्थं तत्कल्पनमिति वाच्यं। वेदविहितप्रतिषिद्धकर्मभ्यामेव तयोर्धर्माधर्मयोरुत्पत्तौ सिद्धायां व्यर्थैवेश्वरकल्पना। न च जगतः कर्तृत्वेनेश्वरसिद्धिः। तस्य नित्यत्वेन कर्तृत्वस्यासंभवात्। तस्मात् केनापि अंशेन सर्वथा प्रमाणीभूतस्य वेदस्य केनापि पुरुषेण साकं संबंधस्य दर्शयितुमशक्यत्वाद्वेदस्यापौरुषेयत्वासिद्धि-र्निर्बाधा। न तस्य वेदस्य प्रामाण्यमनुमानेन कल्पयितुं शक्यं। अनु-मानस्य लौकिकप्रमाणत्वात्। तस्मादलौकिकेषु शास्त्रीयपदार्थेषु शास्त्रं विहाय नान्यत् किमपि प्रमाणमिति ज्ञेयं। तच्च शास्त्रं वेद एव, तस्य पूर्वो-क्तयुक्त्याऽपौरुषेयत्वात्। न च बायबलकुराणादीनां कुतो नापौरुषे-यत्वमिति वाच्यं। तेषां तेषां ग्रंथानां कर्तृणां स्मरणस्य तदनुयायिभिरेवां-गीकृतत्वात्। तदनुयायिन एवायमस्माकं धर्मग्रंथ एतावतः कालात् पूर्वं नासीदित्यंगीकुर्वन्ति। यदि च नैवं वदेयुस्तदा ते आत्मानं ख्रिस्तानुया-यिनो महंमदानुयायिन इति कथं कुतो वा दर्शयेयुः। तस्मादिह जगति एकं वेदं विहाय नान्यः कोऽपि अपौरुषेयो ग्रंथः, अत एव नान्यः कोऽपि वेदाद्ग्रंथः स्वतःप्रमाणमिति स एव सर्वेषां प्रमाणमिति बोध्यं। इदमत्रावधेयं। यथा लौकिकेषु कार्येषु राजाज्ञा स्वतःप्रमाणं, तथैवा-लौकिकेषु कार्येषु सर्वथा वेदाज्ञैव प्रमाणमिति तत्त्वम्।

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


निरूपितं पूर्वमीमांसादर्शनस्य कर्मकाण्डप्रधानस्य स्वरूपं। इदमत्र विचार्यते। कृत्स्नो हि वेदः प्रवृत्तिनिवृत्तिपर इति तु कर्मकाण्डोक्तविधिनिषेधवेदभागमनुलक्ष्य स्वीकृतं तत्त्वं ज्ञानकाण्डोक्तविषयानुरोधेन कथं ग्राह्यं भवेत्। तथाहि। उपनिषच्छब्देन व्यवह्रियमाणो वेदस्यान्ते कथ्यमानत्वाद्वेदान्तशब्देनाऽपि तत्र तत्र समुल्लिखितो ज्ञानकाण्डनामा वेदस्य चरमो भागः सुप्रथितः। तत्र च सृष्टेरुत्पत्त्यादिकमात्मनः स्वरूपं, मोक्षः कथं भवतीत्यादिकं विचारितं। तच्चाबाधितं सर्वथाऽनुभवगोचरीभूतं कदाचित् तात्पर्यवृत्त्या कर्मकाण्डोक्तविध्येकवाक्यतया समर्थनीयमिति तु न श्रेयस्करं। शब्दप्रमाणे यानि प्रामाण्यसाधनानि तेषां तत्राबाधात्। तस्माद्यद्यपि अलौकिकेषु जीवेश्वरमोक्षबंधादिषु शब्दं विना नान्यस्य प्रत्यक्षस्य वाऽनुमानस्य वा प्रामाण्यं, तथापि तेषां स्वरूपं वेदान्तबोधितमेव ग्राह्यं न कर्मकाण्डोक्तमिति तु न्याय्यं। वेदान्ते तेषामेव प्राधान्येन विचारणात्। अतो वेदान्तवाक्यार्थप्रधानमुत्तरमीमांसादर्शनं प्रस्तूयते। तत्र भक्तिकाण्डमप्यत्रैवान्तर्भवतीति भक्तिविचारप्रधानानि श्रीमाध्वरामानुजीयवाल्लभमतानि दर्शितानि। ज्ञानप्रधानं शांकरं मतमप्यत्रैव निरूपितं। ननु कुतो नैषां चतुर्णां दर्शनत्वेनोल्लेखः? उच्यते। पातञ्जलयोगदर्शने जीवस्य 'सच्चित्'—रूपत्वं दर्शितं। अतःपरं आनन्दस्वरूपत्वं दर्शनीयं। तच्चेश्वरकृपया जीवस्य प्रादुर्भवतीति एते आद्यास्त्रयो भक्तश्रेष्ठा मन्यन्ते। शंकरमुनिवर्यास्तु अज्ञाननाशेन स्वस्वरूपमानन्दाख्यं जीवः प्रतिपद्यत इति वदन्ति। सर्वथाऽऽनन्दरूपत्वं जीवस्योत्तरमीमांसादर्शनानुमतमेकमेवेति न दर्शनपदेनोल्लेखः। किं च उपनिषद्वाक्यप्रमाणा ब्रह्ममीमांसा यद्यपि पूर्वोक्तरीत्याऽनुयायिनां योग्यतानुरोधमूलकेन मतभेदेन व्याख्याता, तथापि तादृशमीमांसाश्रयीभूतं ज्ञानकाण्डं त्वेकमेवेति तस्यैकदर्शनत्वमेवोचितं। एवं स्थिते दर्शनानां द्वादशपरिसंख्याऽपि संगच्छत इति ज्ञेयं।

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


## ( माध्वमतस्यावतरणिका ) ।

निरूपिते पूर्वमीमांसादर्शनस्य स्वरूप इयमाशंका । अचेतनं चेतनाधिष्ठितं कार्यं करोतीति सहस्रशो दृष्टाया व्याप्तेः कथं खलु त्यागः कर्तव्यः । जडमदृष्टं सर्वं विचित्रं जगत् निर्मातीति कथं श्रद्धार्हं । शास्त्रप्रामाण्यादिति चेदत्र ब्रूमः । यथा हि शास्त्रं नानाविधभोगस्य कारणं तस्य जीवस्य कर्म वदति, तथा जगतः कर्तारमपि वदति, तत् कुतो नांगीक्रियते ? न च विधिरेव प्रमाणं, प्रवृत्तिनिवृत्तिकारित्वात्, यत्तु प्रवृत्तिनिवृत्त्यन्यतरकारि न वेदवाक्यं तत्खलु सिद्धार्थप्रतिपादकं परंपरया विध्येकवाक्यतापन्नं प्रमाणतां भजत इति वाच्यं । प्रामाण्यं विधेरेव नान्यस्येत्याग्रहः किंमूलकः ? प्रामाण्यं तु तद्वति तत्प्रकारकज्ञानत्वं । तच्च विधेरन्यस्य वा प्रमाज्ञानस्य समानं । न च साध्यबोधकस्यैव प्रामाण्यं न सिद्धार्थबोधकस्येति राजाज्ञा । किं च वेदस्यापौरुषेयत्वं परिरक्ष्यापि जगदीश्वरबोधकत्वं नाशक्यं । अपि च तज्जलानित्यादिवाक्यस्योपासनावाक्यत्वं त्वयाऽपि वक्तव्यं । तदा कस्योपासनोपासकेन कर्तव्या यदि नास्ति कोऽपि जगतः कर्ता । न च शब्दानुपूर्वीमात्रं । तथा सत्यप्रामाण्यं दुर्वारं । तस्मादकामेनाऽपि त्वयाऽस्ति जगत उत्पादयिता पालयिता संहर्तेति स्वीकर्तव्यमेव । न च तस्य वैषम्यनैर्घृण्यपरिहारार्थं कर्मसाचिव्यं स्वीकर्तव्यमेव । तथा च तेनैवादृष्टापरपर्यायेण कर्मणा सिद्धे सृष्टिवैचित्र्ये किं तेनेति वाच्यं । अश्वाभ्यां रथे समाकृष्टे सारथेरन्यथासिद्धत्वं ब्रुवाणो देवानां प्रिय एव भवान् । जडेन देहेन कार्यं कुर्वाणो भवानपि असन्नेव किं । अस्तु । स एव त्रैलोक्यनाथ उपासकेन प्रेम्णा वा यथाशास्त्राज्ञं वा समाराधितः सकलदुःखानि दूरीकृत्य स्वभक्तं सुखयति । अयमेव मोक्ष इति स्वीकरणीयमित्यादीनां प्रश्नानां प्रज्ञापकं श्रीमध्वाचार्यमुनिवरप्रणीतं भक्तिकाण्डस्य प्रथमं श्रीमाध्वमतं प्रस्तूयते ।

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

# द्वादशं सोपानम् ।

## उत्तरमीमांसादर्शनं—तत्र श्रीमाध्वमतम् ( द्वैतं ) ।

| प्रश्नाः— | उत्तराणि— |
| --- | --- |
| १ किं ज्ञेयम् ? | १ परमात्मना सृष्टं जगत् । |
| २ कीदृशो ज्ञाता ? | २ अणुरूपः श्रीहरेः सेवकः । |
| ३ अज्ञानस्य स्वरूपं किं ? | ३ परमात्मानिर्मितेषु स्वत्वमतिः । |
| ४ दुःखस्य स्वरूपं किं ? | ४ नानाविधयोनिषु संभवो दुःखानुभवश्च । |
| ५ ज्ञानस्य स्वरूपं किं ? | ५ अहमस्मि श्रीहरेः सेवक इति भावना । |
| ६ दुःखध्वंसस्य (मोक्षस्य) स्वरूपं किं ? | ६ उत्तमलोकप्राप्तिपूर्वको दिव्यसुखानुभवः । |
| ७ एतेषु प्रमाणं किं ? | ७ प्रत्यक्षमनुमानं शब्दश्च । |

**श्रीमन्मध्वमते हरिः परतरः सत्यं जगत्तत्त्वतः ।**
**भेदो जीवगणा हरेरनुचरा नीचोच्चभावं गताः ॥**
**मुक्तिर्नैजसुखानुभूतिरमला भक्तिश्च तत्साधनम् ।**
**अक्षादित्रितयं प्रमाणमखिलाम्नायैकवेद्यो हरिः ॥ १ ॥**

१

यदिदं जगत् प्रत्यक्षेण वाऽनुमानेन वा शब्देन वा प्रमीयते तत् सर्वं केनापि कारुणिकेनानन्तापारज्ञानैश्वर्यशालिनापारसामर्थ्यसमन्वितेन विरचितमिति ज्ञायते । यथा लोके कश्चन सामर्थ्यशाली स्वपुत्रपौत्राणां सुखेन निवासार्थं गृहादिकं निर्माति । एवमेव जगदीश्वरः सर्वसामर्थ्यसंपन्नः स्वभक्तानां सुखार्थमेव पाञ्चभौतिकं जगन्निर्ममाविति भक्ता वयं मन्यामहे । नन्वस्य जगतो निर्माणे जगदीश्वरस्य किं प्रयोजनं ?

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


न चोक्तं भक्तानां सुखमिति चेदत्रोच्यते। न चैतच्छक्यं। अनिशं दुःखान्यनुभवतां भक्तानां कीदृशं सुखमिति त एव प्रष्टव्याः। मैवं। सत्यमेव सुखार्थं भक्तानां जगत् सृष्टं जगदीश्वरेण। परन्तु विपरीतमतयो जीवा विपरीतानि कर्माणि विधाय दुःखं भावयन्ति। तत्रेश्वरस्य को वाऽपराधः। यथा हि माता स्वबालकस्य रक्षार्थं सुखार्थं चान्नं विविधं पाचयति। परन्तु स्वजठराग्नेः पाकशक्तिमनवलोक्य जिह्वालौल्यवशो बालको यथेच्छं भुञ्जान उदरपीडया दुःखमनुभवति मातरं च निन्दति। परन्तु स्वाज्ञानं तथा तन्मूलकं विरुद्धाचरणं न मनागपि मनसि कुरुते। तथैव जीवाः स्वेन्द्रियवृत्तिलोभलुब्धमतयो यथेच्छं स्वेन्द्रियतृप्तिरूपं सुखं कामयमानास्तदर्थं परान् द्विषन्तः परैश्च तथाविधैरेव प्रत्याहताः दुःखमनुभवन्ति। अतो न जगत्सृजतो जगन्नाथस्य नैर्घृण्यं। वेदेऽप्युक्तं—

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्यस्वित् धनं॥

इमां श्रीनिवासस्य भगवत आज्ञां प्रमाणीकृत्य यो जीवति स दुःखं न लभते। प्रत्युत भगवत्कृपाछत्रशाली सुखमेवानुभवति। युक्तियुक्तमपीदं। तथाहि। कामक्रोधद्वेषादिभ्यः खलु दुःखमिति सर्वसंमतं। ते च कस्मिन्नपि अभीष्टे वस्तुनि स्वत्वमंगीकुर्वतश्चेतासि जायन्ते। देवदत्तस्य भार्यां सर्वांगसुन्दरीं वीक्ष्य तां भोक्तुं कामयमानस्य यज्ञदत्तस्य हृदये कामादयः प्रादुर्भवन्ति। न पुनर्मातृवत्परदारान् मन्यमानस्य। स तु परदारान् परसत्त्वविशिष्टान् मन्यते। यज्ञदत्तस्तु मोहाद्वा रागाद्वा देवदत्तस्य भार्यां स्वस्वत्वविशिष्टां विधातुं चेष्टमानः कामक्रोधादिमान् भवति। तस्मात् सिद्धमेतत्—अस्वत्वे स्वत्वस्थापनार्थं प्रयतमानस्यैते भवन्ति। ततश्च तस्यैव दुःखमित्युचितमेव। प्रकृते च सर्वं जगत् तस्य महाकल्याणनिधेः श्रीहरेः। तस्यैव च तत्र स्वत्वं। तत् स्वत्वमपनीय स्वस्वत्वं मन्यमानस्य जीवस्य दुःखं स्यादेव। तत्रापि हीनशक्तिकस्य कस्यापि

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



जीवस्य स्वत्वमपनेतुं यदा प्रयत्यते तदा दुःखस्य न्यूनत्वं, परन्तु अपारसामर्थ्यनिधेर्भगवतः सत्त्वापनयनप्रवृत्तस्य जीवाधमस्य महादुःखमिति न्यायप्राप्तमेव । ननु जगदिदं परमेश्वरस्य स्वत्वविशिष्टं न जीवस्येत्यत्र किं प्रमाणं ? प्रत्युत यस्य स्वत्वं तस्यैव भोग इति व्याप्त्या जीवस्य भोगदर्शनाज्जीवस्यैव स्वत्वं भवितुमर्हतीति चेन्न—जगति जीवस्य स्वत्वं नास्त्येव । तथाहि । यदि जगति जीवस्य स्वत्वं तदा कस्य जीवस्य ? नानात्वात् जीवानां । यस्य हि यत्र वस्तुनि स्वत्वं स तन्निर्मातुं वा संपादयितुं वा शक्नोति । न च जीवः स्वाभीष्टं वा किमपि वस्तु निर्माति । प्रत्युत अन्य एव कश्चन वर्षादिकं स यथा वाञ्छति तथा करोति। प्रत्यक्षमेतत् । यदा वर्षाणां आवश्यकता नास्ति तदा वर्षा जायन्ते । जीवश्च स्वविरचितं क्षेत्रस्थं धान्यादिकं वर्षाभिर्नाशितं विलोक्य दुःखायमानोऽपि न वर्षाः प्रतिनिवारयितुं शक्नोति । तेन ज्ञायते जीवः परतंत्रः । किं च जीवस्य स्वातंत्र्ये स बन्दीव कथं प्रियान् पुत्रदारादीन् विहाय मृत्युकालेऽन्यत्र याति । तस्मान्नास्ति जीवस्य स्वातंत्र्यलेशः। ततश्च स्वत्वाभावोऽपि। वस्तुतस्तु नात्र कस्याऽपि विमतिः । तथा च विस्तीर्णेऽस्मिन् जगति कस्यचित्तादृशस्यैव स्वत्वं भवितुमर्हति यो हि स्वतंत्रः सामर्थ्यशाली स्यात् । न च परमात्मनोऽन्यस्य कस्याऽपि एतादृशं सामर्थ्यं संभवति । नापि तत्र प्रमाणमस्ति । नन्वीश्वरस्येदृशं सामर्थ्यमित्यत्र किं प्रमाणमिति चेदुच्यते। सकलप्रमाणमौलित्वेन स्वीकृतो वेद एवात्र प्रमाणं । 'द्यावापृथिवी जनयन् देव एक आस्ते । विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता' इत्यादि । तस्मादेतस्मादात्मन आकाशः संभूत इत्यादिकमपि बहु प्रमाणत्वेनोल्लिखितुं शक्यं । ननु सिद्धार्थप्रतिपादकमिदं वाक्यं न स्वातंत्र्येण प्रमाणं किंतु विध्येकवाक्यत्वेन, तथा चार्थवादोऽयमिति चेन्न । वेदवाक्यत्वाविशेषेऽपि साध्यार्थस्य विध्यादेः प्रामाण्यं न सिद्धार्थस्येत्यत्र किं बीजम् ? प्रवृत्तिनिवृत्त्यन्यतरकारित्वमिति चेत् ज्ञानं तु समानं। प्रामाण्यमपि समानं।

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



तथा च ज्ञात्वोपासनादिकमनुष्ठातुं योग्यं चेदनुष्ठास्यति। न चेन्न। तत्रैवं सति विधेरेव प्रामाण्यं न सिद्धार्थस्येति कुतः? यथा हि अप्राप्यं चन्द्रादिकं दूरात् पश्यन्नयं चन्द्र इति साक्षात्करोति तज्ज्ञानमपि तस्य प्रमैव भवति। नैतावता चन्द्रो लभ्यते। कुतोऽशक्यत्वात्। नापि चन्द्रज्ञानमप्रमा भवति। तस्मान्न प्रवृत्तिनिवृत्त्यन्यतरकारित्वाद्विधिरेव प्रमाणं न सिद्धार्थबोधकं वाक्यमित्याग्रहः श्रेयान्। ननु त्वन्मते वेदः पौरुषेयो वाऽपौरुषेयो वा? सत्यं। ममापि मते वेदोऽपौरुषेय एव। तथापि वेदोपदेशो जगदीश्वरेणैव क्रियते। स एव दीनजनोद्धारार्थं वेदमुपदिदेश। सर्गप्रलययोः स एव वेदं रक्षति। नैतावता पौरुषेयत्वं। पौरुषेयत्वं हि केनापि कामेन स्वसुखकीर्तिवाञ्छया वा केनापि पुरुषेण कृतत्वं। यथा शाकुंतलं। तद्धि कीर्तिकामेन कालिदासकविना निर्मितं। प्रथितं तस्य कालिदासस्य यशः। नैवं कीर्तिकामो वा सुखमीप्सुर्वा लक्ष्मीपतिर्वेदं निर्ममाविति केनापि प्रमाणेन सिध्यति। ननु तादृशपुरुषसत्त्वे किं प्रमाणं? इदमेव यद्वेदस्य निरतिशयं प्रामाण्यं। यस्य शास्त्रस्योपदेशको निरतिशयज्ञानी तस्योपदेशाविषयीभूतं शास्त्रमपि प्रमाणमेव भवति। दृष्टं चैतल्लोके। कंचन वेदान्तशास्त्रनिष्णातं तरुणं विलोक्य विस्मिता जना वदन्ति—अत्रभवन्तः कस्य वा छात्राः? कुतो वाऽधीतं भवद्भिः? तदा तस्य मुखादुपाध्यायस्य नाम श्रुत्वा ते निश्चिन्वन्ति नूनमयं महाभागो विद्ययाऽद्वितीय इति। तथैव वेदस्य निरतिशयं प्रामाण्यं विलोक्य विस्मिता जनास्तदुपदेशकं सर्वज्ञमेव मन्वते। तेन जगन्नाथः सर्वज्ञः सिध्यति। यद्यपि तस्य कृते नास्त्यनुमानस्यापेक्षा। अखण्डया भक्त्या निर्मलीकृते भक्तहृदयसरोजे स स्वयमेवाविर्भवति। तथापि येषां चेतांसि मषीवातिमलिनानि तेषां कृतेऽयमनुमानस्योपन्यास इति बोध्यं। ननु जगतो वेदस्य च नित्यत्वेन तत्कर्तृत्वस्य तथोपदेष्टृत्वस्य च कुत संभव इति चेदत्रोच्यते—यद्यपि तयोरुभयोरपि नित्यत्वं तथापि

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



प्रादुर्भावतिरोभावौ तु वक्तव्यावेव। सर्गप्रलययोः श्रुतिसिद्धत्वेन स्वीकारस्यावश्यकत्वात्। तथा च श्रुतिः—"धाता यथापूर्वमकल्पयत् दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः"। तस्मादस्ति जगतः कर्तेति निर्विवादं। ननु जगतः कर्ता शरीरी न वा? आद्ये तस्य धर्माधर्मयोरावश्यकत्वेनाज्ञानित्वप्रसंगो दुर्वारः। अन्त्ये च कर्तृत्वं कथमशरीरिणः। सर्वे कुंभकारादयः कर्तारः शरीरिण एव दृष्टा इति चेत् मैवं। कर्तृत्वे शरीरस्याप्रयोजकत्वात्। तत्र शरीरस्योपादानसाक्षात्कारे मानवस्य स्वयमसामर्थ्यादिन्द्रियापेक्षत्वाच्च साक्षात्कारप्रयोजकत्वं। ईश्वरस्य तु स्वयं सर्वं साक्षात्कर्तुं समर्थतया नेन्द्रियापेक्षा, ततो नास्ति शरीरस्यावश्यकता। वस्तुतस्तस्य शरीरवत्त्वस्वीकारेऽपि नाज्ञानित्वं दोषः। यस्य च तेन शरीरेण वैषयिकसुखादिभोगस्तस्यैवाज्ञानित्वमिति नियमस्य दृष्टत्वात्। ईश्वरस्य शरीरं तु भक्तानां वाञ्छितपूरणफलकमिति न तद्वतो भगवतोऽज्ञानप्रसंगः। ननु ईश्वरस्य सर्वथा समर्थत्वेन शरीरं विनाऽपि भक्तानां मनोरथपूरणस्य शक्यत्वेन किमर्थं शरीरधारणप्रयास इति चेन्मैवं। सर्वनियमरहितस्य तस्यैवं निरनुयोगपर्यनुयोगानर्हत्वात्। सर्वथा तस्येच्छैवात्र शरणमित्यलमप्रस्तुतविचारेण। तथा च परमात्मनेदं जगत् भक्तानां सौख्याय निर्मितमिति सिद्धं। ननु तथापि किं परमात्मोपादानं कारणमथवा निमित्तमिति चेदुच्यते। परमात्मनोऽविकृतकूटस्थचैतन्यस्वरूपतया तस्योपादानत्वासंभवः। न हि कार्यानुकूलां क्रियामधारयत् किमपि तस्य कार्यस्योपादानं भवति। यत्र च क्रिया तत्र कूटस्थनित्यत्वं न संभवति। ननु कूटस्थनित्यत्वस्य तथा क्रियायाः कुतो नैकत्र संभव इति चेदुच्यते। क्रियायाः एष स्वभावो यत् यदाश्रया क्रिया तमविकुर्वती आत्मानं न लभत इति। तथा च जगदुपादानत्वस्य तु परमात्मनि कथमपि संभवो नास्ति। अवशिष्टं निमित्तत्वं स्यात्। युक्तमपीदं। तस्य परमात्मनो जगत्कर्तृत्वं श्रुत्यादिषु प्रतिपादितं। कर्ता हि निमित्त-

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



कारणमेव भवति न पुनरुपादानमिति सुप्रतीतं लोके । तस्मात् स हि निमित्तकारणमिति सिद्धं । ननु उपादानकारणाभावे निमित्तकारणमेव न सिध्यति । निमित्तकारणं हि उपादानद्वारा कार्यं जनयतीति तस्य कारणत्वं । तच्चोपादानाभावे न संभवतीति चेत् । मैवं । ईश्वरो हि स्वशक्तिरूपां मायापदेन प्रकृतिशब्देन तत्र तत्र शास्त्रे श्रुतिसमुदाये च व्यवहृतां त्रिगुणात्मिकां स्वाधीनां जगत् कर्तुं योजयति । सा च भगवता समाज्ञप्ता क्रमेण महत्तत्त्वमहंकार इत्यादिकं कार्यजातं निर्माति । तत्र मायाया न स्वातंत्र्यं, नापि जगदाकारेण परिणामिस्वभाववत्त्वं, किंतु भगवान् यथा यथा तामाज्ञापयति तथा तथा सा केवलं परिणमते । इदमत्राकूतं । यथा मृत्तिकायां यद्यपि घटाकारपरिणममानशक्तिमत्त्वं वर्तते परन्तु घटाकारोत्पादकत्वं तथा तादृशाकारपरिणामानुकूल्येन मृत्तिकायाः प्रेरकत्वं कुंभकारस्यैव, तथैव प्रकृतौ जगदाकारपरिणममानशक्तिमत्त्वेऽपि तादृशपरिणामविधानार्थं प्रकृतेः प्रेरकत्वं जगदीशस्यैव । इदमेव शास्त्रे—अचेतनं चेतनाधिष्ठितं कार्यं करोति इत्युच्यते । तथा च सा प्रकृतिरीश्वरेण प्रेरिता तदिच्छामनुसृत्य जगदाकारेण परिणमत इति युक्तं भाति । अत एव तस्या न स्वातंत्र्यं । स्वातंत्र्ये जगदाकारेण सदैव परिणमेत । तथा सति न कदापि मोक्षः । यदि न परिणमेत तदा कदाऽपि जगन्न स्यात् । तस्मात् कदाचित्परिणामार्थं कदाचिद्विरामार्थं तस्याः पारतंत्र्यमेव वक्तव्यं । यथा हि रथनियुक्ता अश्वाः सारथिनियंत्रिता योग्यमेव कार्यं कुर्वन्ति । यदि च ते स्वतंत्रास्तदा यथेच्छं धावमाना आत्मानं विनाश्य रथिनमपि नाशयेयुः । ये तु सांख्याः प्रकृतिं स्वतंत्रां वदन्ति तैर्मोक्षो वा बंधो वा कथमुपपाद्यत इति न वयं जानीमहे । तत्रायं निष्कर्षः—श्रीहरिः स्वभक्तानां निवासार्थं तथा सुखार्थं जगन्निर्माति । तत्र तदीया शक्तिः प्रकृतिरूपा तदीयामिच्छामनुसृत्य जगदाकारेण परिणमते । यदा च भगवदिच्छामनुसृत्य जीवोऽस्मिन् जगति वर्तते

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


तदा तस्य दुःखं न भवति प्रत्युत सुखांभोधौ मज्जति । यश्च भगवदिच्छामत्येति स दुःखपरंपराव्याकुलः कष्टं जीवति । तस्माद्भगवान् हरिरेव परतरः । स एव सर्वं जगन्निर्मातीति तदेव ज्ञेयमिति संक्षेपः । तच्च नित्यमेव । अनित्यत्वे कदाचित् सर्वनाशः स्यात् । तत्कारणस्येश्वरशक्तेर्नित्यत्वादिति बोध्यं ।

२

निरूपितं ज्ञेयं । अधुना ज्ञातुः स्वरूपं निरूपणीयं । ते च प्रतिशरीरं भिन्ना विभवो नित्याश्चेति नैय्यायिकाः सांख्याश्च मन्यन्ते । परन्तु तेषां विभुत्वं न संभवति । तथाहि । यदीश्वरोऽपि विभुः प्रभुस्तथा तदनुग्राह्या जीवा अपि विभवस्तदा तेषां कथं खलु अनुग्राह्यानुग्राहकभावः । ईश्वरो हि जीवानामनुग्राहक इति पूर्वमेवोपपादितं । तत्र यदि केनाऽपि अंशेन ते परमात्मना साम्यमन्वितास्तदा कथं तेषामनुग्रहः । ननु नास्तीश्वरानुग्रहस्यावश्यकता, जीवो हि सर्वमपि कार्यं कर्तुं समर्थ इति चेत् । मैवं । अत्र लोके प्रायः सर्वे एव सुखं कामयमानास्तथा तदर्थं प्रयतमाना दृश्यन्ते, परन्तु तेषां मध्ये कति वा यशस्विनो भवन्तीति स्वयमेव विचारणीयं । केचन सुन्दरदारसंपन्ना अपि पुत्रहीना आत्मनो जन्म विफलं भावयन्ति । अन्ये तु पुत्रसंयुक्ता अपि धनहीना रात्रिंदिवं चिन्तामग्ना दुःखमनुभवन्ति । एवं प्रायः सर्वेऽपि । यदि जीवाः स्वाभीप्सितसिद्धौ समर्थास्तदा कुतो दुःखमनुभवन्ति । अदृष्टाभावादिति चेन्न । किमिदमदृष्टं नाम ? जन्मान्तरीयं कर्मेति चेत्तत् किं स्वातंत्र्येण प्रतिबंधकं वा साधनीभूतं ? अयं भावः—राजपुरुषो हि चौरं प्रतिबंधे स्थापयति तत्र च साधनं शृंखला, स हि तया शृंखलया निगडीकृत्य हस्तौ तं चौरं स्ववशे स्थापयति । एवमदृष्टं राजपुरुषवत् स्वातंत्र्येण जीवं प्रतिबध्नात्याहोस्वित् शृंखलावत् । न प्रथमः पक्षः । तस्य चेतनत्वाभावात् । चेतनो हि स्वातंत्र्येण कार्यं कर्तुं प्रभवति न जडं । तथा लोकेऽदर्शनात् ।


Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

तथा च चेतन एव कार्यं कुर्वन् साधनत्वेन जडं समादत्ते राजपुरुषश्चौरबन्धनार्थं शृंखलामिव। ननु पापिनामीश्वरः शास्तेति कल्प्यमाने तस्य नैर्घृण्यापत्तिरिति चेत्। मैवं। न हि पिता दुराचारं पुत्रं प्रकृतिस्थं विधातुं शासन्निर्घृणो भवति, नापि नृपः स्वप्रजाजनानुन्मार्गगामिनः सद्वृत्तान् विधातुं शासन्निर्घृणः संजायते। तस्मादीश्वरस्य पापिशासकत्वकल्पने नैर्घृण्यं न दोषः। प्रत्युत तथा शासनविधानेन सच्छीलताजननेन कारुणिकत्वमेव। अस्तु। तथा च यदि जीवपरमात्मनोः साम्यं तदा कथं तयोः शास्यशासकभावः। ननु मनुष्यत्वस्य समानत्वेऽपि यथा प्राड्विवाकचौरयोः शासकशास्यभावो न विरुध्यत एवं प्रकृतेऽपि कुतो न? अस्ति चात्रापि आत्मत्वं समानो धर्म इति चेन्न। विभुत्वं हि विशेषो धर्म ईश्वरस्य। अस्मन्मत ईश्वरं विहाय नान्यः कोऽपि पदार्थो विभुः। यदि च जीवा अपि विभवः स्युस्तदा नेश्वरस्य विभुत्वमसाधारणो धर्मो भवेत्। तथा च न शास्यशासकभावस्य संभवः। अतो न जीवो विभुः किंतु अणुः। मध्यमपरिमाणवत्त्वे चानित्यत्वदोषोऽस्माकमप्यभीष्ट एव। तस्मादणुपरिमाणशालिन एव त इति स्वीकर्तव्यं। ते चाज्ञानिनो धर्माधर्मादिगुणशालिनो हरेरनुचरा एव। ननु निरीश्वरा मीमांसकाः कथं हरेरनुचराः। उच्यते। यथा हि केचन कृतघ्नाः पुत्रा जनयितारमपि पितरं न मन्यन्ते नैतावता तेषां पिताऽसन् भवति। तथैव केवलं कर्मणि कुशलैर्मीमांसकादिभिरनंगीकृतोऽपि न जगदीश्वरोऽसन् भवति। अत्यल्पमिदमुक्तं। वस्तुतोऽखिलोऽपि वेदस्तमेव श्रीहरिं स्तौतीति वयमग्रे सविस्तरमुपपादयिष्यामः। ये खलु स्वस्मिन् श्रीहरेरनुचरत्वं नांगीकुर्वन्ति तैः श्रीहरेः कृपाशाऽपि हेया। तथा सति मोक्षानुपपत्तिर्वज्रलेपायते। ननु जीवश्चेतनो न वा? यदि चेतनस्तदाऽऽगतं तेन चैतन्येन गुणेन साम्यं परमेश्वरस्येति चेदत्र ब्रूमः। चैतन्यगुणवत्त्वेऽपि न तेन साम्यं दोषाय। यथा हि सेवकस्य तथा राज्ञो मनुष्यत्वेन साम्येऽपि न सेवायां बाधकं

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


किमपि भवति तथैव प्रकृतेऽपि बोध्यं । नन्वेवं विभुत्वेन साम्यस्वीकारोऽपि कुतो न भवेदिति चेदत्रेदमाकूतं । चैतन्यं च जीवेश्वरयोः स्वीकरणीयमेव । अन्यथा सेव्यसेवकभाव एव नोपपद्येत । न हि चेतनः सेवको यथा स्वामिनं सेवत एवं पाषाणः सेवत इति वक्तुं शक्यं । तथा च चैतन्यं समानं स्वीकृत्य यदि जीवस्य विभुत्वं स्वीक्रियते तदा श्रीहरेर्वैशिष्ट्यं शरणीकारकारणं किमपि न तिष्ठेत् । न हि ज्ञानशक्तिं विहायान्यत् तत्कारणं । साऽपि यदि विभ्वी तदा सर्वज्ञत्वमीश्वरस्यैव न जीवस्येति कथं व्यवस्थापयितुं शक्यं । किं च नानाविभूनां संयोगस्यावार्यतया परस्परादृष्टसंक्रमस्य शक्यत्वेन कर्मभोगावस्थाऽशक्या भवेत् । अत एतासां सर्वासामापदां वारणार्थं जीवा अणव एव स्वीकार्या इति युक्तं भाति । यतस्ते जगदीश्वरस्यानुचरा अनुग्रहयोग्या अत एव चेतना इति युक्तं । न हि सर्वज्ञोऽपि पाषाणं जडमनुग्रहीतुं प्रभवति । अत एवैतेषां परस्परं भेदः । कथमन्यथा भक्तोऽनुग्राह्योऽन्यो दण्ड्य इति व्यवस्था स्यात् । ननु यावत्कालमज्ञानं वा दुःखं वा सुखं वा किमपि भेदकं वर्तते तावत्कालं जीवानां भेदोऽस्तु । भगवतः कृपया विनष्टेऽज्ञानेऽपनीतयोः सुखदुःखयोः सतोर्जीवानां भेदः किंमूलक इति चेन्न । भेदस्य जीवस्वरूपत्वात् । तथाहि । योऽयं चेतने वा जडे वाऽन्योन्यप्रतियोगिको भेदो भासते स नित्य एव । केवलं तस्य ज्ञानार्थं प्रतियोग्यनुयोगिसमुल्लेखः क्रियते । येन तयोर्विनाशे भेदो नश्येत् । घटः पटो नेत्यत्र घटपटयोर्विनाशेऽपि न तयोर्भेदो नश्यति । तस्य नित्यत्वात् । तथा च देवदत्तयज्ञदत्तात्मनोः परस्परं भेदः सुतरां नित्य इति वक्तव्यं भवति । ननु भेदस्य नित्यत्वे किं प्रमाणमिति चेत् । भेदस्य नित्यत्वे सुतरामनुभव एव प्रमाणं । मुक्ताश्च जीवा असंख्याः । भक्ताश्चागणिताः । पापिनः पुण्यशालिनश्चासंख्येयाः । एतेषु सर्वेषु नित्येषु सत्सु भेदस्य नित्यत्वे प्रमाणं पृच्छसि ? अहो धाष्ट्र्यं । प्रकृतमनुसरामः । ते जीवाः स्वस्वकर्मानुसारेण नीचोच्चभावं गताः सन्ति । ननु

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



यदि कर्मानुसारिणी तेषां गतिस्तदेश्वरः किं करोति । सत्यं । ये खलु पूर्वसुकृतानुसारेण भगवतो भक्तिं कुर्वन्ति तान् प्रति स क्रमेणानुगृह्णन् समुन्नतिं प्रापयति । ये च दुष्कृतमनुसृत्य पापायां प्रवृत्तौ मग्नास्ताननुग्रहयोग्यान् विधातुं नानाविधासु नीचयोनिषु निक्षिप्य दुःखयति । येन ते निर्विण्णाः सन्तो भगवद्भक्त्युन्मुखा भवेयुः । ननु सर्वेषां जनक ईश्वर इति कथं केषांचित् पापा मतिः केषांचित् पुण्या मतिरिति चेन्न । न हि ईश्वरः सर्वेभ्य उपायनानीव मतिं ददाति । किंतु अनादिसंसारे जीवाः सर्वेऽनादय एव । तत्रेश्वरो रथ्याप्रदीपवत् सर्वेभ्यो मार्गं दर्शयति । परन्तु केचन स्वीयस्वीयकर्माण्यनुसृत्य भिन्नानि भिन्नानि फलानि भुञ्जते । तत्रेश्वरस्य को वाऽपराधः । ननु जीवानामणुत्वे तद्गतसुखदुःखादीनां प्रत्यक्षं कथं स्यादिति चेन्न । यथा प्रदीपस्यापवरकस्थस्यापि प्रकाशेन सर्वं गृहं तत्स्थं वस्तुजातं प्रकाशितं भवति, एवमणुनापि चेतनेन जीवेन चित्तं चित्तस्थं सुखदुःखादि सर्वं प्रकाशितं भवेत् । ननु सुखादिकं चित्तस्य वा धर्मः किंवा जीवस्येति चेदत्रोच्यते । जीवस्य कर्तृत्वेन भोक्तृत्वेन च तस्यैवेते धर्मा भवितुमर्हन्ति परन्तु सांख्यनयोऽपि अस्मिन् विषये गृहीतो नानभीष्ट इति तथोक्तं । जीवस्याणुत्वे सुखदुःखादिप्रत्यक्षं न विरुध्यत इति कथनेऽस्माकं तात्पर्यमिति बोध्यं ।

३

निरूपितं ज्ञातुः स्वरूपं । अधुनाऽज्ञानस्वरूपं निरूपणीयं । तत्र अज्ञानं ज्ञानस्य प्रतिबंधकं भावान्तरमेव । यथाऽधर्म इति न केवलं धर्माभावः किंतु धर्मविरोधि कार्यान्तरं तथैव प्रकृतेऽपि ज्ञेयं । तत्राज्ञानं-' नास्ति अस्य जगतः स्वामी कश्चनेश्वरः । अहमेव सर्वज्ञः । अहमेव सर्वस्याधिष्ठाता ' इत्यादि । इदं ह्यज्ञानं पूर्वसंचितपापातिरेकेण प्रक्षोभितं पापिनं जीवं पापानि कर्माणि कर्तुं प्रेरयति । आसन्नमरणस्य रोगिणो यथाऽपथ्ये प्रवृत्तिर्जायते तथैव पापिनोऽज्ञस्य प्रवृत्तिः पापेषु कर्मसु भवति।

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



तेन स क्रमेणाधो गच्छन् स्थावररूपतां प्राप्नोति । सैषा स्थावरान्ताऽधोगतिरिति वचनात् । अथ तत्र यावद्भोगकालं स्थित्वा नानाविधानि दुःखान्यनुभूय शेषसुकृतवशात् कस्याऽपि सज्जनस्य वा गुरोर्वाऽनुग्रहेण सत्कर्मसु प्रवृत्तः क्रमेण संचीयमानपुण्यः क्रमेणोन्नतिं गच्छन् जगदीश्वरसेवकेषु प्रथमस्तदाज्ञापालनतत्परः कार्यब्रह्मा भवति । तदाऽपि स सततं भगवदाज्ञापरिपालनतत्परः श्रीहरिमेव शरणं भावयन् तदाज्ञया सर्वं जगत्कार्यमनुतिष्ठन् वर्तमानः प्रारब्धक्षये परमात्मानुग्रहान्नष्टाज्ञानपाशो नैजसुखानुभवं मोक्षमापद्यते । एते गती शास्त्रे शुक्लकृष्णनामभ्यां निरूपिते । ननु कथमेते गती शुक्लकृष्णपदवाच्ये । यावता तत्र सूर्यादयो देवता उपदिश्यन्ते । सत्यं । सूर्यचन्द्रादयो या देवतास्ताः सर्वा अपि भगवदंशशालिन्यो विभूतय एव । तादृशविभूतिरूपेण भगवान् श्रीहरिरेव विराजते । ननु अज्ञानपदस्य ज्ञानविरोध्यर्थकत्वं निरूपितं । तत्र स विरोध्यर्थः कः ? उच्यते । ईश्वराधीनाया मायाया यो हि तमोगुणस्तस्यैवाज्ञानं नाम धर्मः। यथा खलु रजसा प्रावृत आदर्शो न प्रकाशते एवं चेतनोऽपि जीवः पापकर्मप्रवृद्धतमोगुणेन समाच्छादितो न जानाति कर्तव्यं । तेन दुःखमनन्तं भुंक्ते । ननु नास्ति कर्मणः फलं, नास्ति पुनर्जन्म, इत्यादिरज्ञानस्य प्रकारः कुतो नोक्त इति चेत् । सत्यं । अज्ञानस्य विविधानि रूपाणि सन्ति । परन्तु सर्वेषामज्ञानप्रकाराणां मूलभूतो यः प्रकारोऽस्ति स एव मयोपरिष्टात् निरूपितः । यो हि 'नास्तीश्वरोऽहमेवेश्वर' इति मनुते स सर्वाणि अज्ञानकार्याणि पापकर्माणि कुर्यादेव। यथा मद्यपानेन प्रनष्टविवेकः किं किं कुर्यादिति सर्वे एव जानन्ति तथैव प्रकृतेऽपि ज्ञेयं ।

४

निरूपितमज्ञानं । अधुना तत्फलं दुःखं निरूपणीयं । तत्र दुःखस्य लक्षणं बाधनालक्षणं संमतमेव । परन्तु तत्कारणानां नानायोनिषु

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



संभवानां स्वरूपं परिचाययितुमिदानीं किंचिदुच्यते। तत्र भगवदाराधना-विमुखस्य कानि कानि दुःखानि भवन्ति तत्सर्वं शास्त्रेषु निरूपितमास्ते। प्रायो यदा खलु मानवः संसारसुखमग्नो भवति तदा स ईश्वरं विस्मरति। तस्य सुखस्य कारणत्वेनात्मानमेव मन्यते परन्तु कालतो यदा तानि सुखानि नश्यन्ति तदा तद्वियोगसमाकुलचेताः सततं शोचति। शनैः शनैरीश्वरस्य सेवायामभिमुखो भवति। ये खलु परमात्मसेवायां विमुखाः प्रायस्ते नीचयोनिषु जायन्ते। तदुक्तं श्रुतौ 'कपूयचरणाः कपूयां योनिमापद्यन्ते श्वयोनिं सूकरयोनिं चण्डालयोनिं वा। अथ रमणीयचरणा रमणीयां योनिमापद्यन्ते ब्राह्मणयोनिं, क्षत्रिययोनिं, वैश्ययोनिं वा' इति। ननु कथमासां योनीनां पापपुण्यात्मकत्वं कथं च दुःखजनकत्वं। यतो हि मनुष्ययोनौ यादृशां विषयसुखानां संभवस्तावतामेवासु सर्वासु योनिषु संभवस्य सत्त्वादिति चेन्न। पशुयोनीनां पापात्मकत्वं न विषयसुख-न्यूनाधिक्यमूलकं किंतु भगवत्स्वरूपज्ञानाशक्तिमूलकं। श्वादिषु भोग-योनिषु न किमपि ज्ञानं। तामसत्वात्तासां योनीनां। महदिदं दुःखसाधनं यत् सकलजगच्चालकस्य भगवतः श्रीहरेर्ज्ञानमपि भवितुं योग्यता नास्ति। दूरे च तदाराधना। अतिदूरे च तत्साक्षात्कारयोग्यता। ये खलु मानव-योनौ समुत्पन्ना अपि श्रीहरेर्भक्तिविमुखास्ते पशुभ्यो नातिरिच्यन्ते। वस्तुतस्तु तानेव वयं पशून् पापयोनीन् ब्रूमो ये खलु मानवयोनौ समु-त्पन्ना अपि परमात्मानं ज्ञातुमथ सेवितुमादरं न बध्नन्ति प्रत्युत उदासीनतां भजन्ते। ये खलु मानवाधमा विरोधभावमाश्रयन्ते तान् वयं दैत्यान् वदामः। ते च भगवतो रोषपात्रं। पशवस्तु अज्ञानमलिना न ज्ञातुं शक्नुवन्ति इति तेऽनुकंपास्पदं। सात्विकाः सदैव परमात्माज्ञां शिरसा पालयन्तस्तामनुसृत्य वर्तमानाः सुखिनो भगवत्कृपाशालिन एव। तस्मा-न्नानाविधभोगयोनिषु विपरिवर्तमानाः सततं चेतसो विपरीतं दुःखं भावयन्तः कष्टं कष्टं जीवन्ति। सदैव नश्वरेषु विषयेषु शाश्वतबुद्धिविप्रलब्धास्तद्वि-

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


योगेन सततं शोचन्तः बहुकालं जीवन्ति। तदेतद्दुःखं परमात्माज्ञानमूलकमिति न ज्ञातुमपि ते प्रभवन्तीति महत्कष्टं।

५

निरूपितमज्ञानेन सह तत्फलीभूतं दुःखं। अधुना ज्ञानस्य स्वरूपं निरूपयामि। तत्र ज्ञानं नाम मानसी क्रिया इति यन्मीमांसकैरुक्तं तन्न सम्यक्। क्रियाज्ञानयोस्तमःप्रकाशयोरिवात्यन्तं भेदात्। तथाहि। क्रिया हि सा यत्र पुरुषव्यापारस्य स्वातंत्र्यं। यत्र पुरुषव्यापारस्य स्वातंत्र्यं नास्ति तत् ज्ञानं। यथोदिते जुहोति, अनुदिते जुहोति, पद्भ्यां गच्छति, अश्वेन गच्छति, न वा गच्छति। एतत्सर्वं क्रिया। तत्र पुरुषव्यापारस्य स्वातंत्र्यं। परन्तु प्रसिद्धे स्थाणौ स्थाणुबुद्धिस्तत्र न पुरुषस्य स्वातंत्र्यं। किंतु यथावस्थितवस्तुप्रकाशनमेव। तदिदं ज्ञानं। यदि सर्वस्याऽपि मनोजन्यत्वेन क्रियात्वं तदा ज्ञानज्ञानाभासयोः कथं व्यवस्था। या तु माणवकेऽग्निबुद्धिर्न तज्ज्ञानं किंतु क्रिया पुरुषतंत्रत्वात्। या तु प्रसिद्धेऽग्नौ अग्निबुद्धिर्वस्तुतंत्रं तत्। अत एव यद्वस्तुतंत्रं तज्ज्ञानं प्रमा। यच्च वस्तुव्यभिचारि न तज्ज्ञानं किंतु ज्ञानाभास इति लक्षणमपि साधु संगच्छते। न हि केवलं क्रिया ज्ञानं भवति। ननु मानसी क्रियेत्युक्तं। सत्यमुक्तं। परन्तु सर्वत्रैव मानसव्यापारस्यावर्जनीयतया तस्यैव ज्ञानत्वे सर्वक्रियामात्रस्य ज्ञानत्वापत्तिर्दुर्वारा। तस्माद्वस्तुतंत्ररूपं ज्ञानं पुरुषतंत्ररूपात् कर्मणोऽतिरिच्यते। प्रकृतमनुसरामः। तत्र मीमांसकैर्नित्यानां कर्मणां समाचरणान्मुक्तिरिति यदुक्तं तन्न सम्यक्। क्रिययाऽज्ञानस्यानिवृत्तेः। ययोश्च विरोधस्तयोर्मध्ये एकस्य प्राप्तौ द्वितीयो निवर्तते। तेजसा तमसश्च विरोधः प्रसिद्धः। तत्र तेजसि समागते तमो निवर्तते। प्रकृते च क्रियासंततौ प्रवृत्तायामपि नाज्ञानं निवर्तते। प्रत्युत ज्ञाने जातेऽज्ञानं नामशेषं भवति। तदुक्तं श्रुतौ 'तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनायेति'। सर्वं वाक्यं सावधारणमिति न्यायेन वा तमेवेति श्रूयमाणैवकारस्य

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


विदित्वोत्तरमन्वयेन वा तं विदित्वैवातिमृत्युमेतीत्यस्यार्थस्य लाभान्न ज्ञानं विनाऽज्ञानस्य निवर्तकं किमपीति सिद्धान्तो निष्प्रत्यूहः। सिद्धे चैवं ज्ञानेनैवाज्ञानस्य निवर्तने तज्ज्ञानं कीदृशमिति विचारयामः। तत्र ज्ञानं केवलं बुद्धितत्त्वे वस्तुनः प्रतिबिंबनमिति केचित्। यथा हि काचे स्वच्छे वस्तु प्रतिबिंबति तथैव निर्मलेऽन्तःकरणे वस्तुनः प्रतिबिंबनमेव ज्ञानमिति। तन्न सम्यक्। केवलमन्तःकरणे वस्तुनः प्रतिबिंबनेन प्रकृतप्रयोजनासिद्धेः। प्रयोजनं चाज्ञाननाशः। अज्ञानं च यद्विषयकं तद्विषयकेण ज्ञानेनैव तस्य नाशः। प्रकृते चेश्वरविषयकमज्ञानं ईश्वरविषयकज्ञानेनैव नाश्यं। ईश्वरस्तावत् क्षित्यंकुरादिकं कर्तृजन्यमित्याद्यनुमानेनैव प्रायः सर्वैरपि ज्ञायते। तथापि अज्ञानं तथा तत्फलीभूतं च दुःखं न नश्यति। अतोऽत्र ज्ञानपदेन न केवलं ज्ञानमीश्वरस्य विवक्षितं किंतु ज्ञानानन्तरमुपासना। सा चेतरविषयसंबंधपरिहारेण परमात्मनि नैरंतर्येण चेतसो वृत्तिः। अनादिकालसंचितकर्मसाचिव्यं मनः तेषु तेषु विषयोपभोगादिषु बलान्निरुद्धमपि गच्छति। तथापि सर्वविषयवैराग्येण निरुद्धेषु चेतसो गमनमार्गेषु या सातत्येन चेतसो जगदीशविषयिणी वृत्तिः सैवोपासना। योगे च या धारणापदेन व्यपदिश्यते सा यदि श्रीहरिविषयिणी तदा सैवोपासनापदवाच्या। ननु परमेश्वर उपासनायां साकारो वा निराकारो वा विषयीभवतीति वक्तव्यं। तद्यद्याद्यः पक्षस्तदा रामकृष्णादिभेदेनावताराणामनन्ततया कस्य वाऽऽकारस्य विषयत्वं। अथ यदि अन्त्यस्तदा तस्य विषयत्वं कथमिति चेदत्रोच्यते। रामकृष्णाद्यवताराणामनन्तत्वेऽपि भक्तो यमाकारमुपास्यं मनुतेऽथ च चिरमुपास्ते स एवावताराकारस्तस्योपासनाविषयो भवति। अत्र निदर्शनं तत्रभवतो हनूमतः। हनूमान् हि तत्रभवत एकपत्नीव्रतपालकस्य रामचन्द्रस्योपासकः। स च चिरंजीवी एकदा रामचन्द्रस्य साक्षात्कारं ययाचे। भगवान् भक्तकार्यार्थं कृष्णावतारकार्याणि कुर्वन्नपि रामचन्द्ररूपेणैव तस्मात्मानं दर्शयामास।

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



युक्तमपीदं । सर्वशक्तिशालिनः सर्वज्ञस्य भक्तमनोरथपूरणे कल्पद्रुमस्य भक्तमनोरथपूरणार्थं सततं यतमानस्य किमशक्यं ? यथा हि एक एव नटो भिन्नेषु भिन्नेषु कार्येषु भिन्नान् भिन्नान् वेषान् धृत्वा सामाजिकानां मनांसि रञ्जयति तथैव सर्वशक्तिसंपन्नो भक्तेच्छाधीनसकलवृत्तः स्वभक्तानां मनांसि तोषयितुं नानाऽवतारकार्यार्थं नानारूपाणि धारयतीति भक्तानां नो दृढा श्रद्धा । अस्तु । सा च सततमेकाकारा प्रियसगुणध्यानरूपा क्रमेण वर्धमाना तदेव रूपं व्यापकरूपेण विषयीकरोति । एतादृशी व्यापकरूपविषयिणी उपासना जीवस्याज्ञानं दूरीकृत्य तस्य वास्तविकं स्वरूपं दर्शयति । तच्च सुखं शाश्वतं कल्याणमशुभवासनानिवर्तकं दुःखं समूलं नाशयति । अतः सोपासना तत्त्वज्ञानपदेनास्मिन् सिद्धान्ते कथ्यते । तत्र न केवलं ज्ञानं नापि केवला क्रिया मोक्षसाधनं किंतु भगवत्स्वरूपं ज्ञात्वा तदुपासनारूपा क्रिया मोक्षसाधनमिति ज्ञानकर्मसमुच्चयान्मोक्ष इति अस्माकं परमः सिद्धान्तः ।

६

निरूपितं तत्त्वज्ञानस्य स्वरूपं । अधुना मोक्षस्य स्वरूपं कथयामि । तत्रोपरिष्टान्निरूपितं तत्त्वज्ञानमुपासनात्मकं सततपरिशीलनेन यथा यथा परिवर्धते तथा तथा विषयेभ्योऽस्य साधकस्य मनो निवर्तते । विषयेषु मनसः प्रवृत्तेर्मुख्यं कारणं तेषु सुखदत्वभावना । परन्तु नित्यकर्माचरणान्निर्मले चेतसि विषयाणां दुःखदत्वं स्पष्टं भासते । नित्यकर्माचरणात् प्राक् न चेतसि विषयाणां दुःखदत्वं प्रादुर्भवति । चेतसस्तदा रजआधिक्येन मालिन्यात् । नित्यकर्माचरणात् सत्वं प्रवर्धते रजश्च हीयते । सत्वाधिक्ये च यथार्थज्ञानं समुत्पद्यत एव । विषयाणां यथार्थज्ञाने जात तेषां दुःखदत्वं ज्ञायत एव । ज्ञाते च तस्मिन् तेषु वैतृष्ण्यरूपं वैराग्यं जायते । जातेऽपि वैराग्ये कस्यापि स्थिरस्यालंबनस्याभावे त्रिगुणात्मकं तच्चित्तं सततं परिस्फुरत्येव । तथा च जगन्नाथस्य यानि यानि हि अवताररूपाणि


Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



श्रुतानि तेषु यत् खलु रोचते तदेव ध्यायति। श्रुत्यादिषु पुनर्जन्मादि-दुःखदवृत्तान्तश्रवणेन भीतोऽस्मात् संसारादात्मानं मोचयितुं वाञ्छति। तदा श्रुत्यैव कथितं–'श्रोतव्यो मन्तव्य' इत्यादिकं श्रुत्वा साभिनिवेशं तस्यैव ध्याने प्रवर्तते। तदेव च ध्यानं क्रमेण समाध्यवस्थां यदाऽऽपद्यते तदा तत् साक्षात्कारो जायते। साक्षात्कारे जाते तस्य तत्र भक्तिरुप-जायते। तस्य साक्षात्कारस्य दृढीकरणार्थं–'श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनं। अर्चनं वंदनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनं' ॥ १ ॥ इति नवविधां भक्तिं करोति। तत्र नवविधायां भक्तौ सम्यगभ्यस्तायां प्रसन्नः परमात्मा श्रीहरिस्तं स्वकृपयाऽनुगृह्णाति। स चाऽनुग्रहोऽनेकजन्म-संचितानि दुरितकर्माणि नामशेषीकृत्याज्ञानं समूलं नाशयति। समूलमु-च्छिन्नेऽज्ञाने स्वाभाविकं सुखं प्रकटीभवति। तच्च सुखमनुभवन्नपि जीवो न वैषयिकं सुखं प्राप्य विषयीव तन्मयो भवति किंतु यत्कृपाप्रसादादिदं सुखं मया संप्राप्तं तमेवाहं भगवन्तं श्रीहरिं सेव्यत्वेन भावय इति निश्चि-न्वानस्तथैव प्रयतते। लब्धसाक्षात्कारो जीवन्मुक्तस्तु कृतकृत्योऽपि उपरि-निर्दिष्टया नवविधभक्त्या भगवन्तं सेवमान एव समाप्ते देहारंभके कर्मणि आत्मानं निवेद्य शरीरं जहाति। नत्वभेदभावमुपैति। भेदस्य नित्यत्वात्। किं च सततं सेवकबुद्धया भगवन्तं सेवमानस्य भक्तस्य कथं भगवत्सेवाविरो-धिनी अभेदबुद्धिर्मतिविषया भवतु। न हि स्वामिनं सेवमानस्य स्वामिकृपया लब्धैश्वर्यस्य कृतज्ञस्य सेवकस्य स्वामिसाम्यमतिर्जायते दूरे चाभेदबुद्धिः। तस्मादीशकृपया संप्राप्तनैजसुखानुभूतिरेवात्र मते मुक्तिरिति बोध्यं।

७

निरूपितं प्रमेयं। इदानीं प्रमाणं निरूपणीयं। तत्र मीमांसकै-र्यन्निर्णीतं प्रत्यक्षमनुमानं च नालौकिकपदार्थे प्रमाणमिति तदंशतोऽङ्गी-क्रियते। अलौकिकस्य योगिप्रत्यक्षस्यापि जगदीश्वराविषयकत्वात्। अत्र च सन्ति श्रुतयोऽपि प्रमाणं। क्वचिदनुमानमपि प्रमाणत्वेन

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


गृह्यते चेत्तत्र नाग्रहः क्रियते । ननु विधिरेव प्रमाणमित्युक्तं । तत्र हेतुः प्रवृत्तिकारित्वं निवृत्तिकारित्वं वोक्तः। सत्यं। परन्तु सत्वयोग्यः। तथाहि। विधिरेव प्रमाणमित्यत्र न विशेषो हेतुः । ज्ञानं च प्रमाणमित्यत्र न कस्याऽपि विमतिः । ज्ञात्वाऽनुष्ठानार्हं चेदनुतिष्ठति । अनर्हं चेन्नानुतिष्ठति । परन्तु तस्य प्रामाण्ये नास्ति विशेषः । सुखदुःखान्यतरकारित्वं तु साध्यस्येव सिद्धस्याऽपि समानं । किं च-यः खलु साध्यार्थवाचको विधिस्त्वया प्रमाणत्वेनांगीक्रियते सोऽपि न यागस्य क्रियात्मकस्य वाचकः किंतु जगदीश्वरस्यैव वाचकः। 'यज्ञो वै विष्णुरिति' श्रुतेः। ये ये खलु यागभेदाः पूर्वस्मिन् कर्मकाण्डे निरूपितास्ते सर्वे भगवतः श्रीहरेरुपासनाभेदा एव। कथमन्यथा 'यस्यै देवतायै हविर्गृहीतं तां ध्यायेद्वषट्करिष्यन्' 'प्रस्तोतर्या देवता प्रस्तावमन्वायत्ता तां चेदविद्वान् प्रस्तोष्यसि मूर्धा ते निपतिष्यति' इत्यादौ तासां तासां देवतानां ध्यानं विहितं । ताश्च देवता व्यष्टिरूपेण भिन्ना अपि समष्टिरूपेणाभिन्ना एव। 'सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति' 'वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः' इति श्रुतिस्मृतिभ्यां श्रीहरिरेव वेदस्य मुख्यतया प्रतिपाद्यः। तत्संबंधितया सर्वमन्यत् । न च मंत्रमयी देवता न वस्तुत इति वाच्यं। मंत्रप्रतिपाद्याया देवतायाः स्वतंत्रत्वात् । तत्र पूर्वकाण्डे यज्ञादिरूपो भगवानुपास्यतया चोदितः । उत्तरकाण्डे उपासनाप्रधानो जगत्कारणतया निरूपितः। सिद्धे च सिद्धार्थस्याऽपि वेदस्य प्रामाण्येऽबाधितानां पुराणवचनानामपि प्रामाण्यं बोध्यं । तच्च व्यासादीनामेव नान्येषां । यथा हि भगवान् निसर्गत एव सर्वज्ञस्तथा तत्कृपापात्रतया व्यासादयोऽपि सर्वज्ञा एव। अतो भारतादीनां वचोऽपि प्रमाणं। तत्र वेदे द्वासुपर्णावित्यादिजीवेशभेदबोधकानि यानि वचनानि तानि प्रमाणानि । अन्यान्यभेदबोधकानि तत्त्वमस्यादीनि तानि स्तुतिपराण्यमुख्यानि । अभेदस्य बाधितत्वात् । वेदप्रतिपाद्यो यः सेव्यसेवकभावस्तद्विरोधिनोऽभेदस्य बाधितत्वं युक्तमेव ।

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


यदि कृत्स्नस्य वेदस्य प्रामाण्यं तदा कथं जीवेशभेदवादिन एव वेदस्य प्रामाण्यं नाभेदवादिन इति निर्णेतुं शक्यं। न हि कुक्कुट्या एको भागः प्रसवायान्यः पाकाय। यदि वेदः प्रमाणं तर्हि सर्व एव। यदि न प्रमाणं तदाऽपि सर्व एव। न ह्यर्धजरतीयमुचितं। अतोऽभेदवादिनोऽपि वेदभागस्य तादृशमेव प्रामाण्यं यादृशं भेदवादिनो वेदभागस्य। किं चाभेदवादिनो वेदविभागस्य गौणत्वं त्वयोपासनाविरोधाद्वक्तव्यं। न चोपासनाविरोधित्वमभेदस्य संभवति। सर्वत्रैव भेदसहिष्णोरभेदस्यैव वाच्यस्य दर्शनात्। तथाहि। वृक्ष इत्यभेदः शाखा इति भेदः। पट इत्यभेदस्तन्तुसमुदाय इति भेदः। अत्यल्पमिदमुक्तं। वस्तुतः कुत्रापि न केवलस्य भेदस्य वाऽभेदस्य वा वाच्यत्वं वर्तते। सर्वत्राऽपि भेदाभेद एव पदार्थः। तथा च प्रकृतेऽपि यथा कर्मकाण्डप्रामाण्याय भेदोऽपेक्ष्यते तथैव ज्ञानकाण्डप्रामाण्यायाभेदोऽप्यपेक्षते। सिद्धे चैवं सर्वसामंजस्ये किमिति अर्धजरतीयकल्पनं। किं चाभेदबोधकज्ञानकाण्डप्रामाण्येन कर्मकाण्डस्य भेदवादिनः प्रामाण्यं च नाशंकनीयं। अन्यथा सुन्दोपसुन्दन्यायेनोभयप्रामाण्यं नश्येत्। तथा सति सर्वस्वनाश आपद्येत। तथा चोभयकाण्डात्मकस्य वेदस्य प्रामाण्यसिद्धय उभयकाण्डयोरपि समं प्रामाण्यं वक्तव्यं। अपि च—शांडिल्यसूत्रोक्तोपासनाभागोऽप्यत्र संग्राह्यः। तथा चेयं विंशत्यध्यायात्मिका सर्वमान्यैकैव मीमांसा न द्वितयीति युक्तं। तमिममर्थं प्रतिपादयितुं विशिष्टाद्वैतसिद्धान्तस्थापकाः श्रीरामानुजाचार्याः प्रक्रमन्ते। तत्र यत् समं तत्र नातिविस्तरः। यत्र तु विशेषस्तत्र विस्तर इति पूर्ववद्बोध्यं।

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

# उत्तरमीमांसादर्शनम् ।

## तत्र श्रीरामानुजमतं [ विशिष्टाद्वैतं ]

| प्रश्नाः — | उत्तराणि :— |
| --- | --- |
| १ किं ज्ञेयम् ? | १ सर्वं दृश्यमदृश्यं चेश्वरशरीरभूतं जगत् । |
| २ कीदृशो ज्ञाता ? | २ चेतनावानणुः । |
| ३ अज्ञानस्य स्वरूपं किं ? | ३ विषयेषु ममत्वभावना । |
| ४ दुःखस्य स्वरूपं किं ? | ४ नानाविधो मानसस्तापः । |
| ५ ज्ञानस्य स्वरूपं किं ? | ५ ईश्वरो नित्यासंख्यमंगलगुणवानिति भावना । |
| ६ दुःखध्वंसस्य (मोक्षस्य) स्वरूपं किं ? | ६ भगवतः कृपया दुःखस्यापुनरावृत्तिः। |
| ७ एतेषु प्रमाणं किं ? | ७ प्रत्यक्षमनुमानं शब्दश्च । |

**नित्यं हेयगुणावधूननपरा नैर्गुण्यवादाः श्रुतौ ।**
**स्पष्टार्थाः सगुणोक्तयः शुभगुणप्रख्यापनाद्ब्रह्मणः ॥**
**अद्वैतश्रुतयो विशिष्टविषया निष्कृष्टरूपाश्रया ।**
**भेदोक्तिस्तदिहाखिलश्रुतिहितं रामानुजीयं मतं ॥ १ ॥**

१

सत्यमीश्वरेणेदं जगत् भक्तानां सौख्यायैव निर्मितं । अत्र च सुखेन वसन्तः सज्जनाः सुखमेव लभन्ते न दुःखं । परन्तु कथमिदं जगन्निर्ममौ कीदृशश्च परमेश्वर इत्यत्रास्ति शंका । न च कुलालवत् स निमित्तकारणमित्युक्तं । सत्यमुक्तं। परन्तु तच्च शास्त्रेण सह न संगच्छते। तथाहि । यदि परमेश्वरः कुलालादिवदस्य जगतो निमित्तकारणं तदा 'एकस्मिन् विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति' वचनं विरुध्येत। न हि कुलालस्य ज्ञानेन सर्वं घटकारणजातं ज्ञातं भवति ? अपि च यदि

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

परमात्मा जीवात्मनः सकाशादत्यन्तमेकान्ततो भिन्नस्तदा कथं तस्य ज्ञानेन जीवात्मनामपि ज्ञानं भवेत् । न हि घटादेकान्ततो भिन्नस्य पटस्य ज्ञानेन घटज्ञानं भवति ? नाप्येकान्ततोऽभिन्नः, तथा सति उपास्योपासक-भावः कल्पितो भवेत् । तदेतन्महदनिष्टं नो वैष्णवानां । तस्माद्भिन्नोऽप्य-भिन्नः स स्वीकर्तव्यः । ननु कथमेतदुभयमपि परस्परविरोध्येकत्र स्वीक्रियते । भावाभावौ च परस्परं विरुद्धाविति सर्वजनीनं लोके । उच्यते । भेदाभेदौ परस्परविरुद्धावित्येव न संगच्छते । मृत्तिका च घटश्चात्यन्तं भिन्नौ पदार्थौ यदि तदा कथं मृत्तिका घट इति सामानाधिकरण्यं । यदि चात्यन्तमभेदस्तदा प्रत्यक्षविरोधः । तस्मा-दगत्या भेदाभेदोऽङ्गीकरणीय एव । विरोधपरिहारार्थं धर्मद्वयमवच्छेदकं कल्पनीयं । तथा च घटत्वेन भेदो मृत्तिकात्वेनाभेदः स्वीकरणीयः । ननु जडे भवदुक्तिः कथमपि संगच्छेत परन्तु चेतन-योर्जीवपरमेश्वरयोः कथमिति चेदुच्यते—यथा हि अवच्छेदकभेदेन भेदाभेदावेकत्र संभवत एवमेव शरीरभेदेनाऽपि । तथा च जीवस्येश्वरशरी-रतया तदभेदोऽप्युपपद्यत एव । एतच्च जीवस्वरूपनिरूपणे सविस्तरं निरूपयिष्यामः । अयमत्र गूढो भावः । श्रुतौ हि अन्नमयप्राणमयमनो-मयविज्ञानमयानन्दमयरूपाः पञ्चकोशाः निरूपिताः । एतेषां निरूपण-स्यान्ते 'आनन्दं ब्रह्म' इत्युपसंहृतं । तथा चोक्तं— "तस्मादेतस्माद्वि-ज्ञानमयादन्योऽन्तर आत्मा आनन्दमय" इत्यादि । असावानन्दमय एव परमात्मा । स च क्रमेण पूर्वान् कोशान् व्याप्नुवन्नेव तिष्ठति । ते च पूर्वोक्ताश्चत्वारः कोशास्तस्य शरीरभावेन व्यवतिष्ठन्ते । अत्र च प्रमाणं— 'एकोऽहं बहु स्यां प्रजायेय' इति श्रुतिः । कथं खलु विकाररहितस्य परमात्मनो बहुभवनं श्रुत्युक्तं भवेद्यदि शरीरभावेन तस्य बहुभवनं न कल्पितं स्यात् । तथा चैतच्छ्रुत्यन्यथाऽनुपपत्त्या सर्वं ब्रह्माण्डं तस्य शरीर-मित्यंगीकरणीयं । ननु किमिदं शरीरं नाम । यदि भोगजनकत्वं तदे-

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



श्वरस्य भोगाभावेन कथं जगदिदं तस्य शरीरं भवेत् । उच्यते । जगद्द्वारेश्वरस्य भोगसत्त्वाज्जगदिदमीश्वरस्य शरीरं भवितुमर्हति । सर्वं खल्विदं जगद्भोगार्थमेव निर्मितं । किं च यस्मिन् आत्मा व्याप्य तिष्ठति तच्छरीरमिति लोके समनुभूयते । देवदत्तस्य शरीरे संवेदनायाः सर्वतो ज्ञानाच्चेतनो देवदत्तशरीरे सर्वतस्तिष्ठतीति परिज्ञायते । तथैव सर्वमिदं ब्रह्माण्डं चराचररूपभेदभिन्नं परमात्मना व्याप्तमिति तत् सर्वं तस्य शरीरं भवति । तेन रूपेण तस्य बहुभवनमपि संगच्छते । एकविज्ञानेन सर्वविज्ञानमपि शरीरग्रहणेनैवात्मनो ग्रहणस्यानुभूतत्वेनोपपद्यते । तथा च सर्वमिदं दृश्यमदृश्यं चराचररूपं जगत् परमात्मना स्वशरीररूपेण समाकलितं स्वसुखोपभोगायैव निर्मितमिति सिद्धं । ननु कथमपरिणामिनः परमेश्वराज्जगत उत्पत्तिः ? यदि तु परिणामी आत्मा स्यान्नूनं जडो मृत्तिकावत् स स्यात् । तदेतदनुभवविरुद्धं श्रुतिविरुद्धं च । उच्यते । परमात्मा स्वयमपरिणामी कूटस्थ एव । परन्तु तस्य यत् सूक्ष्मं शरीरं वर्तते तस्य परिणामेन जगदुत्पत्तिस्वीकारे न काऽप्यनुपपत्तिः । यथा हि योगी स्वयं कूटस्थोऽपि संकल्पद्वाराऽनेकान् कायान् विधाय तद्द्वारा भोगान् भुंक्ते, एवमेवायं सत्यसंकल्पः परमेश्वरः संकल्पद्वारा ब्रह्माण्डं समुत्पादयति भोगांश्च भुंक्ते । तथा च परमात्मनः शरीरभूतं जगदिदं संकल्परूपसूक्ष्मशरीरद्वारा तेन निर्मितमिति ज्ञेयं ।

२

निरूपितं ज्ञेयं । अधुना ज्ञातुः स्वरूपं वर्णनीयं । शरीराद्यधिष्ठाता जीवो यद्यपि परमेश्वरस्य सेवकः परमात्मकृपया सुखदुःखे अनुभूयमानोऽत एव परतंत्र इत्यपि वक्तुमुचितस्तथापि स परमात्मनोऽपि शरीरभूत इति ज्ञेयं । अत्र च प्रमाणं—अन्तर्यामिब्राह्मणं । 'यो हि पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिवीमन्तरा यमयति यं पृथिवी न वेद' इत्यादिना सर्वपदार्थान्तर्यामित्वं परमेश्वरस्योपपाद्य—' यो जीवे तिष्ठन् जीवमन्तरा

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


यमयति यं जीवो न वेद ' इत्याह। यदि पृथिव्यादिवज्जीवो न परमात्मनः शरीरं तदा कथमुपरिकथितायां श्रुतौ जीवे तिष्ठन्नित्यस्य व्यपदेशः। किं च यथा स्वामिनः सेवकोऽपि शरीरं स्वामिभोगोपकारित्वात्तथा जीवस्याऽपि परमात्मसेवाकारित्वाज्जीवोऽपि शरीरं भवितुमर्हति। तथा सत्येव जीवस्येश्वरसेवकत्वं भवेत्। अयं च जीवोऽणुरूप एव। तथापि तस्य चेतना सर्वभोगशरीरव्यापिनीति न संवेदनानुपपत्तिः। स च प्रतिशरीरं भिन्नः। ननु यथा त्वन्मतेऽणोरेकदेशस्थस्याऽपि चेतना गुणः सर्वं शरीरं भासयति तथैवैकोऽपि जीवः स्वचेतनागुणेन कृत्स्नानि शरीराणि कुतो न प्रकाशयेत्। तथा च लाघवादेक एव जीवः स्वीकार्य इति चेन्न। न केवलं संवेदनमेव तस्य प्रयोजनं किंतु सुखदुःखोपभोगस्तथा बंधमोक्षाविति। यदि च सर्वशरीरवर्ती जीव एकः स्यात्तदा एकस्मिन् सुखिनि सर्वे सुखिनः स्युः। एकस्मिन् दुःखिनि सर्वे दुःखिनः स्युः। न च सुखदुःखे तु चेतसो धर्म इति वाच्यं। तथापि तयोः संवेदनारूपो भोगस्तु जीवस्यैवेति व्यवस्थाभावप्रसंगः। अतो जीवनानात्वं स्वीकर्तव्यमेव। अयं च स्वयंप्रकाशः। यथा हि सविता स्वात्मानं वा घटं वा प्रकाशयितुं नान्यं सवितारमपेक्षते तथैवायं जीवः स्वसत्तायां नान्यं जीवमपेक्षते। तथापि अयं न ज्ञानरूपः किंतु ज्ञानाश्रयः। यथा सविता सदाप्रकाशोऽपि न प्रकाशरूपः किंतु प्रकाशाश्रयः। ननु सवितुः प्रकाश इति विकल्प इति चेन्न। कुतो नु खल्वस्य व्यपदेशस्य विकल्पत्वं। शशशृंगमित्यत्र बाधात्तथाऽऽस्तां नाम परन्तु त्रिकालाबाध्यस्यास्य व्यपदेशस्य विकल्पत्वे सर्वमपि विकल्परूपमेव भवेत्। न हि अनुभूयमानं सर्वं विकल्पत्वेन कश्चित् सचेता अनुमन्यते। नापि युक्तियुक्तमिदं। अतोऽबाधितप्रत्ययत्वात् सवितुः प्रकाश इति व्यपदेशः प्रमाणं। तथैव पुरुषस्य चैतन्यमित्यपि। एतेन ज्ञानस्वरूपत्वं जीवस्य प्रत्युक्तं भवति। किं च यदि ज्ञानस्वरूप एव जीवस्तदा जानामीति निर्देशः कथं?

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


यदि तस्य विकल्पत्वं तदाऽत्र प्रमाणं वक्तव्यं । नास्ति तत्र बाधस्य संभवः । तस्मात्तस्याप्रामाण्यं वक्तुमशक्यं । अतोऽपि ज्ञानाश्रयो जीवः । ते च जीवा बद्धमुक्तनित्यभेदेन त्रिविधाः । तत्र लौकिकसुखदुःखभोगिनो ब्रह्मादयः स्तंबपर्यन्ताः संसारस्था जीवा बद्धाः । परमात्मोपासनया त्यक्तसूक्ष्मशरीरा वैकुण्ठवासिनो मुक्ताः । अनन्तगरुडविष्वक्सेनादयो जीवा नित्याः । एतेषां कर्तृत्वमीश्वराज्ञया न स्वतः । यस्य हि स्वतःकर्तृत्वं स स्वतंत्रः स्यात् । न च जीवानां स्वातंत्र्यं शास्त्रतोऽनुभवतश्च दृश्यते । किं च यदि ते स्वतंत्राः स्युस्तदा किमिति ते जगदीश्वरमुपासीरन् । परतंत्रा दासादयः स्वाभीष्टसिद्ध्यर्थं समर्थं स्वामिनमुपासते इति सर्वेषां प्रत्यक्षं । श्रुतावप्युक्तं— 'एष ह्येव साधु कर्म कारयति तं यमेभ्यो लोकेभ्य उन्निनीषते । एष एवासाधु कर्म कारयति तं यमधो निनीषत' इति । बहवः खलु भगवतः सेवका यथाशक्ति परमेश्वरं समाराध्य सिद्धिं लब्ध्वा कृतकृत्या दृश्यन्ते । अतो जीवानां पारतंत्र्यं सर्वसंमतं । परतंत्रोऽपि समर्थस्य स्वामिनो वाऽन्यस्य कस्यापि कृपया सुखी भवति इत्यपि दृष्टचरं । सर्वेषु जीवेषु वा सिद्धेषु वा देवेषु भगवानेव स्वतंत्रः कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं वा शक्त इत्यत्र न कस्याऽपि संदेहः । तस्यैव कृपया जीवेन सुखिना भवितव्यमित्युचितं । तथा च समर्थ ईश्वरो यद्यदाज्ञापयति तत्तत्तेन विधाय तत्कृपा संपादनीयेत्यर्थादेव प्राप्तं । तथा च सति कुतस्तस्य जीवस्य स्वातंत्र्यमिति ज्ञेयं । किं च—योऽसौ परमपुरुषार्थः शास्त्रेषु तथा लोकेऽपि प्रसिद्धो मोक्षः सोऽपि नेश्वरस्य कृपां विना लब्धुं शक्यः । यतो मुक्तिर्नाम वैकुण्ठप्राप्तिस्तत्रस्थदिव्यपदार्थानामुपभोगः । स च न परमेश्वरकृपां विना । तस्माद्ये खलु सुखभोगेच्छया कृपां कांक्षन्ति त एव परतंत्रा उच्यन्ते । स्वतंत्राणां नास्ति कृपापेक्षेति सिद्धं जीवानां पारतंत्र्यं । न च जीवस्य स्वातंत्र्यं कुतो नास्ति । यतः स यदिच्छति तत्करोति । सत्यं । परन्तु तस्य बुद्धेः प्रेरकः स


Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



ईश्वर एव। तथा च कुतो नु खलु पराधीनबुद्धेर्जीवस्य स्वातंत्र्यं। न चैवं तस्य स्वतःकर्तृत्वाभावे कुतो दुःखं। उच्यते। ईश्वरस्यैवेच्छया दुःखं सुखं च। परन्तु अज्ञानमुग्धान्तःकरणो जीव आत्मानं कर्तारं मन्वानः सदाऽऽत्मानमेव दुःखिनं मन्यते। वस्तुतो जीवस्य न दुःखं न सुख-मीशस्येच्छैव केवलं तत्र कारणमिति तत्त्वं। एतेन जीवानां पारतंत्र्यं निःसंदिग्धतया सिद्धं भवति।

३

निरूपिते जीवस्य स्वरूपेंऽशतोऽज्ञानस्य स्वरूपमुक्तमेव भवति। तथापि तद्विस्तरेण निरूपितं शिष्याणां बोधाय भवेदिति निरूप्यते। तत्राज्ञानं नामातस्मिंस्तद्बुद्धिरिति सर्वसंमतं लक्षणं, तथापि विशेषोऽस्ति विशेषे। न ह्युपरिनिर्दिष्टे सामान्यलक्षणेऽस्ति कस्यापि विमतिः। तत्र जीवानां स्वातंत्र्यज्ञानमज्ञानमेव तथापि तदन्यसाधारणं। अस्मन्मते तु अज्ञानमिदमेव विशेषतो यज्जीवो हि परमात्मनोऽत्यन्तं भिन्न इति। तत्र च चैतन्येन रूपेण तथा श्रुत्या च जीवेश्वरयोरभेदे ज्ञायमाने यत् खलु तयोरत्यन्तभेदविज्ञानं तदेवाज्ञानं भवितुमर्हति। न हि तयोरभेद-स्वीकारं विनाऽभेदबोधिकायाः श्रुतेरुपपत्तिः संभवितुमर्हति। यो हि श्रुत्युक्तमपि तयोः सापेक्षमभेदमनंगीकुर्वाणस्तावत्यन्तं भिन्नौ मनुते स च श्रुतावप्रामाण्यं समारोपयन् कृत्स्नमपि श्रुतिप्रामाण्यमप्रामाण्यशंकास्पदं विधत्ते। तस्मात्तदेव प्राधान्येनाज्ञानमत्र बोध्यं। ननु ईश्वरेण साकं जीवस्य केनाऽपि अंशेन साम्यमुच्यते तदा सेव्यसेवकभावो न भवेत्। न हि साम्ये सेव्यसेवकभावो भवति। सत्यं। स्वामिसेवकयोर्लोके मनुष्य-त्वेन साम्येऽपि न सेव्यसेवकभावो विरुध्यते, तथैव ज्ञानवत्त्वरूपेणानयोः साम्येऽपि न सेव्यसेवकभावविरोधः। किं च ययोरत्यंतं भेदस्तयोः सेव्यसेवकभावोऽपि नोपपद्यते। यथा मनुष्यपश्वोः। न हि पशुर्मानव-वत् स्वामिनं सेवितुमलं। तस्माद्यत्किंचित्साम्येऽपि न सेव्यसेवकभाव-

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

विरोधः । न चैवं स्वीकारे श्रुतिप्रामाण्याविरोधः । तस्मादनयोरत्यन्तभेद-स्वीकारोऽज्ञानमूलक इति बोध्यं । एतेन यान्यज्ञानस्य रूपाणि प्राचीन-दर्शनकारैरुक्तानि तानि परित्यक्तानीति न मन्तव्यं । तान्यप्यस्माकं संमतान्येव । यथाऽऽत्मनि कर्तृत्वाभिमानः, आत्मनो व्यापकत्वज्ञानं, नास्ति परमात्मेति मतं, इत्यादि । एतत्सर्वमप्यस्माकमपि अज्ञानत्वेन संमतमेव । तथापि यत् खलु विशेषतोऽज्ञानस्य स्वरूपं तदुपरिष्टात् निरूपितं । अत एवास्य दर्शनस्य विशिष्टाद्वैतं नामधेयं । एतेन ये खलु अभेदं सत्यं वदन्तो भेदं मिथ्येति वदन्ति तेऽप्यज्ञानिन एवेत्युक्तं भवति । प्रमाणतः खल्वर्थप्रतिपत्तिः । अलौकिके पदार्थेऽलौकिकं श्रुतिरूपं प्रमाणं विहाय नान्यत् प्रमाणं भवितुमर्हति । तस्माद्यथाश्रुति भेदाभेदसिद्धान्त एव न्याय्यः । तद्विरोधि सर्वमज्ञानमिति बोध्यं ।

४

निरूपितमज्ञानस्य स्वरूपं । सम्प्रति तत्फलीभूतदुःखस्वरूपं निरूप्यते । तत्र दुःखं नाम बाधनालक्षणो विशेषगुण इति सर्वतंत्रसंमतं । तच्च दुःखं सर्वमपि अज्ञानसंभवमित्यपि । यद्यपि अज्ञानात् कुकर्मणि प्रवृत्तिस्ततो दुःखमित्यनुभवस्तथापि अज्ञानस्य दुःखं प्रति निदानत्वेन तत्र दुःखकारणत्वं न हीयते । अज्ञानी जीव आत्मानमेव स्वतंत्रं मन्वान आत्मानमेव प्रमाणीकृत्य कर्तव्याकर्तव्ये निश्चिनोति । शास्त्रस्य प्रामाण्य-स्वीकारे तद्बोधकस्य वा तस्य कर्तुरेव वा प्रामाण्यं गले पतितमेव भवेत् । तथा च न स्वप्रामाण्यं । ततश्चाज्ञानान्धः कर्तव्यमकर्तव्यत्वेनाकर्तव्यं च कर्तव्यत्वेन व्यवस्यन् तादृशं व्यवसायमनुसृत्य कर्माण्यारभते । तेषु च कर्मसु यथाकालं फलोन्मुखेषु सत्सु तानि नानाविधानि दुःखानि सुवते । तदुक्तं भगवता गीतासु—

तानहं द्विषतः क्रूरान् । संसारेषु नराधमान् ।
क्षिपाम्यजस्रमशुभान् । आसुरीष्वेव योनिषु ।। इत्यादि ।

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

इदमेव नास्तिक्यं नाम । नास्ति कोऽपि अस्य जगतः स्वामी । नास्ति शुभाशुभं किमपि कर्मेत्यादिकुविचारदग्धहृदया जना इह संसारे कतिविधं दुःखमनुभवन्तीति वक्तुमप्यशक्यं । दृष्टं चैतल्लोकेऽपि। यो हि स्वामिनः प्रजाजनो भूत्वा स्वामिनं न मन्यते, यथेष्टमाचरति, यथेष्टमुपादिशति, प्रजापालनार्थं राज्ञा कृतान् नियमान्न स्वीकुरुते, नैतावदेव किंतु स्वसदृशानन्यानपि विधाय शान्तेषु प्रजाजनेषु यथेच्छमाचरति, तान् नानाविधैर्दुःखैः पीडयति, तं नृशंसं नरं राजद्रोहिणं निश्चित्य राजा स्वसेवकैस्तं कारागारे स्थापयति । नानाविधैः कशाताडनादिभिः तं निर्दयं पीडयति। तथापि स्वभावानुरूपं कर्मविशेषमपरित्यजन्तं विलोक्य प्राणैर्वियोजयति । तथैव जगदीश्वरो नानायोनिषु नानाविधानि दुःखान्यनुभूयाऽपि अप्रकृतिस्थं मानवाधमं वीक्ष्य तं प्राणैर्वियोजयति । अत्र प्राणैर्वियोजनं नाम चैतन्यस्यात्यन्तं तिरोधानं बोध्यं । यथा हि पाषाणभावोऽत्यन्तं चैतन्यरहितोऽत एव स चरमोऽधःपातः । एतत्प्राप्तिरेव प्राणवियोजनं जीवस्य । अतो निष्क्रम्य पुनर्जीवभावोऽत्यन्तं दुर्लभः। अथ कदाचिदेव यथा भगवतो दाशरथेः पादरजःस्पर्शेनाहल्यानुगृहीता तथैवालौकिकेऽनुग्रहे सति पुनर्जीवभावो लभ्यते । परन्तु एतादृशः प्रसादोऽपि अतिदुर्लभ इति बोध्यं । तस्मात् सिद्धमज्ञानं दुःखस्य कारणमिति ।

५

निरूपितं दुःखस्य स्वरूपं । अधुना तस्य निवारणायोपायभूतं ज्ञानं सविस्तरं निरूपणीयं । यद्यपि ध्यानधारणादिकं तथा नवविधा भक्तिर्या प्राक् निरूपिता तत् सर्वमपि विशिष्टाद्वैतवादिनामपि संमतं। तथापि परमात्मस्वरूपे यो विशेषोऽस्ति सोऽधुनोच्यते । ईश्वरो हि जगतः कारणं । 'तस्माद्वैतस्मादात्मन आकाशः संभूत' इत्यादिश्रुतेः । तच्च कारणत्वं निमित्तरूपं न युज्यते । तथा सत्येकविज्ञानेन सर्वविज्ञानं श्रुत्युक्तं कथं संगच्छेत । न हि निमित्तकारणस्य विज्ञानेन कार्यस्य

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


विज्ञानं भवतीति दृष्टं लोके । मृत्तिकाया विज्ञानेन सर्वं मृण्मयं कार्यं विज्ञातं भवतीति तु संगच्छते । तस्मादात्मनः परिणामो जगदिति वक्तव्यं । न चैवं जडत्वापत्तिः। शरीरापेक्षो ह्ययं परिणामो न चेतनापेक्षः। तथा सत्येव मृत्तिकेत्येव सत्यमिति श्रुत्युक्तो दृष्टान्तोऽप्युपपद्यते । ननु लौकिकराजवन्निमित्तकारणत्वस्य स्वीकारेणाप्युपपत्तौ किमर्थं परिणाम्युपादानत्वकल्पनेति चेन्न। लौकिकदृष्टान्तेन तस्य विभुत्वं न स्यात् । न हि लौकिको राजा विभुः। ईश्वरो हि सर्वान्तर्यामित्वेन श्रुतिषु कथितः। तथा च विभुत्वस्य सकलजगदधिष्ठानत्वेनोपादानत्वमुचितमेव । ननु ईश्वरो यदि जगदुपादानं तदा जगदेकाकारमेव स्यात् कार्यवैचित्र्यं प्रति कारणवैचित्र्यस्य प्रयोजकत्वादिति चेदुच्यते । जगदुपादानभूतस्य जगदीश्वरस्यैकत्वेऽपि तत्र जीवकर्मणां वैचित्र्यमस्त्येव । तथा च तन्निमित्तमेव जगद्वैचित्र्यमिति बोध्यं । ननु भेदाभेदौ यदि तत्त्वं तज्ज्ञानमेव यदि तत्त्वज्ञानपदेनापेक्ष्यते तदा 'तत्त्वमसि श्वेतकेतो नेह नानास्ति किंचन' 'मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति' इत्याद्या अभेदस्तत्त्वमिति सिद्धान्तं प्रतिपादयन्त्यः श्रुतयः कथं संगच्छेरन् । माध्वमते चाभेदस्यासत्त्वादेव न कोऽपि विशेषः । सत्यं । अभेदस्यापि अस्मन्मते विवक्षितत्वान्न श्रुतिविरोधः। इह नाना नास्तीति प्रतिपादिकाः श्रुतयः केवलमीश्वरानुयोगिकमीश्वरप्रतियोगिकं भेदं निन्दन्ति न पुनरीश्वरे घटप्रतियोगिकं, नापि घटे ईश्वरप्रतियोगिकं भेदं निराकुर्वन्ति । ननु कथमेतन्निर्णेयं। सत्यं । यदि सर्वोऽपि भेदः श्रुत्या निन्दितः स्यात्तदेश्वरस्येश्वरत्वं किंमूलकं भवेत्? न हि ईश्वरो नाम किमपि अकुर्वाणः शून्यतुल्यः कश्चन पदार्थः । अतस्तस्य सर्वान्तर्यामित्वोक्त्युपपत्तये परमात्मनानात्वमेव श्रुत्या निराक्रियत इति वक्तव्यं । तथा च तस्य सर्वान्तर्यामित्वेन सर्वनियंतृकत्वेन नित्यनिखिलकल्याणाश्रयत्वेन ज्ञानमेव तत्त्वज्ञानपदेनापेक्षितमिति बोध्यं ।

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

६

निरूपितं संक्षेपेण ज्ञानस्वरूपं । अधुना तत्फलस्य मोक्षस्य स्वरूपं वर्णयामि । तत्र मोक्षस्य दुःखध्वंसरूपत्वं वा नित्यसुखाविर्भावरूपत्वं वेति महानस्ति विवादः । तत्र प्रायः सर्वे एव दर्शनकारा दुःखध्वंसमेव पुरुषार्थं ब्रुवाणास्तमेव मोक्षं वदन्ति । उदाहरन्ति च भाराद्यपगमे सुखी संवृत्तोऽहमितिवत् खलु दुःखध्वंसस्य पुरुषार्थत्वं । तत्र किंचिद्विचार्यते । पुरुषार्थो नाम पुरुषेणार्थ्यते प्रार्थ्यत इति व्युत्पत्त्या पुरुषेच्छाविषय इति प्राप्तं । तत्र पुरुषेच्छाविषयो यथा सुखं न तथा दुःखध्वंसः । अत एव संसारेऽगणितं दुःखराशिमनुभवन्तोऽपि सुखलवं कामयमानाः सांसारिका जना दृश्यन्ते । किं च यदि दुःखाभाव एव पुरुषार्थस्तदा क्षणिकतृप्ति-सुखापेक्षया समधिकदुःखे पाककर्मणि प्रवृत्तिः कथं ? न हि घटिकाद्वय-दुःखकालात्तृप्तिसमयोऽधिक इत्यनुभवः । तस्मात् सुखमेव पुरुषार्थः । दुःखं तु तस्य प्रतिबंधकमिति प्रतिबंधकाभावे वाञ्छा न स्वतः । अपि च दुःखाभावस्य स्वतःपुरुषार्थत्वं त्वया वक्तव्यं । तच्च न संभवति । दुःखे द्वेषस्य सत्त्वेन तस्य हानाय दुःखाभावे वाञ्छा । सुखे तु न तथा । तस्य स्वतःपुरुषार्थत्वं तु सर्वानुभवसिद्धं वर्तते इति सुखस्यैव पुरुषार्थता युक्ता । ननु सर्वं सुखं विषयसंभोगजन्यं । न नित्यं । तत्र मानाभावात् । विषयसुखस्य मोक्षरूपत्वे तस्यानित्यत्वमापद्येत । परमपुरुषार्थत्वं च तस्य कथमिति चेन्न । सर्वं सुखं विषयोपभोगजन्यमित्यत्र किं प्रमाणं । सुषुप्तौ योऽयं सुखानुभवो जायते स किंविषयमूलक इति त्वया वक्तव्यं । न च सुषुप्तौ कश्चनालौकिको वा लौकिको वा विषयोऽस्ति येन तदुपभोग-जन्यं सुखं तत्र संभवेत् । न च तत्र दुःखाभाव एव सुखपदेन व्यपदि-श्यत इति वाच्यं । सुखमहमस्वाप्समिति खलु तदाऽनुभवः । नात्र दुःखा-भावस्योल्लेखो वर्तते । तस्मात् सुखविषयक एव सोऽनुभव इत्यंगीकरणीयं । इममनुभवं प्रमाणीकृत्य जीवस्य सुखरूपता स्वीकरणीया । श्रुतिश्चैवं सत्य-

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


नुकूला भवति। यथा चानन्दवल्यां—'अस्यैव मात्रा उपजीवन्ति' इत्युक्तं। ननु जीवस्य सुखस्वरूपत्वे तस्य मोक्षे इच्छैव न भवेत्। न हि शर्करायाः शर्कराभक्षण इच्छा। किंतु शर्कराभिन्नस्य जीवस्य। अप्राप्तं हि फलमुद्दिश्य मानवस्तत्संपादने प्रयतते। प्राप्ते तु किमर्थं प्रवृत्तिः। प्रत्युतेच्छां प्रति फलप्राप्तिः प्रतिबंधिकेति सर्वतंत्रसिद्धान्तः। तस्मादयुक्तमेतत्। किं च यदि जीवो हि सुखस्वरूपस्तदा तत्र दुःखस्य संभवः कुतः। न हि प्रकाशरूपे सूर्येऽस्ति तमसः संभवः। दुःखानुभवस्तु संसारिणः पदे पदे इति नास्ति संभवः सुखरूपताया इति चेन्न। यद्यप्ययं सुखरूपस्तथापि अज्ञानादयमात्मानं तथा न मनुते। दृष्टं चैतत् ग्रीवास्थेऽपि आभरणे विस्मृत्या शोचन्ति तरुण्य इति लोके। यदा खलु कश्चन वृद्धस्तास्तरुणीरादर्शदर्शनेन तदाभरणं दर्शयति तदा ताः पुनर्लब्धमिव तन्मन्यन्ते। तथैव परमेश्वरकृपया प्राप्तस्वरूपसुख आत्मानं भगवत्कृपया सुखिनं जीवो मन्यते। अयमेव मोक्षो नाम। तत्रेत्थं प्रक्रिया। जीवो हि प्रकृत्या सुखरूपोऽपि विषयासक्त्या परमात्मसेवावैमुख्येन चाज्ञानपटलावृत आत्मानं दुःखिनं जननमरणपाशबद्धं मन्यते। तस्य चोच्छेदाय स्वमतिप्रभवाणि कर्माणि समारभते। तेन च तस्य बंधस्योच्छेदो न भवति प्रत्युत दार्ढ्यं भवति। तेनोद्विग्नः स यदा विरज्यते तदा गुरुः श्रुतिप्रमाणेन वर्तितुमाज्ञापयति। यदा च स श्रुतिं प्रमाणीकृत्य तदुक्तान् सदाचारान् परिपालयति तदा तस्य चित्तं निर्मलं भवति। अथ परमेश्वररूपाणां ध्यानधारणाभ्यां स्थिरीभूते चेतसि परमात्मा प्रकटीभवति। सेयं तस्य भगवतः कृपेति तत्र तत्र शास्त्रे निगद्यते। भगवतः कृपायां जातायां स जीवः कृतकृत्यः शिष्टमायुर्भगवत्सेवयैव क्षपयित्वा पतिते शरीरे वैकुण्ठलोकमेति। तत्र सेवकभावमपरित्यजन्नेव नानाविधानां दिव्यानां विषयाणां भोगान् लभते। तदुक्तं श्रुतौ—'सोऽश्नुते सर्वान् कामान् ब्रह्मणा सह विपश्चिता' इति। यदुक्तं

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


नैजसुखाभिव्यक्तिर्मोक्ष इति तत्तथैवाऽस्माभिरप्यंगीक्रियते परन्तु यावदलौकिकविषयाणामलौकिकेन भोगेनालौकिकं सुखं नानुभूयते तावत्कुतोऽस्य मोक्षस्य परमपुरुषार्थत्वं। ननु विषयोपभोगजन्यं सुखमनित्यमिति व्याप्तेर्निर्दुष्टतया कथं विषयोपभोगजन्यसुखस्य मोक्षत्वं? उच्यते। सत्यमेवेह लोके विषयोपभोगजन्यं सुखमनित्यं तथापि अलौकिकविषयोपभोगजन्यं सुखं तथा भवेत्? यदि तथा तन्न स्यात्तदा कथं तस्यालौकिकत्वं। न ह्यलौकिकत्वं नाम कोऽपि नामविशेषः किंतु अक्षय्यत्वं। ननु तादृशेऽलौकिके सुखे प्रमाणाभावः। उपरिनिर्दिष्टायाः श्रुतेरेव प्रमाणत्वात्। यदि च लौकिकवत् सर्वैः पदार्थैर्भवितव्यमित्याग्रहस्तदा परमात्मा शरीरी जननमरणधर्मा भवेत्। जीवात्मनां तथा दृष्टत्वात्। यथा च लौकिकसुखमुपभोगेन क्षीयते एवं मोक्षोऽपि भवतु। यथा हि लोके मुक्तस्याऽपि पुनरपराधकरणात् बंधप्राप्तिरेवमेव मुक्तस्याऽपि शरीरबंधो भवतु। तस्मात् कदाऽपि लौकिकदृष्टान्तेनालौकिकाः पदार्था न निषेद्धव्याः साधनीया वा। अलौकिके विषये तु अलौकिकमेव प्रमाणं भवितुमर्हति। तच्च श्रुतिरूपमेकमेव नान्यदिति ज्ञेयं। तथा च दिव्यं वैकुण्ठलोकं प्राप्य तत्र स्थित्वा भगवता वैकुण्ठाधिपेन सहानन्तकालं दिव्यसुखानुभव एव मोक्ष इति सिद्धान्तः।

७

निरूपितं ज्ञेयजातं सह ज्ञात्रा। अधुना प्रमाणं वक्तव्यं। तत्रालौकिके पदार्थजाते श्रुतिं विहाय नान्यत् प्रमाणं भवितुमर्हतीति प्रागुक्तं। लौकिके विषयजाते तु यथायथं प्रत्यक्षमनुमानं लौकिकः शब्दश्च प्रमाणं। ननु अलौकिके विषयेऽनुमानं प्रमाणं कुतो न भवति? तदुक्तं न्यायभाष्ये- 'वर्तमानविषयं प्रत्यक्षं त्रैकालिकं चानुमानमिति'। सत्यं। तत् त्रैकालिकमप्यनुमानं परंपरया प्रत्यक्षसंबद्धस्य नासंबद्धस्यालौकिकस्य। तथाहि। भविष्यति धूमः काष्ठादिसामग्र्याः सत्त्वादित्यनुमानं भविष्यत्कालिकं।

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


परन्तु यस्य धूमस्य जातस्य प्रत्यक्षं श्वो भवेत् स एव धूमोऽत्र विषयः। किं च—अनुमानादिप्रमाणं पौरुषेयत्वात् संदिग्धमेव। शतशो धूमवन्ह्योः सामानाधिकरण्यमनुभवन्नपि नैयायिको निःशंकः सन् धूमदर्शनेन वह्निमनुमातुं न शक्नोति। वेदस्तु अपौरुषेयः सर्वथा निःसंदिग्धः प्रमाणमेव। तस्मादलौकिकेषु विषयेषु श्रुतिरेव प्रमाणं नान्यदिति यदुक्तं तत् सम्यगेव। ननु श्रुतिः कारिका वा ज्ञापिका वा? ननु किमिदं कारकत्वं वा ज्ञापकत्वं वा? उच्यते। कपालादीनां कारणानां घटं प्रति कारकत्वं। यतस्तैरसन् घट उत्पद्यते। उत्पन्नस्य तमआदिना पिहितस्य दीपेन दर्शनाद्दीपो हि घटं प्रति ज्ञापकः। उच्यते। स्वर्गादीनां साधनीभूतस्यापूर्वस्योत्पाद्यत्वे श्रुतिः कारिकैव। न हि श्रुतितो यज्ञादीनामाचरणात् प्राक् स्वर्गो वाऽपूर्वं वा वर्तते। सिद्धे वस्तुनि वैकुण्ठादौ तु सा ज्ञापिकैव। ननु यद्येन ज्ञाप्यते तत्ततोऽन्येन केनचित्कृतं भवतीति व्याप्तिः। यथा कपालादिभिरुत्पादितो घटोऽन्धतमसेनावृतः, तादृशावरणनाशाय दीपस्यावश्यकता। प्रकृते च वैकुण्ठादीनां यदि श्रुतिर्ज्ञापिका तदा तेषामन्यतः सिद्धौ वक्तव्यायां के तेऽन्य इति वक्तव्यमिति चेदुच्यते। यत् खलु ज्ञाप्यते तदन्यतः सिद्धमिति व्याप्तेरेवाभावात्। न हीश्वरो वेदेन ज्ञाप्यत इति स केनापि अन्येन प्रमाणेन सिद्धो भवति। अशक्यत्वात्। न हीश्वरादावलौकिके पदार्थे प्रमाणान्तराणां संभव इत्युक्तमुपरिष्टात्। तस्मादलौकिकी श्रुतिरलौकिकान् पदार्थान् साधयन्ती स्वयमेव ज्ञापयतीति स्वीकार्यं। न हि समर्थस्य कोऽपि भारः। सा चापौरुषेया। कमपि अभिप्रायविशेषमभिप्रेत्य जगदीश्वरेणानुक्तत्वात्। यद्धि वाक्यं कमपि अभिप्रायविशेषं मनसि कृत्वा केनापि कं प्रति निगद्यते तत् पौरुषेयमिति शास्त्रे व्यवह्रियते। यथा देवदत्त गामानयेति वाक्यं। इदं वाक्यं श्रुत्वा देवदत्तेनानींतायां गवि अहं तां धोक्ष्यामीति वक्तुरभिप्रायः। न चैवं कश्चनाभिप्रायो वेदस्योपदेष्टुरस्ति। अत एव स अपौरुषेय इति ज्ञेयं।

---


Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



## ( शुद्धाद्वैतवादिश्रीवल्लभमतस्यावतरणिका )

यथा खलु द्वैतवादिन्यः श्रुतयः प्रमाणं तथैवाद्वैतवादिन्यः श्रुतय इति तु सम्यगुक्तं। परन्तु एनमेव सिद्धान्तमवलंब्येश्वरशरीरनिमित्ताद्वैत-प्रतिपादनं तु न युक्तं। न हि शरीरानिमित्तमद्वैतं मुख्यमद्वैतं भवति। ननु ईश्वरकृतं यद्यद्वैतं स्वीकर्तव्यं तदा परमात्मनः परिणामित्वं स्यात्। तच्च नेष्टं। तत एव शरीरकृतमद्वैतं स्वीकृतमिति चेन्न। ईश्वरस्य जगत्परिणामित्वे का हानिः। ननु जाड्यापत्तिः। उच्यते। किमिदं जाड्यं नाम। वृत्तिव्याप्य-त्वमिति चेत्तदा परमात्मन्यपि जाड्यं त्वन्मते दुर्वारं। त्वया हि परमा-त्मनो भक्तवृत्तिव्याप्यत्वमंगीकृतं। जीवस्य च स्वीकृतचेतनस्य जाड्या-पत्तिः। तस्यापि वृत्तिव्याप्यत्वात्। अहं जानामीति वृत्तिविषयो जीव इति सर्वसम्मतं। न च परप्रकाश्यत्वं तदिति युक्तं। परिणामः परप्रकाश्य इति न व्याप्तिः। तैलपरिणामस्य दीपस्य परप्रकाश्यत्वाभावात्। न च दीपस्तेजसः परिणामो न तैलस्येति युक्तं। तथा सति तैलस्य किं प्रयोजनं। विनाऽपि तैलं प्रदीपः प्रज्वलेत्। न चैवं दृश्यते। तस्मात् परिणामित्वे जाड्यमापद्येतेति रिक्तं वचः। अयमत्र गूढो भावः। वस्तुनः परिणामित्वं स्वभावः। परिणामाश्च केचन सदृशाः, केचन विजातीयगुणशालिनः, केचनात्यन्तं विजातीया इति वैचित्र्यं। यथा—सुवर्णस्य परिणामः सदृश एव, दुग्धस्य परिणामो दधि आम्लरूप विजातीयगुणशाली, भुक्तस्य शर्करौदनस्य दुर्गंधि पुरीषं। सर्वेऽप्येते परिणामा एव। तथापि उपादान-कारणादेतेषामत्यन्तं वैचित्र्यं दृश्यते। तथैव परमात्मनः सकाशाज्जातोऽयं जगद्रूपः परिणाम इति सिद्धान्ते स्वीकृते न किञ्चित् दूष्यति। श्रुतौ च स्पष्टमेव जगत् ब्रह्मपरिणाम इत्युक्तं। “तद्विज्ञानं चाविज्ञानं चाभवत्” इति। अत्र विज्ञानपदेन चेतनं, अविज्ञानपदेन च जडं पृथिव्यादि परिगृहीतमित्यादि प्रतिपादयितुं श्रीवल्लभाचार्याः प्रक्रमन्ते।

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

# उत्तरमीमांसादर्शनम् ।

## तत्र—श्रीवल्लभमतं [ शुद्धाद्वैतं ]

| प्रश्नाः — | उत्तराणि :— |
| --- | --- |
| १ किं ज्ञेयम् ? | १ परमात्मपरिणामरूपं जगत् । |
| २ कीदृशो ज्ञाता ? | २ श्रीकृष्णसेवको ज्ञानभक्त्याश्रयः । |
| ३ अज्ञानस्य स्वरूपं किं ? | ३ अहं स्वतंत्रः सुखादीनां भोक्तेति। |
| ४ दुःखस्य स्वरूपं किं ? | ४ नानाविधदुःखयोनिसंभवः । |
| ५ ज्ञानस्य स्वरूपं किं ? | ५ अहं च श्रीनाथसेवक इति भावना । |
| ६ दुःखध्वंसस्य (मोक्षस्य) स्वरूपं किं ? | ६ गोलोकप्राप्तिः । भक्तिसुखे भेद-विस्मृतिः । |
| ७ एतेषु प्रमाणं किं ? | ७ श्रीभागवतं श्रुतिरेव च नान्यत् । |

**सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति पठ्यते ।**
**सर्वं ब्रह्मात्मकं विश्वं इदमाबोध्यते पुरः ॥ १ ॥**
**सर्वशब्देन यावद्धि दृष्टश्रुतमहो जगत् ।**
**बोध्यते तेन सर्वं हि ब्रह्मरूपं सनातनम् ॥**
**कार्यस्य ब्रह्मरूपस्य ब्रह्मैव स्यात्तु कारणम् ॥ २॥**

१

ननु जगदिदं सर्वं परमाणुभ्यो जातमिति वदत्सु नैयायिकेषु तथा प्रकृतेर्जातमिति गदत्सु सांख्येषु सत्सु कथं परमात्मनः सकाशाज्जायेत । कार्यकारणयोरत्यन्तं साम्यं यथा न भवति तथा तयोर्वैषम्यमपि अत्यन्तं न भवति । अन्यथाऽग्निजलयोरपि कार्यकारणभावः स्यात् । न च जगता साकं परमात्मनः केनापि अंशेन साम्यं । परमात्मा हि सर्वज्ञः, चेतनः, एकः, आनन्दरूपः । जगत्तु जडं, परप्रकाश्यं, नाना-

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



विधभेदशालि, दुःखरूपं। एवमत्यन्तवैषम्येऽपि यद्यनयोः परिणामरूपेण कार्यकारणभावस्तदा वह्निजलयोरपि स स्यात्। तस्मात्किञ्चित्साम्यं किञ्चिद्वैषम्यं परिणामत्वे प्रयोजकं वक्तव्यं। तच्च परमात्मजगतोर्न संभवतीति कथमनयोः कार्यकारणभावः। मैवं। जगतः परमात्मना साकं केनाप्यंशेन साम्यं नास्तीति यदुक्तं तन्न सम्यक्। सत्त्वेन साम्यस्य जगत्यपि सत्त्वात्। ये खलु जगतोऽसत्त्वं वदन्ति ते भवतो दूषणलक्ष्यं न वयं। वयं तु सुवर्णस्य भूषणवत् परमात्मनः परिणामभूतं जगत् सत्यमेव वदामः। अत एव 'पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते' इति श्रुत्युक्तिः संगच्छते। न हि जगतः कारणात् परमेश्वरात्तस्यात्यन्तं भेदेऽभेदे वेयं श्रुतिः संगच्छते। तस्माद्भूषणार्थं विलापितस्य सुवर्णस्य परिमाणं यथा पूर्वपरिमाणतो न भिद्यते, तद्वदेव जगदाकारेण परिणतस्य परमात्मनः पूर्णत्वं न हीयते इति ज्ञेयं। ननु आत्मनः परिणामभूतं जगद्भिन्नमभिन्नं वा? आद्ये विशिष्टाद्वैतमतप्रवेशः। अन्त्ये चाद्वैतप्रवेश इति चेन्न। यथा हि सर्पस्य भयाद्युपस्थितौ वर्तुलाकारेण समुपवेशनं, यथेच्छं संचरतस्तस्यैव प्रलंबाकारता, तथैव जगदाकारेण परिणतस्य तथा स्वरूपेणावतिष्ठमानस्य ब्रह्मणो न भेदः। अत एवास्य परिणामस्य न विकाररूपता। यो हि विकारः स मूलरूपतां न प्राप्नोति। यथा दधि दुग्धविकारभूतं पुनश्च न दुग्धरूपतां लभते। परन्तु परमेश्वरः सर्वमिदं जगत् स्वरूपेण विरचय्य न स्वात्मरूपतां त्यजति। यथा हि वर्तुलीभूतः सर्पः प्रलंबमानश्च सर्पः सर्प एव, तथैव जगदाकारेण परिणतोऽपि परमात्मा भगवानेव। इदमत्राकूतं। परमात्मा सर्वदा साकार एव। स च कदाचिल्लीलावशाज्जगदाकारेण परिणमते, कदाचित् जगद्रूपं विहाय वटस्य पत्रस्य पुटे शयानमित्यादिभिर्वर्णितं रूपमास्थाय तिष्ठति। लीलावशात् धृतैरेभिर्नानाविधै रूपैः परमात्मा न भिद्यते। विशिष्टाद्वैतमते भेदस्य नित्यत्वान्नास्मत्सिद्धान्तप्रवेशः। ननु

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


परमात्मनो जगदाकारेण परिणामे को वा हेतुः ? अस्मन्मते तु तत्तत्प्राण्यदृष्टमेव । तेन तेन परिणामेन तस्य तस्य जीवस्य सुखदुःखयोर्जननादिति चेदुच्यते । अदृष्टं हि कारणमिति कथं त्वयाऽवधृतं ? अन्वयव्यतिरेकदर्शनादिति चेत् कथमदृष्टेन पदार्थेन सह त्वयाऽन्वयव्यतिरेकौ गृहीतौ ? किं च—यावज्जीवं पापं कुर्वतोऽजामीलस्य कथं नारायणनामग्रहणेन मोक्षलाभः । पापी मोक्षं लभते इति न कस्यापि सिद्धान्तः । तस्माच्छतशो व्यभिचारदर्शनाददृष्टं न परिणामे कारणं किंत्विच्छैव तस्य सर्वज्ञस्य जगदीश्वरस्य । अस्मिन्नर्थे श्रुतिरपि 'एष एवासाधु कर्म कारयति तं यमेभ्योऽधो निनीषते' इति अनुकूला भवति । अपि च—कार्यमात्रं प्रति अदृष्टं कारणमिति ये सिद्धान्तयन्ति ते प्रष्टव्याः । कस्येदं अदृष्टं ? जीवस्य कर्तुर्वा परमेश्वरस्य कारयितुर्वा ? यदि जीवस्य तदा हन्तुर्हननसाधनीभूतस्य दण्डस्याऽपि अदृष्टं स्यात् । ननु जीवः स्वतंत्रश्चेतनः ? सत्यं । परन्तु तस्य प्रेरकः परमात्मैव । स हि यथा यथा प्रेरयति तथा तथाऽयं जीवश्चेतयते । यथा हि सेवकः स्वामिनियोगमनुसृत्य चौरं दण्डयति विद्वांसमनुगृण्हाति वा, न तत्र सेवकस्य चेतनस्य सतोऽपि पुण्यं वा पापं वा किंतु स्वामिन एव, तथैवेह परमात्माज्ञामनुसृत्य कार्याणि कुर्वतो जीवस्य न पुण्यं वा पापं वा किंतु परमात्मन एव । परमात्मनस्तु न सुखं वा दुःखं वा ? नन्वेवं कर्मणां वैय्यर्थ्यापत्तिः ? लीलारूपप्रयोजनवत्त्वान्न वैय्यर्थ्यं ? सर्वं हि यज्ञादिकं संन्यासादिकं वा युद्धादिकं वा कर्मजातं भगवतो लीलारूपं न कस्याऽपि सुखदं दुःखदं वा ? अज्ञो हि जीवः स्वस्य सुखं वा दुःखं वा मन्वानो हसति शोचति वा ? वस्तुतो भगवल्लीलैवेयमिति यथा स आज्ञापयति तथैव वर्तनीयमिति श्रेयोमार्गः । ननु आप्तकामस्य जगदाकारपरिणामे प्रवृत्तिरेव न संभवति । न हि कश्चनाप्तकामो लीलामपि करोति ? सत्यं । परन्तु भगवदिच्छाया अज्ञेयत्वात् सा तथाऽभूदित्यनुमीयते । वस्तुतस्तु भगवानेव सर्वं न

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


परिणामो नाम कश्चन तदतिरिक्तः पदार्थ इति ज्ञेयं। ननु ईश्वरस्याविकृतपरिणामो जगदित्युक्तं। तत्र च युक्तयोऽपि प्रदर्शिताः। परन्तु जगदाकारेण परिणाममानं ब्रह्म सर्वं परिणमतेऽथवांऽशेन। यदि प्रथमः पक्षस्तदा मुक्तैरुपसृप्यं ब्रह्म नावशिष्यात्। मुक्ता हि तद्ब्रह्म लभन्ते, तत्स्वरूपा भवन्तीति श्रुतिषु शतशः श्रुतं विरुध्येत। न हि सुवर्णस्य भूषणनिर्माणार्थं प्रविलाप्यमानस्य कश्चनांशो विलीयते कश्चनांशः स्थिर इति दृष्टं। यदि चान्यस्तदा ब्रह्मणः सांशत्वापत्तिः। न च का हानिरिति वाच्यं। तथा सति पटादीनामपि चेतनत्वापत्तिः। उच्यते। यथा हि कुण्डलीभूय तिष्ठन्नथ च लंबायमानो गच्छन् सर्पः स्वरूपात् सर्पत्वरूपान्न भिद्यते, एवमेव जगदाकारेण परिणममानो भगवान्न मुक्तोपसृप्यत्वरूपाद्भगवत्त्वाद्धीयते। यथा हि भूषणार्थं विलाप्यमानं सुवर्णं सुवर्णत्वं न जहाति, एवमेव भगवानपि स्वरूपमपरित्यजन्नेव लीलार्थं तत्तद्रूपेण परिणमते। अत एवेदं जगत् भगवतः सकलकल्याणगुणानिधेः श्रीनाथस्याविकृतः परिणाम इति सिद्धान्तीक्रियते। इदमत्र हृदयं। यथा हि किंचिद्भूषणं विक्रयार्थमापणे नीतं। तत्र क्रेतारः केवलं सुवर्णं कियन्मूल्यमिति जिज्ञासन्ते न तद्भूषणभूतमाकारं। ये खलु भूषणं वाञ्छन्ति ते तु सुवर्णं हीनमूल्यमपि भूषणकामेन भूषणं वाञ्छन्ति। तथैव जगदाकारेण परिणतेऽपि ब्रह्मणि मुक्ता इदं जगत् भगवद्रूपमेव ध्यायन्ति। जीवाश्च स्वस्वमतिवैचित्र्यमनुसृत्य घटादीन् पदार्थानिति। ननु जगदाकारपरिणामे ईश्वरेच्छा कारणमित्युक्तं। तत्रेयं जिज्ञासा। सा किमीश्वरेच्छा नित्याऽनित्या वा? नित्या चेदेकरूपैवेति तत्र भिन्नरूपत्वं न स्यात्। यद्यनित्या तदा तस्येश्वरत्वं व्याहन्येत। अनित्येच्छाश्च जीवा इति चेदुच्यते। भगवदिच्छा हि केवलं भक्तकल्याणविषयिणी नित्यैव। तादृशकल्याणविधानार्थं खलु घटपटाद्याकारेण परिणमनं भगवतः। यथा हि मातुः सुतपोषणेच्छैव सर्वत्रैकरूपा। परन्तु सुतस्य

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

पाचनशक्तिमनुसृत्य क्वचिद्दुग्धस्य वा क्वचिदोदनस्य वा प्रयोगस्तद्वदेव प्रकृते बोध्यं । तथा च भक्तकल्याणविधानेच्छया जगदाकारेण परिणममानस्य भगवतः श्रीनाथस्य लीलाभूतमिदं जगत्। न प्रकृतेः कार्यभूतं, नापि परमात्मनः शरीरभूतं । अत एवैकविज्ञानेन सर्वविज्ञानमुपपद्यते । सुवर्णविज्ञानेनालंकाराणां विज्ञानवदिति संक्षेपः ।

२

निरूपितं सर्वं जगत् भगवतः परिणामरूपमिति । अधुना जीवस्य भोक्तुः स्वरूपं निरूपणीयं । सोऽपि व्यापकस्य परमात्मनः परिणाम एव । ननु घटोऽपि परमात्मन एव परिणामो जीवोऽपि। तथा च किमिति घटो न चेतनो जीवो न जड इति चेन्न। परिणामानां वैलक्षण्ये केवलमीश्वरेच्छां मुक्त्वा नान्यत् कारणं भवितुमर्हति । ये खलु पृथिवीगुणवैचित्र्यं प्रति पाकसंयोगस्य कारणत्वं वदन्ति तैर्वक्तव्यं पाकसंयोगवैचित्र्यस्य कारणं किमिति । एवं च तस्य तस्येत्यनवस्था । इयमेवापत्तिरदृष्टवैचित्र्यं प्रत्यपि । तथा चागत्या सर्ववैचित्र्यं प्रति ईश्वरेच्छाया एकस्या एव कारणत्वकल्पनयोपपत्तौ अनन्तकार्यकारणभावस्य नावश्यकतेति हृदयं । तथा च परमात्मेच्छया यथा घटपटादयो जडाः पदार्था इह जगति समुत्पन्नास्तथैव जीवोऽपि । केवलमयं परिणामवैचित्र्याच्चेतन इति ज्ञेयं। नन्वयं जीवो व्यापको वा मध्यमपरिमाणो वाऽणुर्वा ? आद्ये परमात्मना समं साम्यं भवेत् । तथा च सेव्यसेवकभावो विलीयेत। न हि साम्ये सेव्यसेवकभावः । अथ द्वितीयस्तदा तस्यानित्यत्वं स्यात् । तृतीये तु सुखादीनामनुपलब्धिः । न हि परमाणुगतानां रूपादीनां प्रत्यक्षं जायते । मैवं । साम्यस्य सेव्यसेवकभावत्वेऽविरोधात् । राजाऽपि मनुष्यः सेवकोऽपि मनुष्य इति तयोर्मनुष्यत्वेन साम्येऽपि न सेव्यसेवकभावो विरुध्यते । सर्वथा साम्ये स विरोधः । तत्तु अस्माभिर्नोच्यते । द्वितीयोऽपि पक्षो निर्दुष्ट एव । अनित्यत्वेऽपि न क्वापि

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


हानिः। न च कृतविप्रणाशाकृताभ्यागमौ स्यातामिति वाच्यं ।ईश्वरेच्छाया नियामकत्वेनादोषात् । तृतीयोऽपि पक्षः समीचीन एव । न ह्यणुत्वं नाम परमाणुत्वं किंतु द्व्यणुकपरिमाणवत् परिमाणान्तरमेवाणुत्वं । तथा च न कोऽपि दोषः। वस्तुतस्तु परमाणूनामचेतनत्वेन तदाश्रितानां धर्माणां रूपादीनां प्रत्यक्षं न परन्तु जीवस्य चेतनत्वेन तदाश्रितानां प्रत्यक्षत्वं न किंचिद्विरुध्यते । किं च न केवलं तस्याणुत्वेन परमाणुत्वं । अणु-परिमाणं तथा परमाणुपरिमाणं च भिन्नं । परमाणुपरिमाणं च प्रत्यक्षत्वे प्रतिबंधकं न तु अणुपरिमाणं । सर्वमेतदुपपद्यते तथापि तस्य जीवस्याणु-परिमाणत्वमेव युक्तं । मूलतः परिणामे न्यूनपरिमाणस्य दर्शनात् । न हि यावत्परिमाणा मृत्तिका तावत्परिमाण एव घटः। नापि यावत्परिमाणं सुवर्णं तावत्परिमाणा एव विविधा अलंकाराः। अतो भगवतः परिमाणा-पेक्षया परिणामभूतस्य जीवस्य न्यूनपरिमाणत्वं युक्तमेव। तच्चाणुपरिमाणं । न परमाणु । येन न कोऽपि दोषः । ते च जीवा ईश्वरेच्छामनुसृत्य नानाऽऽकारधारिणस्तदादेशमनुसृत्य वर्तमाना इह जगति वर्तन्ते । ननु जीवस्य परतंत्रतया न स्वातंत्र्यं क्रियानुष्ठाने । तथा च समीचीनासमी-चीनक्रियाणां भोक्तृत्वं तेषां नेति क्रियाणामानर्थक्यं । तत्प्रतिपादकस्य वेदस्य वा शास्त्रस्य वा सुतरामप्रामाण्यं । न हि निष्फलं कर्म कुरु इति वदतो वाक्यस्य शास्त्रत्वं युक्तं । ईश्वरस्य चाप्राप्तकामस्य न फलप्राप्ति-राप्तकामत्वादिति चेन्न। स्वसेवकान् स्वाज्ञापालनदक्षान् विलोक्य यथा स्वामिन आनन्दः, एवमेव भगवतोऽपि आनन्दः संभवति । न चाप्त-कामत्वविरोधः । तस्य स्वातंत्र्येण कामनाभावे एव तत्तात्पर्यात् । न हि अकामयमानस्यापि महाराजस्य स्वसेवकसेवादाक्षिण्यमवलोकयतो मोदो न जायत इति दृष्टं । वस्तुतस्तु तासां तासां वेदशास्त्राज्ञप्तानां यागादि-क्रियाणामनुष्ठानादीश्वरकृपाप्रसादो जायते । तेन स्वर्गादिकं फलमपि लभ्यत इति कथं तासामानर्थक्यं। न ह्यस्माभिरदृष्टं नाम स्वतंत्रं फलदायि

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


किंचित् स्वीक्रियते। तस्मादविचाररमणीयमिदमानर्थक्यं। स च जीवो भगवदाज्ञापालनविमुखोऽनिशं स्वेन्द्रियवासनातृप्तिमेवाभिलक्ष्य यदा प्रवर्तते तदा दुःखं भजते। ननु दुःखस्य कारणमदृष्टं पापाख्यं भगवद्विरोधिक्रियाजन्यं स्वीकृतं नवेति चेन्न। भावानवबोधात्। भगवदाज्ञापालनवैमुख्येन भगवतोऽवकृपा तस्मिन् भवति। तेन च तस्य दुःखमिति सिद्धे कुत्रादृष्टस्यावश्यकता। नन्वीश्वरस्याज्ञा कथं ज्ञातव्येति चेदुच्यते। यथा हि कश्चन सार्वभौमो महाराजः स्वाज्ञानां ज्ञानार्थं ताः स्वपत्रिकायां मुद्रापयति, तां पत्रिकां वीक्ष्य तत्सेवका नूनमेतन्महाराजस्याभिलषितमिति जानन्ति, ज्ञात्वा च तदनुरोधेन प्रवर्तन्ते, तथैव जगन्नाथोऽपि स्वाभिलषितज्ञानाय वेदशास्त्रादिकं बोधयति। तत्र यल्लिखितं तत् सर्वमपि परमात्मन इष्टमिति ज्ञात्वा भक्ताः प्रवर्तन्ते। अत एव तेषां ग्रंथानां प्रामाण्यं। अत एव चापौरुषेयत्वं। न हि भगवदाज्ञाः कदापि पौरुषेया भवन्ति। इमे च जीवा भगवतो दासा एव। परन्तु भगवान् भक्त्यतिशयेन प्रीतः स्वयं सेवकभावमालंबते। यथा चार्जुनस्य सारथ्यं। यथा द्रौपद्या उपानद्धारित्वं। न चेदं पुराणलिखितमित्यवगन्तव्यं। न हि पुराणमित्यप्रमाणं भवति। यत् खलु वेदस्य प्रामाण्यं तदेव भगवता व्यासदेवेन विरचितस्य भागवतस्य वा भारतस्य च। युक्तमपीदं। बालप्रेम्णा वशीकृतहृदयः सम्राटपि पुत्रस्य सौख्यार्थं हस्तिभावं भजते। स्वप्रियपत्नीं संतोषयितुं स्वयं सेवकभावं भजते। तस्माद्भक्त्यतिशयवशीकृतभगवतां भक्तानां संतोषार्थं क्वचित् भगवानपि भक्तभावं भजते इति बोध्यं। स च जीवः प्रतिशरीरं भिन्नः। एकत्वे लीलानुपपत्तेः। न ह्येकेन काऽपि लीला संभवति। ईश्वरोऽपि एकाकी अरममाणो रमणार्थं नानाविधं विविधजीवमयं त्रैलोक्यं विरचयति। तस्माद्भगवतो भिन्नभिन्नकार्याणामनुष्ठानार्थं जीवनानात्वमावश्यकं।


Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


अत्यल्पमिदमुच्यते । वस्तुतस्तु स्वामित्वाभिमान एवात्राज्ञानं ज्ञेयं। तदुक्तं श्रुत्या—

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किं च जगत्यां जगत् ।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्वित् धनं ॥ ई. उ.

ईश्वरेणेदं जगत् सर्वं व्याप्तं । अतस्त्वं त्यागेन भुञ्जीथा इति उपदेशः। उपदेशविरुद्धं हि अज्ञानं भवतीति प्रसिद्धं । तस्मादीश्वरेण दत्तेषु पुत्र-कलत्रादिषु तथा धनगृहक्षेत्रादिषु च यः स्वत्वाभिमानं वहति स एवाज्ञा-नीति तदेवाज्ञानं बोध्यं ।

४

निरूपितमज्ञानस्य स्वरूपं । तेन प्रायस्तत्फलीभूतस्य दुःखस्य स्वरूपमपि ज्ञातकल्पमेव भवति, तथापि सविशेषं निरूपितं सुखेन बोधाय भवतीति निरूप्यते । तत्र दुःखं तावदिहाज्ञानतो जायते । तच्च मनःसंतापरूपमापामरं प्रसिद्धं । न ह्यस्मिञ्जगतीतले तादृशः कोऽपि जीवो यो दुःखं न जानाति । ईश्वरो हि एतादृशान् दुर्मदान्धान् प्रकृति-स्थान् विधातुं नानाविधान् यातनागारान्नरकलोकानुत्पादयति । ननु अनेन क्रूरत्वं भगवत आपद्यत इति चेन्न। यथा हि गुरुः शिष्यान् सम्यक् पाठयितुकामोऽभ्यासविधानायोपदिशति समुपदिश्याऽपि अनवहितान् चपेटादिभिस्ताडयति, तथैव परमकारुणिकः परमेश्वरो भूयो भूयः समुप-दिश्याऽपि उन्मार्गगामिनो जनान् विलोक्य यातनाभिस्तान् पीडयित्वा प्रकृतिस्थान् विधत्ते । तेन न तस्य क्रौर्यं किंतु दयालुतैव । तदुक्तमी-श्वरगीतासु— ‘ सृजाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ’ इति । वस्तुतस्तु यथा दीपस्यादर्शनमेव तमसः सत्त्वं तन्निमित्तमान्ध्यं तन्नि-मित्तानि च दुःखानि तथैव प्रकृते परमात्मविस्मृतिरेव दुःखमिति। तेन हि विषयेषु सुखभावनालोभाकृष्टमना जीवस्तत्र तत्र प्रवर्तमानोऽपि सुखलवमप्य-लभमानः परं दुःखायते। किं च पापानि कुर्वतोऽस्य मनसि परमात्मभावना

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



प्रथमं लुप्यति ततः परं पापं कर्तुं प्रवर्तत इत्यनुभवसिद्धं । यथा चोरस्य चौर्ये प्रवर्तमानस्य राजदंडविस्मृतिः, एवमेव पापिनः पापे कर्मणि प्रवर्तमानस्येश्वरसत्ताविस्मृतिरेव भवति । ननु कथमास्तिकस्य भगवत्सत्ताविस्मृतिः ? आस्तिको हि सर्वदा भगवदस्तित्वं मन्यमानोऽपि विषयसाम्मुख्ये तल्लोभप्राबल्येन समाकृष्टमना ईश्वरं विस्मरति । तेन स पापे प्रवर्तते । अत एव दृढाभ्यासस्तत्र कारणमिति शास्त्राणि वदन्ति । भगवतः सत्ता तु केवलं शब्दप्राप्ता स्वस्थे चेतसि स्थिता न कार्यकारिणी किंतु सततं परिशीलनदृढाभ्यासध्यानधारणादिभिः परमदृढीकृता । दृढीकारश्च व्यामोहसमये व्यामोहानुत्पादेन बोध्यः । तथा च भगवानेवास्य सर्वस्य दृश्यादृश्यजगतः स्वामीतिबोधनाश एवाज्ञानं । ननु नाशः कथमज्ञानं । तस्याभावरूपत्वादिति । सत्यं । कार्यकारणयोरभेदेन तथा व्यपदेशः । वस्तुतस्तु व्यामोहकारिणी अज्ञानं नाम भगवतः शक्तिरेव । ननु कथमज्ञानमपि भगवतः कार्यं । उच्यते । भक्तानां परीक्षार्थं व्यामोहोत्पादनमावश्यकं । अन्यथा भक्ताभक्तव्यवस्था न स्यात् । तस्मात् भक्तानां स्वस्मिन् विद्यमानां श्रद्धां परीक्षितुं भगवानपि व्यामोहकार्यसाधनीभूतमज्ञानं करोतीति विज्ञेयं । ततश्च दुःखान्यपि परीक्षाफलान्येवेति सिद्धं ।

५

निरूपितमज्ञानफलं दुःखं । अधुना मोक्षसाधनीभूतं ज्ञानं निरूपणीयं । यद्यपि अज्ञानस्य निरूपणेन ज्ञानं निरूपितकल्पमेव भवति तथापि ज्ञानसाध्यस्य मोक्षस्य परमपुरुषार्थतया साधनीभूतं ज्ञानं सम्यक् निरूपणीयमेव । तत्र ज्ञानस्य सामान्यलक्षणं तद्वति तत्प्रकारकत्वं सर्वसम्मतं । न तत्र कस्याऽपि विप्रतिपत्तिः । जगतः कारणीभूतं ब्रह्मैव कार्यमपि ब्रह्मैव । न तत्रात्यंतिको भेदो नात्यंतिकोऽभेदोऽपि । तदिदं ज्ञानमत्र मते प्रमात्वेनोच्यते । सर्वं खल्विदं ब्रह्मेति श्रुतेः । तत्त्वमस्यादिश्रुतिभिरस्यैव तत्त्वस्यासकृत् प्रतिपादितत्वात् । नन्विदं सर्वं ब्रह्मैवेति

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


यदोच्यते तदाऽद्वैतमतादस्य को वा भेदः। उच्यते। अद्वैतवादिनः सर्वं जगदिदं मायाविकार इति वदन्तो मिथ्यात्वेन व्यवहरन्ति। वयं तु ब्रह्मस्वरूपमेवेदं मन्वानाः सत्यं वदामः। अद्वैतिनां मते जगदिदं ब्रह्मणि रज्ज्वां सर्प इव शुक्तौ रजतमिव मिथ्याभूतं भासत इति। अस्माकं मते तु तदिदं सुवर्णेऽलंकारवत् वर्तुले सर्पे लम्बायमानसर्पवत् ब्रह्मणि ब्रह्मरूपमेव भासते। अतो जगतो नित्यत्वमपि अर्थादेव सिध्यति। अत एवास्य मतस्य नामधेयं शुद्धाद्वैतमिति। शुद्धमेवाद्वैतमिति तु विग्रहः। न तु मायामयमिति तु तत्त्वं। युक्तमपीदं। कथमन्यथा हरिर्दाता हरिर्भोक्ता हरिरन्नं प्रजापतिरित्यादिवचनानां संगतिः स्यात्। अत एवास्य सिद्धान्तस्य नाम पुष्टिसिद्धान्त इत्यपि संगच्छते। तत्र पुष्टिर्नाम पोषणं तदनुग्रह इति वचनादीश्वरानुग्रह इत्येव पुष्टिपदार्थः। अत्रेदं तत्त्वं। सर्वस्याऽपि सुखदुःखान्यतरसाक्षात्काररूपभोगस्य जन्मान्तरीयं क्वचिदिहैव कृतमत्युत्कटं कर्मैव कारणमित्यनुमानेन वा क्वचिच्छ्रुतिवचनेन वा ज्ञायते। तेन प्रायः सर्वे एव जीवाः कर्मणि लब्धादरा वेदोक्तानि वा पुराणोक्तानि कर्माणि कर्तुं यतन्ते। न ते परमात्मानं ध्यायन्ति। प्रत्युत ये खलु ईश्वरास्तित्ववादिनो नैयायिकादयः सन्ति तेऽपि ईश्वरस्य वैषम्यनैर्घृण्यपरिहारार्थं कर्मसापेक्षमेव सर्वं करोति परमेश्वर इति वदन्त ईश्वरं केवलं न्यायाधीशमेव मन्यन्ते। तदिदमीश्वरस्य गौणत्वं श्रीमदाचार्यचरणाः श्रीवल्लभा न सहन्ते। ते वदन्ति—यदि परमेश्वरेणोक्तस्य वेदस्य कर्मण्येतादृशी श्रद्धा तदा साक्षात् परमेश्वरे तथा कुतो न ? किं च यो ह्येतादृशमलौकिकं वेदं निर्मायोचितं कर्मोपदिशति स किं शरणागतान् स्वयमुद्धर्तुमशक्तः स्यात्। यो हि कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं शक्तः स एवेश्वरो नान्य इति तु सर्वेषां वैष्णवानामैकमत्यं तदा कुतः कर्मापेक्षा ? अपि च वेदोक्तकर्मणां कर्मपदेन ग्रहणे केवलमार्याणामेव ग्रहणं स्यात्। तत्रापि येषां त्रैवर्णिकानामधिकारस्तेषामेव कर्मणि प्रवृत्तिस्तेषामेव तत्फलभाक्त्वं। येषां तु स्त्रीशूद्रादीनां तत्र

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


नाधिकारः तेषां का वा गतिः ? न च तेषां पुराणोक्तकर्माचरणाद्भविष्यति गतिरिति वाच्यं। यदि च वेदोक्तकर्माचरणात्तथा पुराणोक्तकर्माचरणात् समानैव गतिर्न तत्र कोऽपि विशेषस्तदाऽतिकठिनवेदोक्तकर्माचरणमार्गात् पुराणोक्तकर्माचरणमार्ग एव श्रेयानापद्येत। तथा च त्रैवर्णिकापेक्षया शूद्रादय एव कृतिनो भवेयुः । तस्माद्ये खलु जगन्निवासं श्रीनाथं साक्षादेव शरणीकुर्वन्ति ते पुष्टिभाजः, तेषां यशोदानन्दनः साक्षादेवोद्धर्ता न तेषां कर्मापेक्षा। नन्वेवं वेदाप्रामाण्यापत्तिः। तत्रोक्तानां कर्मणामाचरणाद्विनैव यदि परमं श्रेयो लभ्यते तदा तेषामानर्थक्यं प्राप्तं । तथा चानर्थकानां कर्मणां बोधकस्य वेदस्याप्रामाण्यं गले पतितमेव । उच्यते । येषां जीवानां पूर्वजन्मसञ्चित-पुण्यातिशयेन वा परमात्मकृपया वा निरतिशयो भगवति श्रद्धातिशयस्ते-षामेव पुष्टिसंप्रदायानुयायित्वं संभवति नेतरेषां । येषां तु तादृशो न श्रद्धातिशयस्तेषां वेदोक्तकर्माचरणेऽस्त्येवाधिकारः । अयमेव कर्माधिकार-मार्गो मर्यादामार्गपदेन तत्र तत्राभिधीयते । तत्र च विविधानां वेदोक्तानां कर्मणां समाचरणाद्भवति तत्तदुक्तफललाभः । यथा ‘ यागेन स्वर्गकामो यजेत’ इत्यत्र विश्वस्य यो यागं यथाविधि विधत्ते स स्वर्गं फलं लभत एव। परन्तु यः खलु तेषां तेषां कर्मफलानामनित्यत्वं कष्टसाध्यत्वं निरीक्ष्य निर्विण्णः शाश्वतं सुखं वाञ्छति स फलेषु तत्तद्यागानां निरुक्तेषु कर्मसु च आसक्तिं विहायेश्वरार्पणबुद्ध्या तानि कर्माणि समाचरन् तादृश-फलानि जगदीश्वरे समर्पयति । एवं विधीयमानेषु कर्मसु भगवत्कृपया स निरतिशयं श्रद्धातिशयं लभते । तेन स सर्वेषां लौकिकानामलौकिकानां वा कर्मणां फलेषु आसक्तिं विहाय केवलं—

तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः ।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ॥ १ ॥

इति परमात्मगीतगीतार्थमनुसृत्य कृष्णार्पितप्राणो वर्तते । नास्ति तस्य विधिनिषेधयोरावश्यकता । अयमेव जीवः पुष्टिजीव इत्युच्यते । यथा

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



खलु जीवन्मुक्तानां नास्ति विधिनिषेधयोरावश्यकता तथैव पुष्टिजीवानामपि न धर्माधर्मयोरस्ति अपेक्षा। ते हि हरिकृपाशालिनः सदैव जगन्नाथं गोवर्धनोद्धारिणं कंसारिं शरणीकृत्य वीतचिन्ताः तद्रूपमेव सर्वं जगद्भावयन्त आनन्देन क्रीडन्ति। एवमधिकारिविभागे विहिते न वेदस्य वा वेदोक्तानां कर्मणां वा वैय्यर्थ्यं। यदि नैवं, सर्वस्याऽपि सुखस्य वा दुःखस्य वा कारणं कृतं कर्म तदाऽजामीलस्य कथं पापराशेर्नाममात्रग्रहणात् क्षयः। अर्थवाद इति चेत् किमयं प्रमा न वा? आद्ये कथं न तदा कर्मणो वैय्यर्थ्यं। यावज्जन्मकृतस्य वेश्यागमनादिजनितस्याजामीलपापस्य कुतो नामग्रहणमात्रेण नाशः। अस्तु वा ब्राह्मणस्याजामीलस्य कथमपि कथा तथापि गजेन्द्रस्य कथं संगतिः। न हि तत्र कथमपि वेदोक्तकर्मणामस्त्यवकाशः। पशुत्वाद्गजेन्द्रस्य। तस्मात् प्राक्तनकर्मणां बलेन यैस्तादृशः श्रद्धातिशयो भगवति श्रीयशोदानन्दने लब्धो नास्ति तेषां वेदोक्तकर्मणां वा वेदोक्तीनां वाऽऽवश्यकता। यदि कश्चन साहसिको न सन्त्येव तादृशाः पुष्टिजीवा इति वदेत्तदा स प्रष्टव्यः—किं न श्रुता त्वया भक्तवरस्य प्रल्हादस्य कथा। न श्रुता वा ध्रुवस्य वार्ता। न वा तव कर्णपथमापतितोऽर्जुनस्य भगवता कृतः सारथ्यविधिः। सत्स्वपि एतादृशेषु असंख्येषूदाहरणेषु श्रुतिस्मृतीतिहासपुराणादिषु न सन्त्येव तादृशा जीवा इति यो वदेत् स श्लाघनीयप्रज्ञो देवानां प्रियः स्वसत्तामपि कथं भावयेत्। पितृप्रकोपानलस्य महताऽऽनन्देन सहनं, सर्वस्वं दास्यामीति उक्त्वाऽनुपदं धावतः पितुश्च त्यागः, प्रतिक्षणं प्राणहरणदक्षाणां कौरवाणां तीव्रेभ्योऽस्त्रेभ्यः सुतस्येवार्जुनस्य परिरक्षणं, परमात्मनि श्रद्धातिशयं विनाऽपि भवेदिति यो वदेत् स किं प्रतिवक्तव्य इति न वयं जानीमहे। ईश्वर एव तं प्रति स्वास्तित्वं प्रकटयतु इत्येवास्ति अस्माकमाशीः। प्रकृतमनुसरामः। ननु ईश्वरावताराणामनन्तत्वात् कस्मिन् ध्यानधारणादिकं विधेयं। कस्मिन् वा सेवादिकं समर्पणीयमिति

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

चेदुच्यते। यद्यपि भक्तरक्षणार्थं दुर्जननिर्दलनार्थं च ये ये भगवताऽवतारा गृहीतास्ते सर्व एव पूजार्हाः । नात्र लेशतोऽपि संशयः । तथापि यत्र भक्तरक्षणं तथा भक्तमनोरथपरिपूरणं प्राधान्येन स एवावतारो भगवतः प्रधान इति न्यायतः प्राप्तं। युक्तमपीदं । न हि सर्वसामर्थ्यशालिनः सर्वं कर्तुं क्षमस्य भगवतः कश्चन याथार्थ्येन शत्रुरस्ति येन तन्निर्दलनार्थं भगवान् स्वयमवतरेत् । किंतु लीलार्थमेव शत्रुनिर्माणं । तथापि भक्तानुग्रहं विहाय शत्रुनिर्दलनलीलापि न प्रीतये इति भक्तानुग्रहलीलैव मुख्या । सा च यत्र प्राधान्येन स एवावतारः श्रेष्ठ इति न्याय्यमेव । एवं विचार्यमाणे सर्वेष्वपि भगवदवतारेषु कृष्णावतार एव श्रेष्ठ इति सर्वेऽपि वदेयुः । अत्र च गोपीजनरंजनमेव प्राधान्येन प्रतीयते । अत एव वसुदेवाद्देवक्यां मथुराक्षेत्रे प्राकट्यं प्राप्याऽपि पुनर्यशोदायां नंदात् गोकुले प्राकट्यदर्शनं संगच्छते । यदि हि कंसवध एव कृष्णावतारस्य प्रधानं प्रयोजनमभविष्यत्तदा स एव प्रथमतो नन्दनन्दनेनाकरिष्यत । न कृतः । कृतं तु गोपीजनरंजनं बाललीलाभिश्चातिमधुराभिः । यशोदानंदौ च कृतकृत्यौ कृतौ । तस्माद्गोपालभक्तवरसंतोषणमेव कृष्णावतारस्य प्रधानं प्रयोजनमिति बालोऽपि वदेत् । अत एव–' अंशावताराः सर्वे हि कृष्णस्तु भगवान् स्वयं ' इति प्राचीनानामुक्तिरपि संगच्छते । अतः स एव भगवान् सेवनीयः, पूजनीयः, वंदनीयः, आश्रयणीयः, शरणीकरणीयः, तस्मिन्नेव स्वप्राणाः समर्पणीयाः । सर्वेभ्यः प्रियेभ्यो वस्तुभ्यः प्राणानामतिप्रियत्वं सर्वजनविदितं । तत्समर्पणेन सर्वसमर्पणमर्थाल्लभ्यते । एतदेव ज्ञानं । अनेनैव सर्वदुःखनाशो महानन्दलाभश्चेति ज्ञेयं ।

६

निरूपितं ज्ञानस्य स्वरूपं। अधुना तत्फलीभूतं मोक्षं निरूपयामि। ननु प्रश्ने दुःखध्वंसः पृष्टः कथमिह मोक्षो निरूप्यते । सत्यं । दुःखध्वंसरूपं केचन मोक्षं वदन्ति अन्ये सुखरूपं । प्रश्ने च दुःखध्वंसपदेन


Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

मोक्ष एव गृह्यत इति नासंगतिः। तत्र बंधस्य पुत्रदारादिषु ममत्वाभिमानरूपस्य त्याग एव मोक्षो भवितुमर्हति। विरोधिरूपत्वात्। तथापि अस्ति विशेषो मोक्षे तं निरूपयितुमयमारंभः। तत्र प्रायः सर्व एव दर्शनकारा दुःखध्वंसमेव मोक्षं वदन्ति। तन्न सम्यक्। न हि दुःखध्वंसः स्वयंपुरुषार्थ इति प्राक् सम्यक् निरूपितं। वैकुण्ठवासो मोक्ष इति अस्मदीयाः। तत्र ये खलु शरीराभेदेनाद्वैतं ब्रुवते तान् ब्रूमः। कथं सुखं जीवस्य मोक्षे। निजसुखाभिव्यक्तिर्हरिकृपात इति चेत्। तस्याणुरूपस्य कियत् सुखमाविर्भवेत्। कथं च तादृशस्य मोक्षस्य परमपुरुषार्थत्वं? कथं वा महताऽऽयासेन संपाद्यत्वं वा? तस्मादधिकेन सुखविशेषेणात्र भाव्यं। स च सुखविशेषो भगवल्लीलाप्रवेशेन भवतीति स एव मोक्ष इति वयं ब्रूमः। तथाहि। द्विविधा लीला भगवतः। एका जगल्लीला, अन्या गोलोकलीला। तत्र जगल्लीलायां मर्यादामार्गिणः प्रायोऽधिका जीवा वर्तन्ते। ते च क्रमेण मर्यादामार्गं सम्यगाचर्य लब्धश्रद्धा भगवत्कृपायोग्यतां भजन्ते। यथा हि क्लिन्नं काष्ठं वन्हौ समाहितं क्रमेण विनिर्गतजलं दहनाय योग्यं भवति। अथ योग्ये तस्मिन् वन्हिः कृपां करोति, तद्वदेवानादिना पापसंचयेन समालिप्तो जीवो न हरिकृपापात्रं। स एव क्रमेण मर्यादामार्गोक्तं सत्कर्मचयं समाचरन् नष्टपापसंचयो भगवत्कृपापात्रं भवति। जातायां च हरिकृपायां स जीवन्नपि कृष्णार्पितप्राणतया न किंचिदपि कायिकं वाचिकं वा मानसं वा दुःखं विजानाति किंतु सर्वमपि हरिरूपमेव पश्यन् भगवत्स्वरूपसाक्षात्कारसुखमनुभवति। यदा च स प्रारब्धकर्मक्षये देहं जहाति तदा स गोलोकमायाति। तत्र च निर्विशेषं भगवल्लीलादर्शनसुखमनुभवति। ननु जगतो गोलोकस्य को वा विशेषः? जगतोऽपि भगवत्परिणामरूपत्वात्? उच्यते। अत्र च केचन मर्यादामार्गिणोऽपि जीवाः, केचन पापमतयः, अन्ये च नारकीर्यातना अनुभवन्त इति जीववैचित्र्यं। तत्र तु केवलं भगवत्कृपातिशयेन प्राप्त-

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


श्रद्धातिशयाः केवलकृष्णरूपरूपा एव जीवा इति महद्वैषम्यं । तत्र च श्रीकृष्णस्वरूपदर्शनं तथा भगवतः प्रेमरूपान् लीलातिशयान् विहाय नान्यः कोऽपि प्रकारः । तेन सुखसागरमग्नमात्मानं मन्यमानो जीवो न किंचिदन्यद्भावयति । एतादृशस्य सुखातिरेकस्य मोक्षत्वं युक्तं । न पुनः स्वसुखाभिव्यक्तेः । अत्यंतन्यूनपरिमाणत्वात् । अयं च पुष्टिमार्गस्य मोक्षः । तत्र मर्यादामार्गस्य निजसुखाभिव्यक्तिर्मोक्षः । पुष्टिमार्गस्य तु उपरिनिवेदितः । पुष्टिपुष्टेस्तु नित्यं भगवतो व्रजलीलायां दिव्यायां सांनिध्यं । ननु कोऽयं पुष्टिपुष्टिमार्गः ? उच्यते । पोषणं तदनुग्रह इति वचनात् पुष्टिशब्देन हरिकृपोच्यत इति पूर्वमेवोक्तं । तत्र श्रीनाथकृपया संसारदुःखान्यपोह्य भगवल्लीलादर्शनं मोक्षः परमं फलं यत्र स पुष्टिमार्ग इत्यपि निरूपितं । केवलं लीलादर्शनेन तादृशसुखलाभो न भवति यादृशो हि लीलाप्रवेशेन । तस्माद्येषां जीवानां तादृशदिव्यलीलायां प्रवेशाधिकारस्ते पुष्टिपुष्टिजीवा उच्यन्ते । अयमेव पुष्टिपुष्टिमार्गः । तत्रागणितालौकिकभाग्यशाली गोपीजनस्तथा व्रजवासिनः पशुपक्ष्यादयोऽपि सर्वे पुष्टिपुष्टिजीवा एव । ते च सर्वदैव भगवल्लीलायां प्रविष्टा दुःखकणिकयाऽप्यस्पृष्टा अलौकिकं सुखराशिमनुभवन्ति । ननु व्रजलोकः किं जगतो वा गोलोकाद्वा भिन्नः ? सत्यमेव भिन्नः । यत्र हि नित्यं सन्निहितो गोपालः समं दिव्यैर्नानाविधैः पुष्टिपुष्टिजीवैर्गोपालैः दिव्यां लीलां विधत्ते, यत्र च लीलां द्रष्टुमिन्द्रादयोऽपि कांक्षन्तो नावसरं लभन्ते स व्रजलोकः सत्यमेवेन्द्रशासिताज्जगतस्तथा कादाचित्कलीलापात्राद्गोलोकाद्भिन्न एव । ननु इह लोकेऽपि व्रजो वर्तते ? सत्यं वर्तते । परन्तु ये खलु तादृशपुण्यातिशयप्राप्तभगवदनुग्रहास्तत्र नित्यं संनिहितं भगवन्तं व्रजाधिपं साक्षात्कुर्वन्ति तेषामेवायं व्रजलोकः । ये तु भूमिभागं भावयन्ति तेषां कृते जगदंश एव । ननु भावनाकृतोऽयं विशेषः ? सत्यमेव भावनाकृतः । अत्यल्पमिदमुक्तं । वस्तुतस्तु जगति सर्वोऽपि पूज्यापूज्यव्यवहारो भावना-

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


कृत एव। अन्यथा गंगायां कूपजले च को वा विशेषः। ननु तत्राप्यस्ति शंकेति चेत्। सत्यं। पापिनां शंका सर्वत्र स्यादेव परन्तु तैर्वक्तव्यं मातुश्च भार्यायाश्च को वा विशेषः ऋते भावनायाः। अवयवसाम्यं हि उभयत्रापि समं। तस्मात्तत्र यथा भावनामेकां विहाय नान्यत् किमपि गमकं भेदस्य, एवमेव सर्वत्रापि विज्ञेयं। ये खलु पापा भगवन्तं कल्पितं पाषाणरूपं वाऽसन्तं वा वदन्ति त एव तथा भवन्ति न भगवान्। भगवांस्तु नित्यं स्वशरणागतान् पावनान् जनान् स्वसाक्षात्कारेणानुगृह्णन् सर्वदैकरूप एव। अस्तु। प्रकृतमनुसरामः। तथा च शुद्धाद्वैतमते परमो मोक्षः पुष्टिपुष्टिजीवानां। ततः पुष्टिजीवानां, ततोऽपि न्यूनो मर्यादा-जीवानामिति क्रमेणापकर्षो बोध्यः।

७

प्रमेयं सर्वं निगदितं। अधुना प्रमाणं निरूपणीयं। तत्रास्य सर्वस्याऽपि प्रमेयस्यालौकिकतया तत्र प्रमाणेनापि अलौकिकेन भाव्यं। तत्र यद्यपि अपौरुषेयो वेदोऽखिलोऽपि प्रमाणं भवितुमर्हति तथापि प्राधान्येन तत्र प्रमाणं यैरनुभूतमिदं साक्षात्कारसुखं तेषां वाच एव। ननु किं वेदादपि तेषां वाचः परमं प्रमाणं भवितुमर्हन्ति ? अथ किम्। अर्हन्त्येव प्रमाणं भवितुं। तथाहि। द्राक्षा मधुरा इति वाक्यं पुस्तके लिखितं। तथा केनाचित् द्राक्षाः प्रत्यक्षं समास्वादिताः। अत्र येन समास्वादिता द्राक्षास्तस्य 'द्राक्षा मधुराः' इति वाक्यं वा प्रमाणमथवा पुस्तके लिखितं वा तथा वाक्यं प्रमाणमिति भवन्त एव विचारयन्तु। निःसंशयं द्राक्षास्वादयितुरेव तथा वाक्यं प्रमाणामिति बालोऽपि वदेत्। तथा च येन भगवल्लीलाः साक्षात्कृतास्तस्य श्रीव्यासदेवस्य वाक्यं भागवत-रूपं वा प्रमाणमथवा वेदोक्तं वा तादृशमपौरुषेयं प्रमाणमिति सुधिय एव विचारयन्तु। दुराग्रहरहिता अपौरुषेयत्वपिशाचिकाऽग्रस्तमनसस्तु सज्जना भागवतमेव भगवत्स्वरूपनिर्णये तथा तदीयदिव्यलीलावर्णने

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


प्रमाणं नान्यदिति निर्णयेयुः । अतस्तदेवात्र मुख्यं प्रमाणं । अन्यदपि तदनुकूलं प्रत्यक्षं वाऽनुमानं वा शब्दो वा प्रमाणमेव । न तत्राग्रहः । परन्तु तल्लीलासाक्षात्कर्तुरेव वाक्यं प्रमाणं भवितुमर्हतीति न्याय्यं । ननु वेदादपि पौरुषेयं भागवतं कथं प्रमाणं भवितुं योग्यमिति चेत् श्रूयतां। कथं भागवतं पौरुषेयमिति त्वया विज्ञातं ? पौरुषेयं हि तद्भवति यत् खलु केनापि कामेन लिखितं भवेत् । यथा मम कीर्तिर्भवतु स्वर्गलाभो वा मे भवतु इति कामनया यदुच्यते तत् खलु पौरुषेयं । इदं भागवतं तु केवलं भगवल्लीलावर्णनरूपं, न तत्र कोऽपि व्यासदेवस्य कामः । यथा हि भगवान् भास्कर उदित एव तमो निहन्ति न तत्र तस्य कामस्तथैव भगवतो लीलाया वर्णन एव श्रीव्यासदेवस्य तात्पर्यं न पुनरन्यदिति कुतो न श्रीमद्भागवतस्यापौरुषेयत्वं । अस्तु वा पौरुषेयत्वापौरुषेयत्व-विवादः । परन्तु भगवल्लीलावर्णने तल्लीलासाक्षात्कार्येव समर्थ इति तद्वाक्यमेव प्रमाणमिति बोध्यं । किं च तत्रभवान् व्यासदेवः सर्वं महाभारतं पंचमवेदत्वेन सर्वैः समादृतं निर्माय शान्तिमलभमानः खलु महाभागवतश्रीनारदोक्तिं प्रमाणीकृत्येदं श्रीमद्भागवतं लिलेख । ततश्च सर्वदुःखरहितोऽपूर्वां शान्तिं लेभ इति श्रूयते । अत्रेदमवश्यं विचार्यं । सकलवेदार्थवित् वेदानां व्यसनाद्व्यासपदवीं प्राप्तो भगवान् पाराशरिः कुतः खलु पूर्वं शान्तिं नालभत यदि वेद एवापौरुषेयः शान्तेः कारणं । ननु मोक्षस्य कारणं वेद इत्युक्तं । भ्रान्तोऽसि, मोक्षस्य महाशान्ति-रूपत्वात् । तस्मात् कृतभगवत्साक्षात्कारैर्व्यासदेवैर्विरचितं भागवतं भगवल्लीलास्वरूपप्रमावर्णने प्रमाणं भवितुमुचितमिति तदेव प्राधान्येन प्रमाणमिति कृतबुद्धयो विदांकुर्वन्तु ।

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



## ( अद्वैतवादिश्रीशांकरमतस्यावतरणिका )

ननु जगतः कारणं परमात्मा सुवर्णमिव भूषणस्येति यदुक्तं तत्र जिज्ञास्यते । कस्य वा जगतः कारणं परमात्मा ? ननु दृश्यमानस्येति चेत् केन दृश्यमानस्य ? देवदत्तेन वा ? यज्ञदत्तेन वा ? त्वया वा ? मया वा ? ननु किं प्रत्येकं दृश्यमानं जगद्भिद्यते ? अथ किम् । यद्येकरूपमेव जगत् तदा पद्मावतीमलौकिकसौंदर्यखनिं पश्यतां त्रयाणां पुरुषाणां कथं मतिभेदः ? यस्य सा भार्या तं प्रति सुखमयी । तां यो नालभत तं प्रति सा दुःखदायिनी पापा । यो हि समुदास्ते तां प्रति तमोमयी। कथं खलु एकां पद्मावतीमभिलक्ष्य परस्परविरोधिनोऽमी भावा जायन्ते। ननु मानसिका इमे भावा इति चेत्तदा पद्मावती कीदृशीति वक्तव्यं भवेत् । किञ्च मानसिकानां भावानां जनने वस्तुनः कारणत्वमस्ति न वा ? यदि नास्ति तदा वस्तुकल्पनया किं ? तथा च विज्ञानवाद-प्रवेशः । अथ यद्यस्ति तदा कथमेकरूपात्तस्माद्विरुद्धानां त्रयाणां मानसिकानां विकाराणामुत्पत्तिः ? अतो विज्ञानवादप्रवेशपरिहाराय तिस्र एव त्रिषु मानसिकविकारेषु विषयीभूताः पद्मावत्योऽवश्यं स्वीकार्याः। पद्मावत्या च सर्वं जगत्स्वरूपं व्याख्यातं । तथा च कस्य जगतः कारणं परमात्मेति प्रथमं वक्तव्यमापतितं । यदि च तत्तज्जगद्भेदेन परमात्माऽपि कारणीभूतः पृथगित्यंगीक्रियते तदा परमात्मनानात्वं । तथा च कस्य वा मुक्तोपसृप्यत्वं ? कस्य वा जगदधिष्ठानत्वं ? कस्य वा शरणीकार इति सर्वं व्याकुलमापद्यते। किं च ज्ञानस्य प्रामाण्यं किं वस्तुमूलकमथवा भावना-मूलकं? यदि भावनामूलकं तदा पद्मावतीविषये जायमानास्त्रयोऽपि मान-सिका विचाराः प्रमाणभावं भजेरन्। परस्परविरोधान्नैकोऽपि प्रमाणं भवेत्। तस्माद्वस्तुमूलकं तदित्यगत्या स्वीकरणीयं । तथा च पद्मावती कीदृशं वस्तु इति वक्तव्यं । यदि पूर्वोक्तगुणत्रयातीतं तदाऽर्थादेव समागतमनिर्वाच्यत्व-मित्यादितत्त्वप्रतिपादकं श्रीशंकराचार्यमिश्रैरुपपादितमद्वैतमतं प्रस्तूयते ।

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

# उत्तरमीमांसादर्शनम् ।

## तत्र—श्रीशांकरमतम् [ अद्वैतम् ]

| प्रश्नाः — | उत्तराणि :— |
|---|---|
| १ किं ज्ञेयम् ? | १ मायिकं जगत् । |
| २ कीदृशो ज्ञाता ? | २ अन्तःकरणावच्छिन्नं चैतन्यं । |
| ३ अज्ञानस्य स्वरूपं किं ? | ३ त्रिगुणात्मकमावरणविक्षेपशक्ति-विशिष्टमतस्मिंस्तद्बुद्धिरूपं । |
| ४ दुःखस्य स्वरूपं किं ? | ४ बाधनालक्षणं । |
| ५ ज्ञानस्य स्वरूपं किं ? | ५ सच्चिदानन्दोऽहमिति । |
| ६ दुःखध्वंसस्य (मोक्षस्य) स्वरूपं किं ? | ६ दुःखबाधः । |
| ७ एतेषु प्रमाणं किं ? | ७ प्रत्यक्षमनुमानं श्रुतिरनुभवश्च । |

**श्लोकार्धेन प्रवक्ष्यामि । यदुक्तं ग्रंथकोटिभिः ॥**
**ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या। जीवो ब्रह्मैव नापरः ॥ १ ॥**

१

श्रुतौ हि श्रूयते- आत्मन आकाशः संभूत आकाशाद्वायुरित्यादि । तत्र जिज्ञास्यते । किमियमात्मन इति पंचमी समवायिकारणे वा निमित्त-कारण इति । यदि प्रथमपक्षस्तदा ब्रह्मणः परिणामित्वप्रसंगः । तथा च ब्रह्मणः कूटस्थत्वं व्याहन्येत । किं च यत् परिणामि द्रव्यं तज्जडमिति सुलभो मृत्तिकादिषु व्याप्तिग्रहः । न च तथास्त्विवति वाच्यं । तथा सति जीवस्याऽपि जाड्यापत्त्या जगत्यांध्यं प्रसज्येत । न च भगवदिच्छाया नियामकत्वात् परिणामिनो ब्रह्मणः कश्चिदेवांशो जाड्येन परिणतो न सर्व इति वाच्यं । परिणामे कश्चिदेवांशो जडः कश्चिच्चेतन इति अनि-दर्शनं । न हि घृते प्रविलाप्यमाने कश्चनांशो द्रुतोऽन्यो दृढ इति दृष्टं

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

लोके । अतः ब्रह्मणः परिणामित्वे जाड्यं वा चैतन्यं वैकान्तेन स्वीकरणीयं । न तत्रार्धजरतीयस्यावसरः । अपि च चेतनत्वेन प्रसिद्धो जीवो लोके तथा मृत्तिकादिद्रव्यं परिणामित्वेन प्रसिद्धं । तत्र यथा मृत्तिकादिषु परिणामित्वं दृश्यते नैवं चेतने जीवे । न तथा कस्याप्यनुभवः । यदि चेतनेऽपि जीवे परिणामः स्यात्तदाऽहं देवदत्तो वा न वेति संशयः स्यात् । दृष्टो हि लोके परिणामिद्रव्यकार्ये संशयः । भूषणं वीक्ष्य नूनमेतन्मया दत्तस्य सुवर्णस्य कार्यमुतान्यस्येति संदिहानस्तद्भूषणं निकषे समुल्लिख्य सुवर्णकारः परीक्षते । परं च—यद्धि परिणामि द्रव्यं तत् द्रव्यान्तरमिश्रणेन विपरीतं भवति । तत एव तत् संदेहास्पदं । तथा च यदपरिणामि न तत् संदेहास्पदमिति व्याप्त्या जीवस्य चेतनस्य संदेहास्पदत्वाभावेनापरिणामित्वं समनुमीयते । महच्चैतत् प्रामाण्यं जीवस्यापरिणामित्वे यत्तस्यासंदिह्यमानत्वं । त्रैलोक्यस्थाः सर्वेऽपि पदार्थाः संदेहास्पदतां भजन्ते । किंबहुना जगदीश्वरोऽपि संदेहविषय एव । परन्तु जीवो न संदेहास्पदं । न जातु कोऽपि संदिग्धेऽहमस्मि न वेति । तस्मादपरिणामी एष जीवः । एतच्च भोक्तृस्वरूपविचारे सविस्तरं प्रतिपादयिष्यते । तस्मान्न चेतनस्य परिणामो जगत् । तस्मान्न समवायिकारणं जगत आत्मा । अथ द्वितीयः पक्षस्तदा 'एकविज्ञानेन सर्वविज्ञानं' इति श्रुत्युक्तमसंगतं भवेत् । न हि निमित्तकारणविज्ञानेन कार्यस्य सर्वस्य विज्ञानं दृश्यते । ननु जगतः कर्ता जगदीश्वरो निमित्तकारणं । तस्य साक्षात्करणेन सर्वज्ञानस्यात्मनि शक्तिरुपजायते इति कल्प्यत इति चेन्न । ईश्वरस्य साक्षात्कारेण जीवस्य सर्वज्ञानशक्तिरागच्छति इति केन प्रमाणेन सिध्यति । श्रुत्येति चेत् सर्वज्ञानं भवतीति वदति श्रुतिर्न तु तादृशज्ञानाकुला शक्तिरागच्छतीति । अथ यदि शक्तिरप्यागच्छतीति कल्पितं तदा स किं सर्वज्ञो भवति अथवाऽसर्वज्ञ एव । यद्याद्यः पक्षस्तदा जीवेश्वरयोर्भेदो न स्यात् । उभयोरपि सर्वज्ञत्वात् । भेदनित्य-

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


तावादिभिरभेदस्य कस्यामप्यवस्थायामस्वीकारात् । अथ द्वितीयः पक्षस्तदा किं तादृश्या शक्त्या । यस्याः सत्त्वेऽपि किंचिज्ज्ञ एव जीवः । तस्मान्निमित्तकारणपक्षे एकविज्ञानेन सर्वविज्ञानमुपपादयितुमशक्यं । किं चास्मिन् पक्षे 'वाचारंभणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यं' इति समवायिकारणस्यैव सत्यत्वावधारणं न संगच्छेत । न हि कश्चिद्वदति प्रामाणिको मृत्तिकादण्डकुलालादिषु घटकारणेषु मध्ये कुलाल एव सत्योऽथवा मृत्तिकैव सत्येति । कारणत्वस्य सर्वेष्वपि कारणेषु समत्वात् । तस्मात् 'आत्मन आकाशः संभूत' इत्यत्रात्मन इति पंचमी न समवायिकारणे तथा न निमित्तकारणे संगच्छते । तत् किं श्रुतिरसंगतैवेति वक्तुमुपक्रान्तोऽसि ? नेत्युच्यते । आत्मन इति पंचमी उपादानकारणपरा तथा निमित्तकारणपराऽपि । न चेदं परस्परविरोधित्वादसंभवि । मृत्तिकाया उपादानकारणत्वमेव न निमित्तकारणत्वं, कुलालस्य निमित्तकारणत्वमेव नोपादानकारणत्वमिति लोके दर्शनादिति चेन्न । शुक्तिरजतस्थले द्वयोरपि कारणत्वयोरेकस्मिन् संनिवेशस्य दर्शनादविरोधः । तथाहि । रजतं साक्षात्करोमीत्यध्यवस्य रजतार्थी शुक्तिकामभिलक्ष्य प्रवर्तते । तत्र यदि रजतं नास्ति किंतु केवलं पूर्वदृष्टस्यापणस्थस्य रजतस्य स्मृतिस्तदा रजतार्थिनः शुक्तिकाभिमुखी प्रवृत्तिः कथं ? तस्मात्तादृशप्रवृत्त्यन्यथानुपपत्त्या तत्र रजतं नूतनं कल्प्यते । तादृशरजतं प्रति किमुपादानं कारणं किं च निमित्तकारणमिति विचारयामहे । कार्यमात्रं प्रत्यनयोर्द्वयोः कारणयोः सत्त्वस्यावश्यकत्वात् । तत्र समवायिकारणनाशात् कार्यनाशस्यावश्यकतया यन्नाशादस्य रजतस्य नाशस्तत् तत्प्रति उपादानमिति निर्णेयं । न च परमाणूनां नाशासंभवात् द्व्यणुकस्य नाशोऽनुपपन्न इति वाच्यं । आरंभवादस्यास्वीकारादसमवायिकारणस्यासंभवाच्च । तत्र शुक्तिज्ञाने रजतं नश्यतीत्यनुभवसिद्धं । शुक्तिज्ञानेन शुक्त्यविद्या नश्यतीत्यपि । तत्र शुक्तिरजतनाशं प्रति शुक्तिज्ञानस्य कारणत्वं शुक्त्यविद्यानाशद्वारा


Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

 In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

वक्तव्यमित्यर्थादेव समागतं शुक्तिरजतं प्रति शुक्त्याविद्योपादानं कारणमिति। तथैव शुक्तावत्यन्तमज्ञातायां न संभवति शुक्तिरजतोत्पत्तिः। अतः शुक्तेः सामान्यतो ज्ञानमपि तत्र कारणमिति वक्तव्यमेव । तथा चेदंत्वेन सामान्यतो ज्ञाता शुक्तिर्निमित्तकारणं । इदमेवाधिष्ठानज्ञानपदेन शास्त्रे समुदाह्रियते। अस्तु। तथा च शुक्तिरेव सामान्यतो ज्ञाता विशेषतोऽज्ञाता रजतं प्रति कारणमित्युक्तं भवति। तत्र सामान्यतो ज्ञाता शुक्तिर्निमित्तकारणं विशेषतोऽज्ञातोपादानं कारणं । अस्यैव कारणताद्वयस्य समावेशः शास्त्रे विवर्तपदेनोच्यते । विवर्तशब्दस्य व्युत्पाद्यमानस्य विरुद्धं वर्तनमर्थात् कार्यस्य, नाम विषमसत्ताकत्वं कार्यस्येति निष्कर्षो लभ्यते । एवं च समसत्ताककार्यापत्तिरुपादानं विषमसत्ताककार्यापत्तिर्विवर्त इत्युक्तं भवति । तथा च शुक्तिरजतं शुक्त्यविद्यायाः परिणामः शुक्तेश्च विवर्त इति सिध्यति । प्रकृते च 'आत्मन आकाशः संभूत ' इत्यत्रात्मन इति पंचम्यपि विवर्तोपादानत्वपक्षे ज्ञेया। जगत् खलु आत्माविद्यायाः परिणाम आत्मनश्च विवर्त इति बोध्यं । ननु जगत् कुतः खलु आत्मनोऽविद्यायाः परिणामः ? यथा हि शुक्तिरजतं बाधितं भवति तथाऽस्य बाधादर्शनात्। उच्यते। नेह नानास्ति किंचनेत्यादिभिः श्रुतिभिरस्य जगतो बाधदर्शनात्। ननु ईश्वरधर्मिकं नानात्वं प्रतिषिध्यतीयं श्रुतिर्न तु जगत्प्रतियोगिकं नानात्वं। सत्यं । परन्तु सामान्यरूपेण नानात्वं प्रतिषिध्यन्त्याः श्रुत्या विशेषरूपेण नानात्वनिषेधकल्पने प्रमाणं वक्तव्यं । किं चेश्वरनानात्वमप्रसिद्धं हेतुविरुद्धं च । जगत्कर्तॄणां नानात्वे वैमत्यप्रसंगस्य तथा लाघवविरोधस्य स्पष्टत्वात् । तस्मादीश्वरनानात्वं प्रतिषेधविषय एव श्रुतेर्न संभवतीत्यगत्या जीवेश्वरभेद एव प्रतिषेधविषयः स्वीकर्तव्यः । ननु जडेश्वरभेदः कुतो नास्याः श्रुतेर्विषय इति चेन्न ।ईश्वरे जडत्वधर्मस्याभावः स्वतःसिद्ध इति न तन्निषेधस्यावश्यकता । तथा च जीवेश्वरभेद एवास्या निषेधविषय इति सिद्धे सोऽयं निषेधस्त्रैकालिको वा किंचित्कालिको वेति विचारः

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


क्रमप्राप्तः । द्विविधोऽपि निषेधो लोके समनुभूतः । भूतले घटो नास्ति, वायौ रूपं नास्तीति च । तत्रोक्तनिषेधस्य प्रथमदर्शितरूपसरूपत्वे इह-पदेन प्रदर्शिते जगदधिष्ठानभूते ब्रह्मणि कालसंबंधो वक्तव्यो भवेत् । न च नित्ये कालसंबंधो भवितुमर्हति । नित्यं कालसंबंधि चेति व्याहतं । अतोऽविशिष्टं रूपं निषेधस्यास्य प्राप्तं । एतदेव रूपं निषेधस्य शास्त्रे बाधपदेन व्यवह्रियते । न चेह नाना नास्तीत्यस्य निषेधस्य बाधरूपत्वे ब्रह्मणि जगतः संबंधो नासीदेव त्रिषु कालेष्विति प्राप्तं । तथा च जगदुत्पत्त्यादिश्रुतिः कथमुपपद्येतेति चेत् न । सृष्टिवाक्यानां सृष्टौ न तात्पर्यं किंत्वद्वितीये ब्रह्मणि । तथाहि । जगदधिष्ठानमेकं वाऽनेकानि वेति अस्ति महती विप्रतिपत्तिः । तत्र प्रथमा कोटिरद्वैतिनां, द्वितीया द्वैतिनां । द्वैतिषु चावान्तरविशेषानुत्सृज्य चार्वाकमारभ्य योगिपर्यन्ताः सर्वे दर्शनकाराः सन्ति । अत्यल्पमिदमुच्यते । श्रीशंकराचार्यान् विहायान्ये सर्वे दार्शनिका द्वैतिन एव । तत्र विचार्यते । ये खलु जगत उत्पत्तिं श्रुतिं वा युक्तिं वाऽनुसृत्य वदन्ति तान्प्रति प्रष्टव्यं । श्रुतिष्वेव जगत उत्पत्तौ विप्रतिपत्तिः कुतः ? काचन श्रुतिर्वदति—आत्मन आकाश-सृष्टिर्जातेति । अन्या वदति—आत्मनस्तेजोऽबन्नादिका सृष्टिर्जातेति । क्वचन च मनआदीनां सृष्टिः । अन्यत्र च त्रिगुणात्मिका सृष्टिरभूदित्यादि । तस्मान्नैकमत्यं सृष्टेरुत्पत्तौ । किं च—यथा हि आत्मज्ञानात् पुरुषार्थं वदति श्रुतिर्न तथा सृष्टेरुत्पत्तिज्ञानात् । ‘ तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ’ इति श्रुतिरात्मज्ञानात् पुरुषार्थं वदति । न तथा काचन श्रुतिः सृष्टेरुत्पत्तिज्ञानात् फलविशेषं ब्रूते । अतः फलवत्संनिधावफलं तदंगमितिन्यायेन फलवदात्मज्ञानसंनिधौ पठ्यमाना सृष्टेरुत्पत्तिज्ञानस्यांगं भवितुमर्हति । तथा चांगानां सर्वत्रैवांगिफलेनैव फलवत्त्वमिति नियमदर्शनाद्यदेव ज्ञानस्य फलं तदेव सृष्टिवाक्यानामपि इति न्यायप्राप्तं । अत एव सृष्टिवाक्यानां सृष्टौ न तात्पर्यं किंत्वद्वितीये

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


ब्रह्मणीति संप्रदायः। युक्तिसिद्धमपीदं। तथाहि। प्रत्यक्षं दृश्यमाना सृष्टिर्भिन्नेभ्यो भिन्नेभ्यः कारणेभ्यः परमाण्वादिभ्यः समभवदिति तेषां तेषां दर्शनकाराणां कल्पनाः। ता अनुसृत्य वर्तने जगदधिष्ठानमेकं न सिध्येत्। तदभावे ज्ञानमपि फलाय पर्याप्तं न भवेदिति जगदधिष्ठानमेकं कल्पनीयं। तच्चात्मनो नान्यद्भवितुमर्हति। अन्यथा एकविज्ञानेन सर्व-विज्ञानस्य संभव एव न। तदधिष्ठानं यद्यात्मा तदा तस्य कूटस्थत्वेन ततः कस्याप्युत्पत्तिरसंगतैव। तस्मात् सृष्टिप्रतिपादनं सृष्ट्यधिष्ठानस्याद्वितीयत्व-साधनार्थमेवेति सृष्टिवाक्यानामद्वितीयब्रह्मपरत्वं ज्ञेयं। किं च ये खलु सृष्टिं सत्यत्वेन सावेशं प्रतिपादयन्ति तैर्मोक्षपदार्थो नांगीकरणीय एव। तथाहि। मोक्षो नाम बंधस्य निवृत्तिर्वा नाशो वा। बंधः खलु दुःखपरंपरा। सृष्टेः सत्यत्वं नाम त्रिकालाबाधितत्वमितिवादिनां मते सत्याया दुःखपरं-परायाः कथं नाशो वा निवृत्तिर्वा ? न च यथा दण्डपातेन घटस्य नाशो वा निवृत्तिर्वा जायते, तथैवास्या दुःखपरंपराया निवृत्तिर्भवेदिति वाच्यं। आत्मगुणानां न्यायनये द्विक्षणवृत्तित्वात् सांख्यनये च विरोधिवृत्ति-नाश्यत्वात् दुःखपरंपराया नाशो वा निवृत्तिर्वा स्यादेव। तथापि अपुनरावृत्तिरूपा निवृत्तिः कथं भवेत्। न च पुनरावृत्ताया दुःखपरंपराया नाशो वा निवृत्तिर्वा मोक्षत्वेन केनाप्यभिधीयते। मोक्षनित्यत्वस्य सर्वैरप्यैकमत्येन स्वीकारात्। न चेश्वरस्य साक्षात्काराद्वा तत्कृपाप्रसादाद्वा मोक्षो नित्यो भविष्यति इति वाच्यं। ईश्वरोऽपि वस्तु अवस्तु कर्तुमसमर्थः। अन्यथा दुरवस्था स्यात्। तस्माद्यदि जगन्नित्यं तदा दुःखमपि नित्य-मिति तन्नाशात्मको मोक्षः खकुसुमायितः। मोक्षस्तु सर्वतंत्रसिद्ध इति दुःखनाशात्मकस्य तस्य कारणं वक्तव्यं। तच्च श्रुत्यैवात्मज्ञानं निरुक्त। न पुनर्घटज्ञानं वा पटज्ञानं वा ? तथा चात्मज्ञानेन दुःखनाशो भवतीति श्रुत्यर्थः फलितः। न चात्मज्ञानस्य दुःखेन साकं भावाभावयोरिव विरोधोऽस्तीत्यगत्या तस्य दुःखस्य कारणेन विरोधो वक्तव्यः। द्विविधो

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


हि कार्यस्याभावः । उत्पन्नस्य नाशात् उत तदुत्पत्तिकारणनाशात् । अत्र चोत्पन्नस्य दुःखस्य नाशं न मोक्षं वदन्ति किंतु तदनुत्पत्तिमेव । तथा च तादृशं दुःखकारणमन्वेषणीयं येनात्मज्ञानस्य विरोधः स्यात् । सर्वत्र चैतत् प्रसिद्धं यत् ज्ञानेन सहाज्ञानस्य विरोध इति । अत आत्माज्ञानात् दुःखं तज्ज्ञानाच्च तस्य तत्कार्यीभूतस्य दुःखस्य च नाश इति क्रमप्राप्तमेव । ततश्च यदज्ञानेन कल्पितं तन्मिथ्येति सिद्धमेव दुःखात्मकस्य बंधस्य मिथ्यात्वं । ननु बंधस्य दुःखात्मकस्य मिथ्यात्वेऽपि जगतो मिथ्यात्वं कथमिति चेत् उच्यते । घटापटादिविविधपदार्थमये जगति भोग्यत्वाभिमान एव दुःखस्य कारणमिति सर्वसंमतं । परस्य द्रव्ये परेण हृते नायं रोदिति, यथा स्वीये द्रव्ये चौरेणापहृते सोरस्ताडं रोदिति । तत्र किमन्यत् कारणं ऋते तत्र द्रव्ये स्वत्वाभिमानात् । न च स स्वत्वाभिमानो मिथ्या न । तस्मिन्नेव द्रव्ये ब्राह्मणाय दत्ते ततस्तस्मिन् सति चौरेण हृते नायं रोदिति । किं तत्र कारणं ? तत्र स्वत्वाभावात् । तस्मात्तेषु तेषु पदार्थेषु स्वत्वाभिमान आसक्त्या कल्पित इति वक्तव्यमेव भवति । न हि भोग्येभ्यो घटपटादिभ्यः पदार्थेभ्यो जगन्नामाऽतिरिक्तः पदार्थः । तथा च घटपटादीनां जलाहरणादिक्रियासाधनरूपभोग्यत्वस्य कल्पनात्तेऽपि कल्पिता एव । तथा च कृत्स्नमपि जगत् भोग्यत्वेन कल्पितमिति सिद्धं । ननु सिद्धेषु घटपटादिषु पदार्थेषु भोग्यत्वं कल्पितमस्तु घटपटादीनां कुतः कल्पितत्वमिति चेत् उच्यते । घटपटादीनां जलाहरणादिक्रियाकर्तृत्वं विहाय कीदृशं स्वरूपं तद्वक्तव्यं । सत्त्वं हि अर्थक्रियाकारित्वं विहाय नान्यद्वक्तुं शक्यं । सामान्यादिकं तु समवायासिद्ध्या सुदूरमपास्तं । ननु यदि अर्थक्रियाकारित्वमेव सत्त्वं तदा यदाऽर्थक्रियां न करोति तदा कीदृशं घटस्य स्वरूपं । अथ यदि नास्त्येव तथाभूतो घटस्तदा क्षणभंगवादप्रसंगः । उच्यते । अर्थक्रियाकारित्वं विहाय नान्यत्सत्त्वं । न चैतावता क्षणभंगवादस्वीकारः । व्यवहारकाल-

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



स्थायिनोऽपि घटस्यार्थक्रियाकारित्वसंभवात् । तस्माद्भोग्यत्वरूपार्थक्रिया-कारित्वस्य कल्पनाज्जगति मिथ्यात्वं सिद्धं भवति । अपि च शुक्तिरजतस्य सत्यत्वं कुतो नांगीक्रियते ? अधिष्ठानसाक्षात्कारानंतरं बाधादिति चेज्ज-गदपि ब्रह्मसाक्षात्कारे सति बाधितं भवतीति श्रुतिस्मृत्यनुभवेभ्यः सिध्यति। परं च सर्वोऽपि जगद्विलासो भोग्यभोक्तृभोगरूपायां त्रिपुट्यामन्तर्भवति । न हि एतान् त्रीन् प्रकारान् विहाय चतुर्थः प्रकारः कश्चन कुत्रापि समुपलभ्यते । तत्रात्मनि भोक्तृत्वं किं स्वाभाविकं किंवा समारोपितामिति। विचारयामहे । तत्र भोक्तृत्वं यद्यात्मनः स्वाभाविकं तदा सुषुप्तावपि तत् भासेत । न च तद्भासते । यदि भासत इत्याग्रहस्तदा किंविषयकं तदिति वक्तव्यं । न च वस्तुविशेषस्तदा भोग्यत्वेन समुपस्थितोऽस्ति । तस्माद्भोक्तृत्वं न स्वाभाविकमात्मनः। अपि च यद्धि स्वाभाविकं न तद्बाह्यं साधनमपेक्षत इति बहुशो दृष्टं । इदं भोक्तृत्वं तु देहसंबंधमपेक्षते । न केवलं संबंधं किंतु शरीरे आत्माध्यासं । तदुक्तं " न चानध्यस्तात्म-भावेन देहेन कश्चित् व्याप्रियत " इति । तस्माद्भोक्तृत्वमागन्तुकं न स्वाभाविकं । तथा च यदागन्तुकं तदध्यस्तमिति व्याप्तेर्निर्दुष्टतया भोक्तृ-त्वस्याध्यस्तत्वसिद्धिः । भोक्तृत्वस्याध्यस्तत्वे भोग्यत्वं तथा भोगश्चेति सर्वमपि सुतरामध्यस्तमिति सर्वस्याऽपि अध्यस्तत्वमायातं । अन्यच्च—भोक्तृ-भोग्यभोगा हि परस्परसाकांक्षाः शब्दाः । तथा तद्वाच्याः पदार्था अपि परस्परसंबंधिनः । तत्रैतेषां त्रयाणां सत्तांऽगीकार्या उत एतेषु कस्मिन्नपि एकस्मिन् सत्ता स्वीकार्येति विचारणीयं । त्रिषु सत्ताकल्पनापेक्षया कस्मिन्नप्येकस्मिन् सत्तास्वीकरणं तु लाघवानुरोधेन न्याय्यमाभाति । एवं स्थिते भोक्तर्येव सत्तास्वीकरणं युक्तं । भोक्तुः संबंधं विना भोगस्य वा भोग्यस्य वा सत्त्वानुपपत्तेः । भोक्तरि सत्तायां कल्पितायां भोक्तुर्वास्तविकं किं स्वरूपमिति चिन्तनीयं । भोक्तृत्वं तु तस्य न वास्तविकं, सुषुप्ताव-ननुभवात् । किंतु चैतन्यं तथाऽऽनन्दस्तथा सत्त्वं च तस्य वास्तविकं

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


रूपं, सुषुप्तावनुभवात् । तथा च तदेव तस्य वास्तविकं रूपमिति सच्चिदानन्दरूपता तस्य सिध्यति । एतदेव जीवस्य शुद्धं स्वरूपं । अन्यद्व्यभिचारि भोक्तृत्वादिकं सर्वं कल्पितमिति जगतो मायामयत्वसिद्धिः । ननु माया किं द्रव्यमुत गुणोऽथवा विलक्षण एव कश्चन पदार्थः ? उच्यते । माया नाम अविद्या, विद्याविरोधि भावान्तरं । सा च कार्यानुमेयशक्तिविशिष्टा । सा च चैतन्य एव तिष्ठति । ननु प्रौढप्रकाशे भगवति भास्करे यथा तमसः कथमपि न संभवः, तथैव सच्चिदानन्दरूप आत्मनि कुतः खलु अज्ञानस्वरूपाया मायायाः संभव इति चेत् अत्रोच्यते । अहमज्ञ इति आबालवृद्धं सर्वानुभवसिद्धस्याज्ञानस्यापलापासंभवात् सा सर्वतंत्रसिद्धा । तथाहि । ये खलु दर्शनकारा आत्मनोऽस्तित्वं स्वीकुर्वन्ति तैर्ज्ञानस्वरूपत्वमात्मनः स्वीकर्तव्यमेव । ये तु ज्ञानं धर्मं स्वीकृत्य तद्योगेनात्मनः प्रत्यक्षं वदन्ति, तैः सुषुप्तावात्मनः सत्ता कथं स्वीक्रियत इति वक्तव्यं । आत्मनो नित्यत्वमुक्त्वा तस्य प्रत्यक्षं समागतेन क्षणिकेन ज्ञानेन भवतीत्युक्तिः कथमपि आत्मनो नित्यत्वस्वीकारं न पुष्णाति । तस्मादात्मनो नित्यत्ववादिभिरात्मा ज्ञानरूप इति वक्तव्यमेव । ये खलु आत्मनो नित्यत्वं नांगीकुर्वन्ति ते च घटवदुत्पादविनाशशालित्वादात्मा संदेहास्पदं कुतो नेति पृष्ट्वा निराकरणीयाः । तस्मात् संदेहाविषयत्वात् सर्वदा ज्ञातत्वादात्मा ज्ञानरूपः स्वीकार्य इति स्थितं । एवं स्थितेऽहमज्ञ इत्यनुभवः कथमुपपादनीय इति सर्वतंत्रसिद्धान्तः प्राप्तः । तथा च सामान्यतो ज्ञातो विशेषतोऽज्ञात आत्मैवाज्ञानस्याश्रय इति स्वीकरणीयं । ततश्चानुभवानुरोधान्मायाया आश्रय आत्मैव । ननु जीवात्मा वा मायाश्रयः किंवा परमात्मा ? यदि प्रथमः पक्षस्तदा मायाया नानात्वं । अस्त्विति चेत्तदा मायाया नानात्वाज्जगदुपादानमेकं न स्यात् । अथ द्वितीयः पक्षस्तदा यः शरणीकरणीय उपासानादिभिर्मायाया निवृत्त्यर्थं स एव मायाश्रय इति असंगतिः । न ह्यन्धेनान्यस्मै अन्धाय पन्थाः

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



प्रदर्शयितुं शक्यत इति चेत्। मैवं। उभयथाप्यदोषात्। दृष्टिसृष्टिवादे परिणाम्युपादानत्वेनांगीकृताया मायाया अविद्यापरपर्यायाया नानात्वमिष्टमेव। न चैकोपादानत्वाभावः। तस्य विवर्तोपादानपरत्वात्। जगत एकमुपादानमित्यत्रोपादानपदेन विवर्तोपादानस्य स्वीकारात्। तच्चैकमेव ब्रह्मरूपं। परमात्मनो मायाश्रयत्वेऽपि तत्र शुद्धसत्वमुपाधिः। मलिनसत्वं जीवोपाधिरिति भेदात् मलिनसत्वेन जीवेन शुद्धसत्वोपाधिकस्य परमात्मन उपास्यत्वं न विरुध्यते। ननु जगतो मायिकत्वे तस्यासत्त्वप्रसंगः। यथा हि शुक्तिरजतमसद्भवति तथा जगदपि असद्भवेत्। न चास्त्विति वाच्यं। तथा सति प्रमाणव्यवहारस्यासंभवः स्यात्। सर्वे हि जीवाः स्वस्वव्यवहारविषयान् सत्यानेव मन्वाना व्यवहरन्ति। न हि शुक्तिरजतस्य व्यवहारो दृश्यते। किं चैवं सति वैदिकतत्त्वज्ञानस्यापि मिथ्यात्वापत्तिः। सर्वदृश्यान्तर्गतस्य वेदस्य मिथ्यात्वेन तदुक्तस्य तत्त्वज्ञानस्यार्थादेव मिथ्यात्वमिति चेन्न। असत्त्वमित्यस्य कोऽर्थः? किमत्यन्तासत्त्वमुत किंचित्कालसत्त्वं। नाद्यः। प्रत्यक्षं दृश्यमानस्यार्थक्रियाकारिणो जगतः शशशृंगवदत्यंतासत्त्वानुपपत्तेः। तद्धि अत्यन्तमसद्यत्कदापि केनापि नोपलब्धं। न तु जगत्तथा, सर्वैरपि अस्मदादिभिः प्रत्यक्षमुपलभ्यमानत्वात्। नन्वेवं सत्त्वमेव कुतो न स्वीक्रियते। न चास्त्विति वाच्यं। तथा सति जगतो मायिकत्वानुपपत्तेरिति चेदुच्यते। न हि प्रत्यक्षेण दृश्यमानत्वं वाऽर्थक्रियाकारित्वं वाऽत्यन्तसत्त्वस्य साधकं। स्वाप्नपदार्थानां तथा मनोरथानां प्रत्यक्षमनुभूयमानत्वेनार्थक्रियाकारित्वेन च व्यभिचारात्। तस्माज्जगतो न शशशृंगवदत्यंतासत्त्वं, नापि आत्मवदत्यंतसत्त्वं किंतु किंचित्कालवृत्तित्वमेव। प्रत्यक्षेणापि तथैव समुपलभ्यते। अत्र भूतले घट इति च प्रत्यक्षं भूतले घटस्य सत्त्वं वर्तमानकालिकं विषयीकरोति न तु तस्य घटस्य भूतले त्रिकालसत्त्वं। अनुपयोगादननुभवाच्च। तथैवार्थक्रियाकारित्वमपि वस्तुनो वर्तमानकालिकं सत्त्वं विषयीकरोति न तु

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

त्रिकालसत्त्वं । तस्मात् प्रत्यक्षं वाऽर्थक्रियाकारित्वं वा न जगतस्त्रिकालसत्त्वं साधयितुं शक्नुतः । इदमत्र हृदयं । जगतीतले द्वौ पदार्थौ परस्परमत्यन्तभिन्नस्वभावौ समुपलभ्येते । तौ च दृश्यद्रष्टारौ । न च दर्शनस्यापि सत्त्वात् कथं द्वावेवेति वाच्यं । यत् खलु दृश्यस्य दर्शनं तत् दृश्यमध्य एवान्तर्भवति । यच्च द्रष्टुस्तदपि द्रष्टृस्वरूपमेव । तत्र दृश्यं परिणामि वा, नश्वरं वा, सुखदुःखमोहात्मकं वा, सुखदुःखमोहजनकं वा, संदेहास्पदं च । द्रष्टा तु अनश्वरः सुखरूपः कदापि संदेहास्पदो न । तत्रानयोरुभयोरपि पृथक्सत्ता व्यापकता स्वीकार्योतान्यतरस्य सत्तां स्वीकृत्यापरस्मिन् सत्ताव्यपदेश उपपादनीय इति विचारणीयं । तत्र लाघवानुरोधेनान्यतरस्मिन्नेव सत्ता व्यापकता च कल्पनीयेति उचितमाभाति । निर्णीते चैवं दृश्ये वा द्रष्टरि वा सा कल्पनीयेति विचार्यते । तत्रापरिणामिनि नित्यैकरूपे कदापि संदेहानास्पदे द्रष्टरि सा सत्ता तथा व्यापकता कल्पनीयेति न्यायप्राप्तमेव । ततश्च यथा न्यायनये द्रव्यगुणकर्मसु सत्तां समवायेन स्वीकृत्य सामान्यविशेषसमवायादिषु तदाश्रयसंबंधित्वेन सत्त्वव्यवहार उपपादितः, तथैव द्रष्टर्येव सत्तां स्वीकृत्य तदाश्रिते जगति सत्त्वव्यवहार उपपादनीयः । एवं सति जगति साक्षात् सत्त्वाभावात् मायिकत्वमागतं । न च मायिकत्वं नामात्यंतासत्त्वं किंतु त्रिकालसत्त्वाभावः । ऐन्द्रजालिककृतेषु पदार्थेषु प्रत्यक्षं दृश्यमानेष्वपि न तत्र सत्तां भावयन्ति मायाविनस्तथा सुज्ञाः पुरुषाः । बालास्तु भावयन्ति । अत एव तेषां बालत्वं । तथा च जगतो मायिकत्वेऽपि नात्यंतासत्त्वापत्तिरिति बोध्यं । यदि च नैवमथ दृश्यद्रष्ट्रोः समानसत्तास्वीकारेऽत्यन्ताग्रहस्तदा वक्तव्यं घटो नश्यतीति कथं व्यवहारः । सत्त्वासत्त्वयोरेकस्मिन्नसंभवात् । न हि सत्त्वमसत्त्वं च परस्पराभावरूपं, किंतु सत्त्वं जातिस्तदभावोऽसत्त्वं । तच्च प्रतियोगिना विरुन्ध्यादेव । तस्मात् घटे यदि सत्त्वं स्वीक्रियते तदा तत्रासत्त्वस्यासत्त्वं । अथ यद्यसत्त्वं तदा सत्त्वस्यासत्त्वं । प्राप्ते चैवं विरुद्धे


Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

प्रसंगे घटेऽसत्त्वं कल्पनीयं। सत्त्वं च जपानिष्ठलौहित्यस्य स्फटिके भानवदधिष्ठाननिष्ठं स्वीकरणीयं। न च वैपरीत्यमेवास्त्विति वाच्यं। तथा सति सर्वानुभवसिद्धस्य सर्वसाक्षिणश्चेतनस्यात्मनोऽसत्त्वमापद्येत। ततश्च सर्वत्रान्ध्यप्रसंगः। अतो द्रष्टरि चेतने सत्त्वमनुभवसिद्धं। तस्यैव सत्त्वस्य भानं घटादिष्विति कल्पनयैव सामंजस्ये घटादिषु सत्ताकल्पनमशक्यं। तथा च घटादीनां परंपरया सत्तावत्त्वान्मायिकत्वं निराबाधं। ननु अद्वैत-सिद्धान्ते किमिदं सत्त्वं वाऽसत्त्वं वा ? यथा न्यायनये सत्तारूपजातिवि-शिष्टत्वं तत्। यथा वा बौद्धनयेऽर्थक्रियाकारित्वमेव सत्त्वं। यथा वा सांख्यनये सदितिप्रतीतिविषयत्वं तत् इति चेत्। अत्रोच्यते। सत्त्वं च त्रिकालाबाध्यत्वरूपं। असत्त्वं च त्रिकालबाध्यत्वरूपं। अन्यत्तु किंचि-त्कालाबाध्यत्वे सति किंचित्कालबाध्यत्वरूपं सदसत्। तत्र प्रथमं आत्मनः, तस्य त्रिकालबाधाविषयत्वात्। द्वितीयं च शशशृंगादेः, तच्च सर्वदैव बाध्यते। तृतीयं च घटादिकस्य जगतः, तच्च किंचित्कालाबाधितमपि किंचित्काले बाधितं भवति। किं बहुना—घटादिकं उत्पद्य नश्यति। तस्मात्त-त्सदसत्पदेन व्यवह्रियते। यत् खलु सदसत्तन्मायिकमिति सुलभो व्याप्तिग्रहः। ननु आत्मा भासत इति तस्य सत्त्वं भवता स्वीक्रियते। यथा ह्यात्मा भासत एवमेव घटादयोऽपि भासन्त इति कुतस्तेषामपि सत्त्वं नांगीक्रियते। न च यथा घटो नश्यति तथाऽऽत्मा न नश्यतीति घटस्य वैलक्षण्यमिति वाच्यं। द्विविधं हि सत्त्वं परिणामिसत्त्वं कूटस्थसत्त्वं च। तत्र परिणामि-सत्त्वं घटादीनामस्तु कूटस्थसत्त्वमात्मनः। यस्य च कूटस्थसत्त्वं स न नश्यतीतिप्रतीतिविषयः। यस्य च तथा प्रतीतिः स परिणामीति चेत्। अत्रोच्यते। यदि परिणामिसत्त्वमपि सदितिप्रतीतिविषयस्तदा 'मृत्तिकेत्येव सत्यं' इति श्रुत्युक्तमवधारणं न संगच्छते। मृत्तिकेत्येवावधारणं तूपादान-कारणस्यैव सत्यत्वावधारणपरं। तत्र परिणाम्युपादानस्य मृत्तत्त्वस्य सत्यत्वं तु न संभवति। सर्वस्य जगत उपादानकारणत्वेन मृत्तिकाया अस्वीकारात्।

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


किंतु कूटस्थस्यैव सत्यत्वं वक्तव्यं । तदेवाऽस्माभिर्विवर्ताधिष्ठानत्वरूपेण निगद्यते । न चाऽस्मिन् पक्षे मृत्तिकेत्येवेतिश्रुत्युक्तमवधारणं नोपपद्यत इति वाच्यं । श्रुतिस्थमृत्तिकापदस्य विवर्ताधिष्ठानपरत्वात् । तथाहि । द्विविधो हि विवर्तः । संवादी विसंवादी च । तत्राऽद्यो घटादिः । द्वितीयश्च शुक्तिरजतादिः । मृत्तिकायां घटं पश्यंस्तं लभते जलं चाहरतीति अयं संवादी विवर्तः । विषमसत्ताककार्यापत्तिर्विवर्त इति हि विवर्तस्य लक्षणं । तत्र यावन्मृत्तिकासत्ता तावत्कालं घटस्य सत्ता न भवतीति सर्वजनीनमेतत् । न च मुद्गरप्रहारेण घटस्य निवृत्तावपि घटोऽस्त्येवेति वाच्यं । यदि घटोऽस्ति तदा जलाहरणक्रियां कुतो न करोति ? अनुद्भूतत्वादिति चेत् स घटः किमनुद्भूतत्वादर्थक्रियां न करोत्यथवाऽसत्त्वादित्यत्र विनिगमकं किं ? यदि असत्कार्यवादस्य युक्तिविरुद्धत्वात् सत्कार्यवादस्य युक्तिश्रुतिस्मृतिसिद्धत्वात् सत्कार्यवादस्वीकारेण घटस्य सत्त्वमेव, नष्ट इति प्रतीतिस्तु निवृत्त्याऽप्युपपद्यत इत्युच्यते तदा कोऽयं सत्कार्यवाद इति वक्तव्यं । कथं च सत्कार्यवाद इत्यत्र विग्रहः ? किं सच्च तत्कार्यं चेत्यथवा सति कार्यमिति वा ? आद्ये बाधः । उत्पादविनाशशालिनि घटे सत्त्वस्य त्रिकालाबाध्यत्वापरिणामित्वरूपस्याभावात् । न च तथा सति कथं घटे 'सन् घट' इति व्यवहार इति वाच्यं । अधिष्ठाननिष्ठसत्तायाः कार्येऽपि भासात् । यथा हि शुक्तिरजतस्थले यथा वा स्वाप्नपदार्थेषु सत्त्वमधिष्ठाननिष्ठं, एवं सर्वत्रोत्पादविनाशशालिनि घटपटादिसमुदायरूपे जगति अधिष्ठाननिष्ठमेव सत्त्वं न ततो भिन्नमिति ज्ञेयं । अत एवाद्वैतसिद्धान्ते सत्कार्यवाद इत्यत्र सति कार्यमित्येव विग्रहः । सप्तम्यर्थश्च निष्ठत्वं । तथा च सन्निष्ठं कार्यमित्यर्थः । ननु त्वया द्विविधा सत्ता स्वीक्रियते, व्यावहारिकी पारमार्थिकीति च । मयाऽपि परिणामिनी कूटस्था चेति । न ततः कोऽपि विशेष इति चेन्न । त्वया खलु सत्ताद्वैविध्यं स्वातंत्र्येण स्वीक्रियते । मया तु अधिष्ठाने सत्तामेकामेव स्वीकृत्य तस्या भासो जपा-

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



कुसुमलौहित्यस्य स्फटिक इव कार्ये स्वीक्रियत इति विशेषः। अत एवास्मिन् मते जगतो मायिकत्वमुपपद्यत इति संक्षेपः।

२

निरूपितं जगतो मायिकत्वं। अधुना ज्ञातुः स्वरूपं वक्तव्यं। एतन्निरूपणेनापि जगतो मायिकत्वं पुनरपि स्पष्टतरं भविष्यति। तत्र जीवो नाम सुखदुःखादीनां भोक्ता चक्षुरादीनां करणानामधिष्ठाता बंधमोक्षयोरनुभविता कश्चन पदार्थविशेष इति सर्वैरपि द्वैतिभिरंगीक्रियते। यद्यपि तत्र द्वैतिष्वपि भिन्नानि भिन्नानि मतानि सन्ति तथापि तेषु सर्वेषु जीवो नाम पदार्थः स्वतंत्रसत्ताक इत्यत्रैकमत्यं। तत्रोच्यते। किं-स्वभावो जीव इति प्रथमं विवेचनीयं। तत्र सुखदुःखादीनां भोक्तेति ये वदन्ति तान् ब्रूमः। नेदं जीवस्य लक्षणं। सुषुप्तौ सुखदुःखयोर्भो-क्तृत्वस्य जीवेऽभावात्। न हि तदानीं सुखं वा दुःखं वा जीवस्यास्ति। न च योग्यत्वं तु अस्ति। तथा च तदेव लक्षणं भवत्विति वाच्यं। तथा च चैतन्यमेव तत् प्राप्तं। तच्च नास्माकं विरुद्धं। न च सुखदुःख-भोगशक्तिरन्या काचन चैतन्यं विहाय नित्ये जीवे संभवति। किं च–ये खलु सुखं दुःखं च जीवस्य धर्मौ ब्रुवते तान् पृच्छामः। विषयेण साकमिन्द्रियसंनिकर्षे जायमानं सुखं वा दुःखं वा कस्यापि परिणामिन एव धर्मौ भवितुमर्हतो नापरिणामिनः। तत्र यत्सत्त्वे यत्सत्त्वं यदभावे यदभाव इत्यन्वयव्यतिरेकाभ्यां मनस एव सुखदुःखे धर्मौ भवतो न नित्यस्य जीवस्य। तथा च मनउपाधिकं चैतन्यस्य जीवत्वमित्यर्थादेव प्राप्तं। सर्वस्यापि चैतन्यभिन्नस्य पदार्थजातस्य मायिकत्वान्मनसोऽपि मायिकत्वं निराबाधं। अत एव मायोपाधिकं चैतन्यं जीव इत्यपि प्राचीनैः कृतं जीवस्य लक्षणं संगच्छते। ननु यदि जीवो न स्वतंत्रः पदार्थस्तदा किमिति तस्य लक्षणे प्रवृत्तिः। यश्च पदार्थस्तस्यैव लक्षण-मपेक्ष्यते बोधाय। न चायं तथा। तस्मान्नास्ति लक्षणस्यावश्यकतेति

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


चेन्न। जीवः पदार्थ इति अस्त्येव तत्स्वरूपबोधाय लक्षणस्यावश्यकता। न च तथा सत्यद्वैतहानिः। तत्र स्वतंत्रसत्ताकत्वस्याभावात्। अस्मन्मते एकमेव नित्यं तत्त्वं। तदेव नानोपाधिभिरन्यत्वेन भासमानमन्यान्य-शब्दव्यपदेशं भजते। तच्च तत्त्वं चैतन्यं मायादिभिरुपाधिभिर्भिद्यमानं जीवशब्दवाच्यं भवति। यदि स्वतंत्रसत्ताक एव पदार्थस्तस्यैव बोधाय लक्षणमपेक्ष्यत इत्याग्रहस्तदा समारोपितसत्ताकस्य शुक्तिरजतस्य स्वरूप-बोधाय किमित्यध्यासलक्षणस्योपपादनं? तस्माद्बोधाय लक्षणमावश्यक-मित्येतावदेव सम्यक्। स्वतंत्रसत्ताकत्वं तु नोपयुज्यते। ननु यदि जीवो न स्वतंत्रः पदार्थस्तदा कस्य वा बंधः कस्य वा मोक्षः? कस्य वा कर्मभिः सुखदुःखानि? कस्य वा भिन्नभिन्नकर्मणामनुष्ठानोपदेशः? कस्य वा पापाचरणादधःपातः? किं च जीवस्याभावे सर्वमिदं व्याकुलमा-पद्येत। न हि चैतन्यस्य नित्यमुक्तस्य बंधः? न वा नित्यजडस्य माया-द्रव्यस्य वा बंधो वा मोक्षो वा संभवति? असंभवात्। तस्माज्जीवो नाम स्वतंत्र पदार्थः यश्चाज्ञानेन बंधमनुभवन्नानाकाम्यानां पुण्यानां वा पापानां वा कर्मणामाचरणात् दुःखं समनुभवति। कर्तव्यं समुपदिष्टो ज्ञात्वा तानि विजहातीति मोक्षः समुपपद्यते। उच्यते। बंधमोक्षौ न केवलस्य चेतनस्य नापि केवलस्य जडस्येति यदुक्तं तत् सर्वथाऽस्माकं सम्मतमेव। न हि श्रुतिशतैरपि तथा क्रियासहस्रैरपि स्वभावाद्वस्तु अपनेतुं शक्यं। न हि अनुष्ठानशतैरपि तथा परमेश्वरप्रयत्नशतैरपि वन्हिरुष्णस्पर्शात् पृथक्कर्तुं शक्यः। तस्मात् केवलस्य जडस्य केवलस्य चेतनस्य बंधमोक्षौ न संभवत एव। एवं स्थिते कस्य वा बन्धमोक्षाविति विचारणायां प्रवृत्तायां जीवस्येति प्राप्तं। अयं जीवः किं चेतनो वा जडो वेति विचारोऽपि क्रमप्राप्त एव। तत्र जीवो यद्येकान्ततश्चेतनोऽथवैकान्ततो जडस्तदा बंध-मोक्षौ न संभवत इति उपरितनविवेचनेन स्पष्टमेव। तथा चागत्या तस्य चेतनाचेतनत्वं स्वीकर्तव्यं। न चेदं परस्परविरुद्धस्वभावयोर्निसर्गत एव

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



भिन्नयोस्तयोः संभवति। तस्मादस्मिन् जीवेऽनयोश्चेतनजडयोर्मध्येऽन्यतरस्य स्वाभाविकत्वमपरस्य कल्पितत्वं स्वीकर्तव्यं। गत्यन्तराभावात्। तत्र यदि जाड्यस्य स्वाभाविकत्वं कल्प्यते तदा मोक्षोपदेशानर्थक्यं। न हि जडस्य दुःखं नाम किमपि। सुतरां तदभावो मोक्षो नाम। अनुभवविरोधाच्च न जीवे जडत्वं स्वाभाविकं। अत्यन्तं मन्दमतिरपि हालिक आत्मानं पाषाणाभिन्नं न मन्यते। अत्यल्पमिदमुक्तं। वस्तुतस्तु जीवस्य सादृश्यं जडेन स्वप्नेऽपि संभावयितुमशक्यं। वस्तुतो जडमपि शरीरं चेतनयोगाच्चेतनवच्चेष्टमानं यदा व्याधितोऽचेतनतामापद्यते तदाऽयं रोदिति। किमत्र कारणं ? ऋते जाड्याभावादन्यत्। तस्माज्जीवे जाड्यं स्वाभाविकमिति तु नोपपद्यते। अवशिष्टं चैतन्यं तु अस्माकं सम्मतमेव। नन्वेवं कथं बंधस्य संभवः। न हि केवले चेतनेऽज्ञानस्य संभवोऽस्तीत्युपपादितं। सत्यं। केवले शुद्धे चेतने पदार्थे बंधस्यासंभव एव, परन्तु आरोपितजाड्ये तु संभवति। दृष्टं हि लोके समारोपतोऽशक्या अपि व्यवहारा भवन्तीति। तथाहि। मनुष्यो हि कल्पितैर्मनोरथैः सुखं संपादयन् दृश्यते। एकदा काचन गोपकन्यका दुग्धविक्रयार्थमापणं गच्छन्ती मार्गे—एतत् दुग्धं विक्रीय यत् धनं मया लभ्येत तत्सर्वमपि व्ययीकृत्यान्यां गां क्रेष्यामि। सा च प्रभूतं दुग्धं दास्यति। तदपि प्रतिदिनं विक्रीय कतिपयैरेव मासैरहं प्रभूतं धनराशिं लभेय। ततः समीचीनानि भूषणानि तथा वस्त्राणि क्रीत्वा सुव्यवस्थितं वेषं धृत्वा राजप्रासादस्य पुरतश्चरिष्यामि। राजाऽपि तरुणो मां सुवेषवर्धितलावण्यां वीक्ष्य मुग्धमना अवश्यं परिणेष्यति। अहमपि तादृशैश्वर्यातिरेकं प्राप्यान्तःपुरं प्रविष्टा राज्ञा प्रेमातिशयेन चिबुके स्पृष्टा वक्त्रमेवमन्यतो नेष्यामि—इतिमनोरथाविष्टा यदा सत्यमेव मस्तकमचालयत्तदा तद्दुग्धभाण्डं मृण्मयं मस्तकान्निपत्य चूर्णमभवत्। दुग्धमपि नामशेषमभूत्। तत्र गोपकन्यका राज्ञी नाभवत्। नापि सा राज्ञा केनाऽपि चिबुके

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

स्पृष्टा। परन्तु मनोविकारैः कल्पितैस्तस्या मस्तकंचालनेन दुग्धं तु सत्यं नष्टं। तथैव जडजन्यदेहादीनां संबंधात् स्वस्मिन्नपि जाड्यं भावयन् चेष्टमानो जीवो नानाविधानि पापानि पुण्यानि कर्माणि कुर्वाणस्तत्फलीभूतानि दुःखानि सुखानि वा भुञ्जानः सततं चक्रवत् परिभ्रमति। तदेतत् परिभ्रमणं शास्त्रे संसारपदेन निगद्यते। यथा च कर्मणा कर्तृत्वस्य कल्पितत्वमेवमेव तद्भोक्तृत्वमपि कल्पितमेव। तथा च जाड्यस्य कल्पितत्वात् बंधस्य कल्पितत्वं। ततश्च तन्निवृत्तिरूपस्य मोक्षस्य कल्पितत्वं सुतरामेव। बंधमोक्षप्रतिपादकशास्त्रसमुच्चयस्य तु अतितरामेव कल्पितत्वमिति हृदयं। तदुक्तं माण्डूक्यकारिकासु—

न निरोधो न चोत्पत्तिः। न बद्धो न च साधकः॥
न मुमुक्षुर्न वै मुक्तः। इत्येषा परमार्थता ॥१॥
न कश्चिज्जायते जीवः। संभवोऽस्य न विद्यते॥
एतत्तदुत्तमं सत्यं। यत्र किंचिन्न जायते ॥२॥

तथा च जीवो नाम न स्वतंत्रः पदार्थः। अत एवान्तःकरणावच्छिन्नं चैतन्यं जीवशब्देन व्यपदिश्यत इति युक्तमुत्पश्यामः। ननु यदि जीवो नाम न कश्चन स्वतंत्रः पदार्थस्तदा तस्य सुखीभवनार्थमुपदिष्टा उपाया अपि व्यर्था इति न कश्चन श्रेयोऽर्थं यतेत। नापि पापाचरणाद्विभीयादिति चेन्न। ब्रह्मसाक्षात्कारानन्तरं हि कृत्स्नस्य प्रपचंस्य मिथ्यात्वज्ञानं, न प्राक्। यथा हि जागरितस्य स्वप्नमिथ्यात्वज्ञानं न पुनः सुप्तस्य, तथैवैकमद्वितीयं तत्त्वं साक्षात्कुर्वतः खलु जगन्मिथ्यात्वज्ञानं। प्राक् तादृशसाक्षात्कारात् सर्वमपि सत्यं मत्वा वर्तमानस्य पापपुण्ययोः प्राप्तिरस्त्येव। ननु यदि ब्रह्मसाक्षात्कारोऽपि मिथ्या तदा मिथ्याभूतात्तस्मात् प्राप्तिरित्यवधिरपि मिथ्याकल्पित एव। न हि भवति शशशृंगात् प्राप्तिरिति। मैवं। शशशृंगस्य तथा मिथ्याभूतस्य जगतो वैलक्षण्यात्। शशशृंगं हि नास्त्येव। जगत्तु दृश्यते, परन्तु विचार्यमाणे सत्तां न

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

लभते। अत एव त्रिविधा सत्ता प्राचीनैरद्वैतवादिभिः स्वीकृता। तत्र जगतो व्यावहारिकी सत्ता, प्रातिभासिकी स्वाप्नस्य शुक्तिरजतादेश्च। पारमार्थिकी तु ब्रह्मण एव। शशशृंगस्य तु सत्तैव नास्ति। यन्नास्ति तस्यैव नामधेयं शशशृंगमिति। तस्माद्ब्रह्मसाक्षात्कारात् प्रागिति अवधिरुपपन्न एवं। यद्येवं न, किंतु जीवः स्वतंत्रः पदार्थस्तदा स किंरूप इति वक्तव्यं। सुखदुःखभोक्तृत्वं तस्योपरिष्टात् दूषितं। चैतन्यमेव तद्रूपमिति चेत्तदा तस्य प्रतिशरीरं भिन्नत्वे प्रमाणं किं? नन्विदमेव यच्चैत्रेणावगते घटे मैत्रस्याज्ञानं। यदि चैत्रमैत्रयोरेक एवात्मा तदा चैत्रेण घटे ज्ञाते मैत्रस्य कुतो न तस्य ज्ञानं। उच्यते। ज्ञानं द्विविधं वृत्तिरूपं चैतन्यस्वरूपं च। तत्र वृत्तौ तु ज्ञानपदस्य गौणः प्रयोगः। केवलं चैतन्यप्रकाशग्राहित्वात्तथा व्यपदेशः। तथा च प्रकाशकस्य चैतन्यस्यैक्येऽपि वृत्त्योर्भेदान्न तथापत्तिः। यथा खलु सूर्यप्रकाशस्याभेदेऽपि काचवैलक्षण्यात् प्रतीतिवैलक्षण्यं, तथा प्रकृते वृत्त्योर्भेदान्न ज्ञानसंकरः। किं च वृत्तिरूपं यज्ज्ञानं तच्च मनसो धर्मो नात्मनः। आत्मनस्तु नित्यत्वान्न तद्धर्मोऽनित्यो भवितुमर्हति। तथा चोपरितनापत्त्या केवलं मनसो भेदः सिध्येन्नात्मन इति बोध्यं। वृत्तिरूपज्ञानस्य च मनोधर्मत्वे "कामः संकल्पो विचिकित्सा श्रद्धाऽश्रद्धा धृतिरधृतिरिति सर्वं मन एवेति" श्रुतिः प्रमाणं। युक्तिश्च प्राग्दर्शिता। ननु अस्तु कथमपि भोक्तृत्वस्य तथा ज्ञातृत्वस्य व्यवस्था। परन्तु आत्मन एकत्वे बंधमोक्षव्यवस्थायाः का गतिः। तथाहि। इह लोके कश्चन बद्धः कश्चन मुक्त इत्यंगीकार्यं। यद्येक एवात्मा तदाऽद्यपर्यन्तं न कश्चन मुक्त इति मोक्षशास्त्रस्यानर्थक्यं। यदि न कश्चन बद्धस्तदाऽपि स एव दोष इति। मैवं। बंधो नामाज्ञानसंबंधः। तेन च दुःखादीनां प्राप्तिः। मोक्षो नाम ज्ञानेन दुःखनाशः। दुःखसंबंधतन्नाशौ च बंधमोक्षौ न नित्यस्य चेतनस्य संभवतः। नापि नित्यजडस्य। किं तु जडावच्छिन्नचेतनस्य। स एव

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

जीवः कर्तृभोक्तृरूपः । स च वृत्तिभेदेन भिन्न एव । परन्तु चेतनो य आत्मा प्रतिशरीरं निरुपाधिको भिन्नः स्वीक्रियते तत्र प्रमाणं किं ? नास्त्येव तत्र प्रमाणमिति वक्तव्यमेव । औपाधिकस्य भेदस्तु न स्वरूपस्येत्यदोषः । तस्मादन्तःकरणावच्छिन्नं चैतन्यमेव जीव इति लक्षणं जीवस्यांगीकार्यं । अन्यस्यासंभवात् । ननु जीवस्य बंधमोक्षौ ? सत्यं । तत्र जडवियोग एव चेतनस्य मोक्षो व्यपदिश्यते । स च न शुद्धे किंतु जडसंयुक्त एव । तथा च जडसंयुक्तस्य चैतन्यस्य बद्धस्य तद्वियोगरूपो मोक्षो न शुद्धस्य । यथा हि कारागारे पतितस्यैव बंधो वा मोक्षो वा नापतितस्य । तथैव प्रकृतेऽपि ज्ञेयं । ये खलु जीवो नापि चेतनस्वभावो नापि जडस्वभावः किंतु तत्तदर्थक्रियाकरणे तत्तद्रूपं स बिभर्ति तथा च नासंगतिरिति वदन्ति, तान् प्रति वक्तव्यं । वस्तुनः किंचित्स्वभावव्याप्यत्वं सिद्धं । तत्र जीवस्य यदि वस्तुत्वं तदा तस्य स्वभावो वक्तव्यः । अथ स यदि न किंचित्स्वभावस्तदाऽवस्तुत्वात् शशशृंगतुल्यत्वमिति । किं च जगति जडचेतनत्वेन भिन्नौ पदार्थौ समुपलभ्येते । तत्र यदि तयोर्न वस्तुस्वभावत्वं तदा तन्मूलभूतस्य पदार्थस्य स्वभावो वक्तव्यः । न च तथा वक्तुं शक्यत इत्यगत्या जडचेतनावेव वस्तुस्वभावौ वक्तव्यौ । अपि च—यदि जडोऽपि चेतनो भवेत् तदा चेतनोऽपि जडो भवेत् । भवत्येवाहल्या शिलावदिति चेत्तथा सति सुवर्णस्य यथा परिणामोऽनुभूयते, तथा चेतने परिणामः कुतो नानुभूयत इति वक्तव्यं । यदि चेतनेऽपि परिणामोऽनुभूयते तदाऽहमस्मि न वेति संदेहः कुतो न भवतीति वक्तव्यं । अत्यंतमूढस्याऽपि सर्वजगद्विषयेष्वपि संदेहे वर्तमानेऽपि आत्मविषये संदेहो न भवतीति महद्वैलक्षण्यं जडाच्चेतनस्य । अत एव चेतनमेवैकं सत्यं तत्त्वं । जडतत्त्वं तु तत्र कल्पितमिति वेदान्तघंटाघोषः । परं च यदि जडमपि स्वतंत्रं तत्त्वं चेतनवदंगीक्रियते तदा किमिति जडं चेतनमुपकरोति न पुनश्चेतनो


Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



जडं ? न च तथास्तु का हानिरिति वाच्यं। अनुभवाविरोधात् । यथा हि मया सुखेन शयनार्थमेष पर्यङ्कः क्रीत इति क्रेता मन्यते, नैवं पर्यङ्कोऽपि मन्यते एष क्रेता मया क्रीत इति। यथा वा मम पुष्ट्यर्थमेतत् पयो मया द्रव्यं दत्वा क्रीतमिति दुग्धपायी मन्यते तथा दुग्धं मम पानार्थमेष पाता मया लब्ध इति न मन्यते । महच्चैतत् प्रमाणं यज्जडं सर्वथा चेतनोपयोगसाधनत्वेन व्यवह्रियमाणं जडस्य पारतंत्र्ये तथा चेतनस्य स्वातंत्र्ये । स्वातंत्र्यं नाम अनवच्छिन्नसत्ताकत्वमिति तु प्रसिद्धमेव । तस्मादारोपितजडसंसर्गि चैतन्यं जीव इति निर्दुष्टं लक्षणं। अत एवैतादृशचैतन्यस्य जीव इति नाम । देहाद्युपकरणसंघाताभिमानिनश्चैतन्यस्यैव जीव इति संज्ञा सर्वसिद्धान्तप्रसिद्धा । तत एवास्याभिमानस्य नाशेन मोक्षोऽपि समुपपद्यते । तादृशस्य चैतन्यस्य निर्विशेषत्वमपि संगच्छत इति सर्वं सुस्थं भवति । न च द्वैतिनां मते तथा संभवति । जीवस्य दुःखधर्मस्य नाशे नाश आवश्यकः । तथा च बंधोऽन्यस्य मोक्षोऽन्यस्येति वैयधिकरण्यमापतेत् । न च भवन्मतेऽपि कुतो नायं दोष इति वाच्यं । मन्मते बंधस्यालीकत्वेन दोषाभावात् । द्वैतिनां मते तु बंधोऽनित्यः सत्यश्चेति दोषापत्तिरिति संक्षेपः ।

३

निरूपितं ज्ञातुर्जीवस्य स्वरूपं । तेनाऽपि जगतो मायिकत्वं स्पष्टीकृतं । अधुनाऽज्ञानस्य स्वरूपं निरूपयितुं प्रक्रमामहे । तद्धि परमावश्यकं । तत्र अज्ञानस्य सामान्यं लक्षणं 'अतस्मिंस्तद्बुद्धिः' इति प्रसिद्धमेव । तथापि अज्ञानं कः पदार्थ इत्यत्रास्ति महती विप्रतिपत्तिः । अतः सविस्तरं तन्निरूपयामि । तत्राज्ञानं नामात्मनो वा मनसो वा धर्म इति बौद्धनैयायिकसांख्याः । भगवतः शक्तिरिति उपासकाः । आवरणविक्षेपानुकूलशक्तिशाली द्रव्यविशेष इत्यद्वैतिनः । तत्र नित्यस्यात्मनो येऽज्ञानं धर्मं वदन्ति तैरज्ञाननाशो नापेक्षणीयः । नित्यस्याधारस्य

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



नित्यधर्मकत्वस्य दर्शनात् । ये तु मनसो धर्मं ब्रुवते तैरपि अहमज्ञ इति प्रतीतिः कथमुपपादयितुं शक्यते । केवलस्य जडस्य मनसोऽहंपदवाच्यत्वाभावात् । अतश्चिदचिद्ग्रन्थिर्जीवोऽहंपदवाच्यः । तद्धर्मोऽज्ञानमिति वक्तव्यं । तथा च न केवलस्य मनसस्तद्धर्मो भवितुमर्हति । न ह्युभाभ्यामर्जितं द्रव्यमन्यतरस्य भवितुं योग्यं । भगवतः शक्तिरिति तु श्रद्धामात्रं । सा च भगवतः शक्तिर्यदि आवरणस्वभावा तदा भगवन्तमेव कुतो नावृणोति । अथ यद्यावृणोति तदा भगवत्त्वहानिः । न ह्यावरणशाली कश्चन भगवान् भवति । अत्यल्पमिदमुक्तं । तपश्चरणातिरेकाद्वा पूर्वसुकृतसंचयेन वा येनावरणं समूलमुच्छिन्नं सोऽपि भगवान् न भवितुमर्हति । यस्य तु अज्ञानस्य स्पर्शस्त्रिषु कालेषु न वर्तते सोऽनादिमुक्त आत्मविशेषो भगवत्पदेन व्यवह्रियते । तस्माद्भगवतः शक्तिरिति न युज्यते । अतोऽन्धकारवदावरणविक्षेपकारिशक्तिविशिष्टमज्ञानं नाम त्रिगुणात्मकं द्रव्यमेव स्वीकर्तुमुचितं । यथा हि तमो रविप्रकाशेन विनाश्यते, एवमेव तदज्ञानं ज्ञानेन विनाश्यते । समाने विषयेऽनयोर्बाध्यबाधकभावोऽनुभवसिद्धः । येन हि पूर्वं घटो न ज्ञातस्तेनैव घटे साक्षात्कृते घटाज्ञानं नश्यतीति सर्वेषामनुभवः । ननु घटाज्ञानं नष्टमित्यत्र किं प्रमाणं ? इदमेव यत् स मनुष्यो 'अहं घटं न जानामि' इति न वदति, वदति तु 'मया घट ज्ञायत' इति । ननु सिध्यतु अज्ञानं परन्तु तस्य द्रव्यत्वे किं प्रमाणं ? उच्यते । आवरणविक्षेपौ तु अज्ञानस्य कार्यत्वेन स्वीकार्यौ । तथा च तदनुकूला शक्तिरज्ञाने कल्पनीया । तथा च कार्योत्पादानुकूलशक्तिमत्त्वस्यैव द्रव्यपदार्थत्वादज्ञानस्य द्रव्यत्वं सिद्धं । तत्राज्ञानेनावरणविक्षेपौ कथमुत्पाद्येते इति विवेचनीयं । येनाज्ञानस्य द्रव्यत्वमनायासेन सिध्येत् । तत्र बालोऽन्धकारे किंचिदपि लम्बमानं वीक्ष्य व्याकुलचेताः सर्पमध्यस्याक्रोशति । तत्र यत् खलु सतो वस्तुनोऽज्ञानं तत् सत्यं वस्तु आवृणोति, ततः सर्पाकारेण विक्षिपति । केवलमावरणस्याकारो न जानामीति । विक्षेपस्याकारस्तु विपरीतमतिः ।

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



तथा च सर्प इति मतिर्विक्षेपजन्या । अनयोरावरणविक्षेपयोः कार्ययोर्जनकमज्ञानं द्रव्यमिति ज्ञेयं । ननु अस्याज्ञानस्याश्रयः कः ? यदि विषयस्तदाऽहमज्ञ इति प्रत्ययः कथं ? यद्यात्मा तदाऽऽवरणविक्षेपौ विषयविषयकौ कथं ? उच्यते । अज्ञानस्याश्रयो विषय एव परन्तु यदा तत् अन्तःकरणवृत्तिद्वारा चैतन्येन समं संबध्यते तदा तन्निष्ठतयाऽपि भासते । यथा नलिकाद्वारा तडागस्थं जलं क्षेत्रमागच्छति तथैवेन्द्रियसंनिकर्षद्वारा वृत्तौ निर्गतायां विषयस्थमज्ञानं तमोगुणकार्यं मनसि संपृक्तमात्मानमपि मलिनयति । तेनासौ नाहं जानामीति वदति । वस्तुतस्तु नाहं जानामीति जानात्येव । एतदेवाज्ञानस्य विषयत्वे तथाऽऽत्मनः स्वयंप्रकाशत्वे परमं प्रमाणं । तथा चाज्ञानं द्रव्यमिति सिद्धं । तच्च त्रिगुणात्मकं । त्रयाणां गुणानां सत्वरजस्तमसां कार्यदर्शनात् । तथाहि । अहं घटं जानामीति या वृत्तिः सा साक्षिणा साक्षाद्भास्यत्वात् सात्विकी। इयमपि अज्ञानस्यैव कार्यं । यतस्तयाऽऽत्मा प्रकाश्यत इति जना वदन्ति। स्वयंप्रकाशस्य चेतनस्य परप्रकाश्यया वृत्त्या प्रकाशनं नामाज्ञानमेव । तादृशवृत्त्यनुकूलो यो व्यापारः स च रजोगुणस्य कार्यं, अज्ञानकार्यत्वादज्ञानमेव । तमोगुणस्तु आवरणकार्यः सुतरामज्ञानमिति त्रिगुणात्मकमज्ञानं सिद्धं । ननु सत्वगुणस्य कथमज्ञानात्मकत्वं । अज्ञानस्य कार्यमावरणं। सत्वस्य तु प्रकाशकत्वमिति चेन्न । सत्वं प्रकाशकं कस्य ? तामसस्य पदार्थजातस्य नत्वात्मन इति तस्य जडत्वमेव । यथा हि काच इतरघटादिकार्यापेक्षया स्वच्छोऽपि पार्थिव एव, तथैव तामसपदार्थापेक्षया सात्विकवृत्त्यादीनां चैतन्यप्रतिबिंबग्रहणसामर्थ्ये सत्यपि जडत्वं त्वस्त्येव । इत्थं सिद्धमज्ञानमविद्यामायेत्याद्यपरपर्यायरूपं बोध्यं । ननु अज्ञानमेकं प्रतिपुरुषं भिन्नं वा ? आद्ये एकस्य कस्याऽपि पुरुषस्य ज्ञाने जाते सर्वे मुक्ता भवेयुः । अज्ञानस्य नाशात् । द्वितीयेऽज्ञाननानात्वात् कस्याज्ञानस्य जगदुपादानत्वं ? उच्यते । अज्ञानस्यैकत्वेऽपि तत्तदन्तःकरणभेदेनावरण-

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


कार्यानुकूलाः शक्तयो भिन्ना अनन्ताश्च । तत्र ज्ञानेनैकस्या आवरणशक्तेर्विनाशेऽपि अन्यासामावरणशक्तीनां सत्त्वान्न जगत्कार्यानुपपत्तिः । नापि एकमुक्तौ सर्वमुक्तिप्रसंगः । इष्टं चैकस्मिन्नपि पदार्थे नानाशक्तीनां सत्त्वं । यथा प्रदीपे तैलाकर्षिकाया वर्तिकाविकारिण्यास्तमोपहारिण्याः शक्तेः परस्परं भिन्नत्वात् । द्वितीयोऽपि पक्षः साधुः । प्रत्येकमज्ञानस्य कार्यभूतं जगदपि भिन्नमेव। अयमेव दृष्टिसृष्टिवादः । अत एव कस्मिन्नपि वस्तुनि नैकमत्यं जीवानां । तत्तद्दृष्टिभेदेन कार्याणां भिन्नत्वात्। अस्मिन् पक्षे एकमुक्तौ सर्वमुक्तिप्रसंगस्य संभावनाऽपि न । नन्विदमज्ञानं सादि वाऽनादि वा ? तत्र यदि प्रथमपक्षस्तदाऽज्ञानोत्पत्तेः कारणं वक्तव्यं । यदि तु अज्ञानस्योत्पत्तिकारणमज्ञानमेव तदा तत् सादि वाऽनादि वेति पूर्ववदेव विकल्पः । तथा चानवस्था । यदि तु एतद्भिया द्वितीयः पक्षः समाश्रीयते तदाऽनादेर्भावस्य नाशादर्शनात्तस्य ज्ञानेन नाशो न स्यादिति मोक्षानुपपत्तिः । किं च किमिदमनादित्वं नाम ? न विद्यत आदिर्यस्य तदिति वा ? न ज्ञायत आदिर्यस्य तादिति वा ? अस्यार्थः। यदि प्रथमः पक्षस्तदाऽऽत्मवत् कूटस्थनित्यत्वप्रसंगः। अथ द्वितीयः पक्षस्तदाऽपि विद्यते न ज्ञायत इति विरुद्धं । यद्धि विद्यते तत् केनाऽपि ज्ञायत एव । यस्मान्न ज्ञायते तस्मात्तन्न विद्यत इत्येव न्याय्यं । तथा चात्मवदविनाश्यत्वं दुर्वारं । किं च—अज्ञानस्य सत्त्वं नाज्ञातं । सर्वदैव ज्ञातमेवाज्ञानं भासते। अहं न जानामीति खलु अज्ञानस्याकारः। न जानामीति जानात्येव स इति तत्कारणमपि सुतरां ज्ञातमिति बोध्यं । उच्यते । तच्चाज्ञानमनाद्येव । न च तस्य नाशासंभव इति वाच्यं । अनादिभावस्य नाशो न संभवतीति व्याप्तिः किंमूलिकेति प्रथमतो विचारणीयं । तत्र किं कारणसामग्र्यभावात्तन्नाशो न भवत्यथवा स्वभावाद्वा ? उभयथाऽपि असंगतेः । अज्ञानस्य नाशसामग्री ज्ञानजनिका सामग्र्येव । तस्याः सत्त्वं तु सर्वसंमतं । किं चायं तर्कस्तर्काभासरूपः । उक्तं च—'यस्तु प्रत्यक्षा-

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


गमविरोधी न्यायो न्यायाभासः स' इति। प्रत्यक्षं च ज्ञानेनाज्ञानं नाश्यत इति। अत एवाविनश्वरत्वं तस्याज्ञानस्य स्वभावोऽपि न। तस्मादनाद्यपि अज्ञानं भावरूपमपि नश्यतीत्यनुभवबलादभ्युपेयं। यदिदमनादित्वं द्विधा शंकितं तत्तथैव साधु। न विद्यत आदिर्यस्येतिपक्षेऽज्ञानस्यारंभ एव नास्ति। जीवेनाज्ञानस्यादिर्न ज्ञायत इत्यपि सम्यगेव। कूटस्थनित्यत्वादयो दोषास्तु अज्ञानस्य नाशदर्शनादसंगता एव। वस्तुतस्तु अज्ञानस्यासत्त्वमेव। ये तु जगतः सत्यतां प्रतिश्रद्दधते तान् प्रति अद्वैततत्त्वबोधाय अज्ञानस्य कल्पना। सिद्धान्ते तु जगत्तथा तस्योत्पादकमज्ञानं नास्त्येव। केवलमजातवाद एवाद्वैतवादिनां परमसिद्धान्तत्वेन संमतः। तेनाज्ञानस्य व्यावहारिकी प्रातिभासिकी वा सत्तेति कुशंका परास्ता। एकैव सत्ता ब्रह्मरूपा नान्या जडस्येति तु तत्त्वं। तदेतत्तत्त्वमतिस्थूलदृशो येऽवगन्तुं न शक्नुवन्ति तेषां दृष्ट्या कल्पितमेतदज्ञानं त्रिगुणात्मकं द्रव्यरूपं साधितमिति बोध्यं।

४

निरूपितमज्ञानस्य स्वरूपं। अधुना तत्फलीभूतस्य दुःखस्य स्वरूपं वर्णयामि। यद्यपि बाधनालक्षणं दुःखमिति दुःखस्य लक्षणं सर्वसंमतमेव, तथापि दुःखकारणीभूतानां हिंसादीनां तथाऽन्येषां पापकर्मणां कारणत्वमथवाऽज्ञानमेव तस्य दुःखस्य मुख्यं कारणमिति महती विप्रतिपत्तिः, अतस्तत्स्वरूपं सविस्तरं वर्णयामि। तत्र देहेन्द्रियादिषु अहंममाभिमानसहितस्यैव दुःखसंवेदनादर्शनात्तदनभिमानिनश्चादर्शनात्तदभिमानिनो जीवस्यैव दुःखसंवेदनेति ज्ञायते। सा च दुःखसंवेदना पुत्रकलत्रदेहेन्द्रियाद्यभिमानमूलिकेति सर्वानुभवसिद्धतयाऽज्ञानमूलकत्वं दुःखस्य सिद्धमेव भवति। तथाहि। यस्मिन् विषये यस्य रागस्तस्मिन् रागे केनाप्यपरेण पराहते स राग एव क्रमेण क्रोधादीनां रूपाणि बिभ्रत् अन्ते दुःखरूपेण परिणमते। तत्र सर्वानर्थस्य कारणं रागस्तस्य विषयस्य सत्यत्वज्ञानात्

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



प्रादुर्भवति। न च ममत्वज्ञानं रागस्य कारणमिति वाच्यं। विषये दृष्टे तस्य सत्यत्वमवधृत्य ततस्तस्येष्टत्वं निश्चित्य तस्मिन् ममत्वं स्थापयति, न तु प्रथमत एव। तस्माद्भाविनः सर्वानर्थस्य कारणं विषयसत्यत्वज्ञानमेव। एकदा कस्मिन्नेकस्मिन्नगरे द्वौ तरुणौ भ्रातरौ वणिजौ न्यवसतां। तयोरेकोऽनुरूपां तरुणीं परिणीय तस्यामेकमपत्यमुत्पाद्य पंचत्वमगच्छत्। सा विधवाऽपि तरुणी रागातिरेकेण देवरेण संगता द्वित्राण्यपत्यानि सुषुवे। एवं गच्छति काले दुर्दैवतोऽतृप्तहृदया सा तरुणी देवपूजाकारिणि कस्मिन्नपि तरुणे बद्धभावा तेन देवरेण दृष्टाऽभूत्। तदानीमेव कोपपरीतमानसोऽविवेकी नग्नखड्गहस्तस्तं देवपूजकं तथा तां तरुणीं भ्रातृजायां तथा सर्वाण्यपि दीनान्यपत्यानि शकलीचक्रे। नैतावदेव, किंतु तदेतत् पापकृत्यं प्राकट्यं मा यात्विति मन्वानो गृहस्थां गामश्वं तथाऽन्यांश्च पशूनपि जघान। स्वयं च गृहस्य कपाटे पिधाय पलायते स्म। अथ राजकीयैः पुरुषैर्महता प्रयत्नेन गृहीतः प्राड्विवाकेन च प्राणदण्डेन योजितः प्राणानजहात्। अस्य सर्वस्यानर्थस्योत्तानं कारणं यद्यपि तस्यां तरुण्यां तस्य तरुणस्य राग इति भाति, तथापि सूक्ष्मदृष्ट्या विचारिते तेषु तेषु रतिसुखसाधनेषु अथ च रतिसुखे सत्यत्वबुद्धिरेव कारणमिति भाति। यदि च मनोरथवद्वा स्वप्नवद्वा सर्वाणि तानि साधनानि वा तत्सुखं वा सोऽमंस्यत तदा नेदृशोऽनर्थोऽभविष्यदिति सत्यं। एतेन हिंसादीनां दुःखसाधनत्वं निराकृतं। न चैतावता हिंसादीनामनर्थसाधनत्वं नास्तीति भ्रमितव्यं। तस्य मूलकारणत्वं न संभवतीत्येतावानेवार्थोऽत्राभिप्रेत इति मन्तव्यं। तदिदं दुःखं वृत्तिरूपमिति मनोधर्मत्वं तस्य सिद्धमेव, तथापि चेतनसंबंधादृते तस्य भानासंभवाज्जीवधर्मत्वं युक्तं। अस्य च दुःखस्याज्ञानसत्तासमसत्ताकत्वादज्ञानपरिणामत्वं युक्तं। अत एव मनसोऽपि अज्ञानकार्यत्वं। ननु आसक्तिरेव दुःखस्य कारणं न तु विषयसत्यत्वबुद्धिः। तथाहि। सत्येष्वपि विषयेषु वीतरागस्यासक्त्यभावात् दुःखं न भवति। रागिणो गृहस्थस्य तत्र

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


तत्र रागे सति कोपादीनां प्रादुर्भावात् दुःखं दृष्टमिति तस्यैव संन्यस्तस्य तत् न दृश्यते। किमत्र कारणं? रागाभावादन्यत्। एवं सति किमिति विषयसत्यत्वबुद्धिर्दुःखकारणमित्युच्यते? उच्यते। यद्यपि आपाततो रागो दुःखकारणमिति भाति तथापि रागस्य कारणं सत्यबुद्धिरेव। इयं मे प्रिया सुखकारणं सदैव तिष्ठत्वित्याशयेन खलु अन्येभ्यो द्रुह्यति। स एव यदि क्षणिकेयं कान्ता क्षणिकाश्चेमे विषया इति मन्येत नूनं न रज्येदेव। अत एव बौद्धै रागनिवृत्त्यर्थं क्षणिकत्वभावना समुपदिष्टा। अस्माभिश्च मायिकत्वं समुपादिष्टं। यथा हि स्वप्ने वर्तमानेषु पदार्थेषु जाग्रतो रागो न भवति। एवमेवेदं दृश्यमानं जगत् मायिकं स्वप्नतुल्यमिति मन्वानस्य हृदये रागो न प्रादुर्भवति। अपि च—ये खलु सत्यं जगद्वदन्ति ते प्रष्टव्याः। किमिति जगति रागो न कर्तव्यः, आत्मन्येव कर्तव्यः? दुःखजनकत्वाद्रागस्येति चेदस्तु तावता सुखं तु लभ्यते। दुःखं तु भोजनकार्यदुःखवत् परिषह्यं भवेत्। तथा च यदि सत्यत्वं जगतस्तदाऽऽत्मज्ञाने प्रवृत्तिः कुतः करणीया। यथाऽऽत्मा सत्यस्तथा जगदपि सत्यमिति। येऽपि क्षणिकत्वं वदन्ति तेषामपि मते क्षणमात्रं जगतः सत्यत्वात् क्षणमात्रं रागः कुतो न क्रियेत। अनुशासति शास्त्राणि रागस्य त्यागार्थं। तस्मात्तानि जगत् मायिकत्वेन व्यपदिशन्ति न सत्यत्वेनेति सत्यबुद्धिरेव दुःखस्य निदानमिति यदुक्तं तत् सम्यगेवेति बोध्यं।

५

अज्ञानं सह तत्फलेन दुःखेन निरूपितं। साम्प्रतं परमपुरुषार्थसाधनीभूतं तत्त्वज्ञानं निरूपणीयं। यद्यपि तस्य लक्षणं 'तस्मिंस्तदिति' सर्वत्र दर्शनेषु निरूपितं, तथापि अस्मिन्नद्वैतलक्षणे तत्त्वज्ञानस्य सर्वतो वैलक्षण्येन तत्स्वरूपं सविस्तरं निरूपयामि। तत्र तत्त्वज्ञानस्य प्रमात्मकत्वेन तद्वति तत्प्रकारत्वं लक्षणं सर्वैरपि द्वैतिभिरुक्तं परन्तु प्रकारीभूतधर्मस्य प्रमाज्ञानं कीदृगिति तैर्वक्तव्यं। तथाहि। अयं घट इति प्रमा-

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



ज्ञानं, घटत्ववति घटत्वप्रकारकत्वस्य सत्त्वात् । परन्तु तज्ज्ञानं घट इति । तथा च घटत्वस्य प्रमाज्ञानं कथं ? न च घटत्वत्वप्रकारकं घटत्वविशेष्यकं यज्ज्ञानं तत् तथा भवत्विति वाच्यं । घटत्वत्वं हि घटेतरावृत्तित्वे सति सकलघटवृत्तित्वं वक्तव्यं । तथा च घटेतरस्य सकलस्य वस्तुजातस्य प्रवेशात् तत् ज्ञानं न संभवि । तस्मात् स्वतो यज्ज्ञानं तत् प्रमाज्ञानं वक्तव्यं । तच्च ब्रह्मज्ञानमेव । नान्यस्य सप्रकारस्य वस्तुनः । सप्रकारकं हि वस्तु प्रकारीभूतधर्मज्ञानादनन्तरं ज्ञायते । न तु तज्ज्ञानं । ननु स्वतो ज्ञानस्य संभव एव न । तथाहि । यद्धि ज्ञानत्वेन प्रसिद्धं लोके तत् खलु घटमहं जानामीत्याकारकं । तत्र घटो ज्ञानमात्मा चेति त्रयः पदार्था विषयाः । अत्र नैकोऽपि पदार्थः स्वयंप्रकाशः । न च ज्ञानमत्र स्वयंप्रकाशं । तस्यात्मसंबंधं विना प्रकाशाभावात् । नापि आत्मा स्वयंप्रकाशः । तस्य ज्ञानसंबंधं विना प्रकाशाभावात् । घटो विषयस्तु जडो न स्वयंप्रकाश इति किमु वक्तव्यं । अतः स्वयंप्रकाशस्य पदार्थस्याभाव एव । ननु ज्ञानस्य स्वयंप्रकाशाभावे तस्य ग्रहणं ज्ञानान्तरेण तस्य चान्येन ज्ञानेनेत्यनवस्थापत्तिः । अतो यत्र कुत्रापि ज्ञाने विश्रामो वक्तव्यः । स एव स्वयंप्रकाशोऽस्त्विति वाच्यं । ज्ञानस्य त्रयः प्रकाराः । निर्विकल्पकसविकल्पकानुव्यवसायभेदात् । तत्र निर्विकल्पस्य प्रत्यक्षं न संभवति । सविकल्पस्य च ग्रहणमनुव्यवसायेन । न चानुव्यवसायस्य ग्रहणार्थं ज्ञानान्तरमपेक्षणीयं । अनावश्यकत्वात् । यथा हि प्रदीपो गृह्यमाणः स्ववर्तिकां तथा प्रकाशं ग्राहयत्येवमेवानुव्यवसायस्याऽपि प्रत्यक्षं जायत इति चेत् । मैवं । ज्ञानस्य स्वयंप्रकाशत्वाभावे जगत्यान्ध्यं प्रसज्येत । तथाहि । ज्ञानस्य स्वयंप्रकाशत्वसाधनात् पूर्वं ज्ञानं नित्यमनित्यं वेति विचार आवश्यकः । ननु आत्ममनसोः संयोगजन्यं ज्ञानमनित्यमेवेति चेत् । अत्रोच्यते । आत्ममनसोर्ज्ञानकारणयोः सत्ता भविष्यज्ज्ञानात्पूर्वं केन प्रमाणेन ? त्वन्मते प्रमाणानि प्रत्यक्षादीनि । तत्रात्ममनसोः संयोगस्य कारणत्वात्तेन प्रमाणेन

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



तत्सत्ता ज्ञापयितुमशक्या। न चास्त्येव तयोः सत्ताऽग्रे ज्ञानरूपस्य कार्यस्य जननादिति वाच्यं। सत्यं। परन्तु ज्ञानात् प्राक् केन प्रमाणेन तयोः सत्ता स्वीकार्येत्येतावानेव प्रश्नः। तस्मादनयोरन्यतरस्य सत्ता स्वयं स्वीकार्या। तत्र न्यायसिद्धान्तवदात्मनः स्वयंसत्ताकत्वं स्वीकृत्य ज्ञानरूपगुणप्रकाश्यत्वं तस्य स्वीकार्यं, अथवाऽऽत्मन एव स्वयंप्रकाशत्वं स्वीकार्यमिति प्रश्नः। तत्र न्यायमते एव आत्ममनसोर्द्वयोरपि नित्यत्वात् समत्वात् ज्ञानरूपगुण आत्मन एव न मनस इत्यत्रापि प्रमाणमन्वेषणीयं। न हि संभवत्युभयोः सांनिध्येन जायमानो गुणोऽन्यतरस्यैवेति। तस्मादात्मन एव स्वयंसत्ता। मनसस्तु संकल्पविकल्पात्मकतयाऽनित्यत्वं। सति चैवं स्वयंसिद्धसत्ताकमेव वस्तु स्वयंप्रकाशं भवितुमर्हति। यच्च पराधीनसत्ताकं वस्तु तत् परप्रकाशं जडं स्वभिन्नं भवितुमर्हति। तच्च स्वयंप्रकाशं वस्तु नित्यात् ज्ञानादभिन्नमेव। यदि ज्ञानात्तद्भिन्नं भवेत्तदा नित्यस्य वस्तुनः प्रकाश एव न स्यात्। प्रकाशाभावे च सत्तैव न सिध्येत्। तस्मात् स्वयंसिद्धस्यात्मनः स्वयंप्रकाशत्वमपि स्वीकर्तव्यमेव। नन्वस्तु स्वयंप्रकाशं ज्ञानरूपं वस्तु तथापि तस्य आकारस्तु अहमिमं जानामीतीदृगेव। न हि केवलं ज्ञानं कस्याप्यनुभवगोचरः। उच्यते। स्वप्रकाशस्य ज्ञानस्य किमर्थसंबंधेन प्रयोजनं? किं ज्ञानस्य प्रकाश उत विषयस्य? तत्र न प्रथमः पक्षः। ज्ञानस्य स्वयंप्रकाशस्य स्वीकारात्। विषयस्य प्रकाशार्थमिति चेत् कोऽयं विषयस्य प्रकाशः? विषयस्य सत्त्वमिति चेदेकस्यैव सत्त्वस्य व्यापकस्य स्वीकारेणैवोपपत्तौ प्रतिविषयमतिरिक्तसत्त्वस्यानंगीकारात्। किं च यदि विषयाः सन्तस्तदा तेषामसत्त्वं कुतः? असत्त्वमप्यनुभूयते। तस्मादधिष्ठाननिष्ठैव विषयस्य सत्ता नान्या किमपीति न विषयस्य प्रकाशो ज्ञानसंबंधस्य प्रयोजनं। नापि ज्ञानेन साकं विषयाणां कोऽपि वास्तविकः संबंधः। यदि कोऽपि वास्तविकः संबंधः स्यात्तदा विषयं विहाय ज्ञानं न तिष्ठेद्, नापि ज्ञानं विहाय विषयः। विषयं

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

विहाय ज्ञानं तिष्ठतीति बहुशो दृष्टं । घटज्ञानं पटज्ञानमित्यादिषु घटादयो विषया व्यभिचरन्ति न तु ज्ञानं । तस्मात् नास्ति ज्ञानेन समं विषयाणां कश्चन वास्तविकः संबंधः । संबंधाभावेऽपि तत्र ज्ञाने संबंधो विषयाणां भासते । इदमेव मायायाः सत्त्वे ज्ञापकं । तथा च ज्ञानस्य अहमिदं जानामीति न वास्तविक आकारः। ननु कथं तर्हि ज्ञानस्याकारः ? उच्यते । सत्ता हि अप्रकाशमाना न संभवतीति प्राक् निरूपितं । प्रकाशोऽपि असन् न संभवत्येव । तथा च सत् प्रकाशमानमेव । प्रकाशश्च सन्नेवेति स्वीकर्तव्यं । आनन्दोऽपि अविज्ञायमानो न संभवत्येव । ततश्च सोऽपि प्रकाशाभिन्नः सदभिन्नश्च स्वीकार्यः । ततश्च सदभिन्नं चिदभिन्नं आनन्दाभिन्नं च ब्रह्मेति ब्रह्मज्ञानस्याकार इति ज्ञेयं । एतत्सर्वं श्वेतकेतोरुपदेशपरे षष्ठे प्रपाठके निरूपितं तत एव ज्ञेयं । ननु किमिदं ब्रह्मोच्यते । तद्धि द्रव्यं वा गुणो वा कर्म वोत सामान्याद्यन्यतमः पदार्थः ? निर्गुणत्वान्न द्रव्यं । अनाश्रितत्वान्न गुणादिकं । ननु ब्रह्माश्रितं कुतो न ? नेत्युच्यते । ब्रह्म यद्याश्रितं स्यात्तदाऽनित्यं स्यात् । उच्यते । ब्रह्मणोऽपदार्थत्वात् । पदार्थो हि पदवाच्यः । यो हि वाच्यः पदार्थः स मनोव्यापारविषयः । यो हि मनोव्यापारः स संकल्पविकल्पविषयः । संकल्पविकल्पौ चानित्यौ कथं नित्यं ब्रह्म विषयीकर्तुं समर्थावभूताम् । अतो न ब्रह्म पदार्थः । ननु यदि ब्रह्म पदार्थ एव न, तदा तस्यासत्त्वापत्तिः, शशशृंगवदिति चेन्न। शशशृंगं पदार्थ इति तस्य सत्त्वं कुतो न ? शशशृंगवदवाच्यत्वं यत्र स शशशृंगपदार्थः सन् भवितुमर्हति । तस्मात् शशशृंगस्यासत्त्वं न पदार्थत्वप्रयुक्तं किंतु वस्त्वभावमूलकं । एवमेव ब्रह्मणः पदार्थत्वाभावः पदार्थत्वानुपपत्तिमूलक इति बोध्यं । पदार्थत्वानुपपत्तिश्चोपरिनिवेदिता बोध्या । नन्वेतादृशब्रह्मणः सत्त्वे किं प्रमाणं ? ननु प्रमाणे किं प्रमाणमिति चेदन्यत् प्रमाणं । यथा प्रत्यक्षेणोपलभ्यमाने घटे किं प्रमाणमिति चेत्तत्र प्रत्यक्षं प्रमाणं । प्रत्यक्षप्रमाणे

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


किं प्रमाणमिति चेदनुमितिः। प्रत्यक्षेण घटं वीक्ष्य यस्मादहं जलमानीय पिपासामशमयमतोऽस्ति मे घटस्य प्रत्यक्षमिति। एवं तेषु तेषु प्रमाणेषु प्रमाणान्तराणां संबंधोऽनुसंधेयः। तथा च नास्ति तादृशं वस्तु यत् प्रमाणगोचरो नेति चेन्न। स्वयंसिद्धत्वाद्ब्रह्मणो नास्ति प्रमाणापेक्षा। तथाहि। यद्धि संदेहास्पदं तत्र संदेहापनयनाय प्रमाणानामावश्यकता। यथा हि अन्धकारस्थे घटे प्रत्यक्षीकरणीये प्रदीपस्यापेक्षा। यत्र तु संदेह एव नास्ति, यत्र तद्योग्यतापि न, तत्र प्रमाणस्यावश्यकतैव नेति नास्ति ब्रह्मणि प्रमाणावश्यकता। किं च प्रमाणानि जडकार्यत्वाज्जडान्येव। न हि जडानां स्वयंप्रकाशता संभवति। ततः तेषां प्रमाणानां प्रकाशकः कश्चन स्वीकर्तव्यः। स एव ब्रह्म वाऽऽत्मा वा। तस्याऽपि प्रमाणप्रकाश्यत्वं स्वभावविरुद्धं। न हि मार्गप्रदर्शनाय चक्षुष्मता प्रदत्तहस्तावलंबोऽन्धश्चक्षुष्मते मार्गं दर्शयितुं प्रभवति। ब्रह्म हि सर्वदैव निःसंदिग्धत्वात् स्वयंप्रकाशं। न च तत्र प्रमाणस्यापेक्षा। अपि च संसर्गार्था वृत्तिः, अभिभवार्था वृत्तिरित्यादि वृत्तीनां नानाविधं फलवैजात्यं। तच्च घटादिषु जडेषु बाह्येषु संभवति। परन्तु चेतने ब्रह्मणि कथं स्यादनाधेयातिशयत्वाद्ब्रह्मणः। यदि ब्रह्म किमप्याधेयातिशयं स्यात्तदा जडं स्यात्। न च तथा संभवति। तस्मान्नास्ति तत्र प्रमाणस्यावश्यकता। न च दृष्टान्ताभावः। अद्वितीयत्वाद्ब्रह्मणो दृष्टान्ताभावोऽलंकार एव न दोषः। ननु तद्ब्रह्म परोक्षमपरोक्षं वा? यदि प्रथमः पक्षस्तदा तत्र प्रमाणानां संभवति संभवः। अन्त्यश्चेत्तदाऽपि आत्मत्वान्न तस्य ब्रह्मरूपतेति चेन्न। यो हि सकलप्रवृत्तिसाक्षी नित्यचैतन्यरूपः सकलप्रेमास्पदमयमात्मा न ततो ब्रह्म अतिरिक्तं किमपि। अयमात्मा ब्रह्मेति भगवत्पूज्यपादाचार्याणामुपदेशः। न चात्मनो ब्रह्मरूपत्वं बाधितं, तस्यात्मनो वास्तविकस्य रूपस्यानवबोधात्। यद्धि तस्य प्रादेशिकं रूपं गृह्यते तत् खलु देहसंबंधान्मानसीषु वृत्तिषु तादात्म्याध्यासात्। आत्मा हि न कदापि स्वरूपेण प्रत्यक्षविषयो जायते।

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


किंतु सदैव सुखदुःखादिवृत्तिवैशिष्ट्येनैव । तथापि तेष्वेवान्वयव्यतिरेकाभ्यां सोऽन्य एव। तत एव तस्यात्मनो व्यापकत्वं स्वीकर्तव्यमेव। यदि तु तस्य मध्यमपरिमाणत्वं तदाऽनित्यत्वं स्यात् । अथाणुपरिमाणत्वं तदा तस्य वृत्तिभासकत्वं न संगच्छेत । तस्मादगत्या व्यापकत्वमंगीकार्यं । तथा सति जगदधिष्ठानत्वमपि तस्य श्रुत्युक्तमुपपद्यते । अतो जगदधिष्ठानभूतं सच्चिदानन्दरूपमेकं ब्रह्मतत्त्वमेवात्मा नान्यदिति ज्ञानमेव ब्रह्मज्ञानं । तदेव मोक्षस्य स्वानन्दावाप्तेश्च कारणं । तदिदं छान्दोग्ये षष्ठे प्रपाठके श्वेतकेतवे समुपदिष्टं तत एव ज्ञेयं। ननु ब्रह्मज्ञानमित्यत्र कथं वा विग्रहः । ब्रह्मणो ज्ञानमिति वा ब्रह्म च तज्ज्ञानं चेति वा । नाद्यः । तथा सति वृत्तिर्ब्रह्माकारा स्यात् । न च वृत्त्या मोक्षो भवितुमर्हति । नित्यस्वरूपत्वान्मोक्षस्य । नान्त्यः । तथा सति ब्रह्मज्ञाने जात इत्यादयः प्रयोगा बाधिता स्युः । तस्य नित्यब्रह्मस्वरूपत्वादिति चेन्न। तामसवृत्तीनां नाशार्थं तथा रजोवृत्तीनामुच्छेदार्थं सत्वमय्या ब्रह्माकारवृत्तेरस्ति महत्यावश्यकता । ध्यानधारणादिभिः सा खलु निर्मातुं शक्या । न च तस्याः सत्त्वेऽद्वैतहानिरिति वाच्यं । सा च वृत्तिर्जाता अन्याः सर्वास्तामसीर्वा राजसीर्वावृत्तीर्नाशयित्वा दग्धेन्धनवत् स्वयमेवोपशाम्यति । न च तत्राधिकस्य व्यापारस्यापेक्षा । द्वितीयोऽप्यर्थः साधुः । ब्रह्मस्वरूपज्ञानरूपत्वान्न किमपि हेयं वोपादेयं वेति परमपुरुषार्थसिद्धिः । इदमत्र सारं । ब्रह्मज्ञानं न वृत्तिरूपं किंतु स्वरूपपरं । यानि हि नित्यकर्मानुष्ठानमारभ्य ध्यानधारणादिपर्यन्तानि साधनजातानि तत्र तत्रोक्तानि, तेषां ब्रह्माकारवृत्तिजनने उपयोगः । सा च वृत्तिः संजाता सर्वमपि कर्मजातं वा संस्कारराशिं वा सर्वमपि वृत्तिसमूहं वा नामशेषीकृत्य स्वयमपि नश्यति । तथा च ब्रह्मैवाहमस्मि इति स्वरूपज्ञानमवशिष्यते । तत एवेदं जगन्नासीन्न भविष्यति नास्तीत्याकारो बाधोऽपि संभवतीति सर्वं मंगलमिति ।

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

६

निरूपितं ब्रह्मज्ञानं । अधुना तत्फलीभूतं मोक्षं समुपपादयितुमुपक्रमे । तत्र ये तावत् द्वैतिनो नैयायिकादयः सांख्यादयश्च, ते दुःखध्वंसं मोक्षं वदन्ति । उपासकास्तु ईश्वरकृपया तिरोभूतस्य स्वसुखस्याविर्भावं । केचनान्ये च परमात्मना सह वैकुण्ठलोकादिस्थलविशेषे स्थित्वा दिव्यपदार्थसेवनं । तत्र प्रथमपक्षीयाः प्रष्टव्याः । यदि भवतां मते दुःखध्वंसरूपो जन्यो मोक्षस्तदा तस्य नित्यत्वं कथं ? सर्वस्याऽपि कार्यस्य द्विविधो नाशः । एक आश्रयनाशतः, अपरो निमित्तकारणतः । ध्वंसप्रागभावयोः प्रतियोगिसमवायिकारणमेवाश्रय इति न्यायसिद्धांतः । तथा चात्मनो नित्यत्वात्तन्नाशाभावेऽपि निमित्तकारणस्य ज्ञानस्य नाशेन दुःखध्वंसः कुतो न नश्यति ? ननु ज्ञानं हि दुःखस्य नाशकं न पुनर्दुःखध्वंसस्येति चेत् । सत्यं । परन्तु जन्यत्वे समाने दुःखध्वंसः कुतो न नश्यतीत्येव वयं न जानीमहे । किं च– मोक्षः परमपुरुषार्थ इति सर्वतंत्रसिद्धांतः । पुरुषार्थश्चाविदित इति न संभवत्येव । एवं स्थिते दुःखध्वंसरूपी मोक्षः प्रत्यक्षो विदित इति वक्तव्यमेव । अभावप्रत्यक्षे प्रतियोगिज्ञानं कारणमिति सर्वसंमतमेव । तथा च दुःखध्वंसरूपमोक्षसाक्षात्कारे दुःखज्ञानं कारणमिति मोक्षेऽपि दुःखज्ञानमावश्यकमिति कथं तस्य परमपुरुषार्थत्वं ? अपि च सुखं मुख्यः पुरुषार्थः । दुःखाभावस्तु प्रतिबंधकाभावमुद्रयाऽभीष्टः । तथा च सुखस्यैव परमपुरुषार्थत्वं युक्तं । अत एव स्वल्पस्य सुखस्य लोभेन दुःखराशिमपि सहन्ते सांसारिका जनाः । अतो न दुःखध्वंसो मोक्षः किंतु अज्ञानावृतसुखरूपात्मलाभ इति । तथाहि । स्वयं हि सुखरूपोऽपि जीवः केवलमज्ञानेन तेषु तेषु विषयेषु वा इन्द्रियसंनिकर्षेषु वा सुखं मन्वानो रात्रिंदिवं कलहायमानो दुःखितमना जीवति । इह लोके प्रायो जीवानां दुःखकारणं विषयवासना । सा च विषयेषु सुखदत्वभावनाजन्या । परन्तु यदि अयं भोक्ता जीवो न

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



स्यात्तदा विषयाणां क उपयोगः । अत्युत्तमं श्रीखण्डं गात्रे निहितं शीतलयति, ग्रीष्मसंतापं शमयति । परन्तु तदेव हेमन्ते तस्य गात्रे निहितं दुःखाकरोति । तत् किं श्रीखण्डं सुखदं वा दुःखदं । कालानुकूल्येनोभयमिति चेत् कस्तस्य श्रीखण्डस्य स्वभाव इति पृच्छामि । कारणानुकूल्येन वस्तु स्वभावं नात्येति नापि स विदूरीभवति । यदि तु प्रतिबंधकसत्त्वं तदा कार्यं न करोति परन्तु वस्तु स्वभावं न जहाति । प्रकृते च विषयाणां सुखदत्वदुःखदत्वान्यतरस्वभावकत्वे प्राप्ते किंस्वभावकत्वं तद्वक्तव्यं । यदि च सुखदत्वमेव कालवैपरीत्येन दुःखदत्वं भासत इत्युच्यते तदा सर्वकाले सर्वथा निर्विशेषप्रेमास्पद आत्मनि तु सुखं कल्पनीयमेव । तत्संबंधादेव पुत्रभार्यादिषु सुखदत्वकल्पनयैव सामंजस्ये विषयेषु सुखदत्वकल्पना न योग्या । न चात्मसंबंधं विना किममि वस्तु सुखदं भवति । अस्मिन्विषयेऽस्ति प्राचीनैकाऽऽख्यायिका । आसीत् दिल्लीपतेरकबरस्यामात्यो बिरबलो नाम । तौ च स्वाम्यमात्यौ राज्यकार्यार्थं सभाप्रासादे समुपविष्टौ तत्र समागच्छन्तीं बालां राजकन्यामपश्यतां । सा च कन्यकाऽतीव सुन्दरी बाललीलाभिर्दिल्लीपतेः पितुरकबरस्य मनो जहार । तेनापहृतमना अकबरः स्वामात्यं पप्रच्छ । अमात्यश्रेष्ठ ! इह जगति किं वा वस्तु सर्वेभ्यः प्रियं तद्वदेति । बिरबलश्च प्रत्युत्पन्नमतिस्तदानीमेव सर्वेषु वस्तुषु आत्मैव प्रियो नान्यत्किमपीति जगाद । तदेतत्तस्य प्रतिवचनमाकर्ण्य खिन्नोऽपि शनैर्दिल्लीश्वरो जगाद । अहं मन्ये सर्वेषु वस्तुषु अपत्यमेव प्रियमिति । तस्य निर्णयार्थमादिष्टो बिरबलः सापत्यां वानरीमानीयैकस्मिन् प्रस्तरमये चतुष्के तां संस्थाप्य तं चतुष्कं जलेन शनैः शनैः पूरयितुमारेभे । यथा यथा जलमवर्धत तथा तथा साऽपत्यं स्नेहेनोच्चैश्चक्रे । स्कन्धमात्रे पयसि प्रवृद्धे साऽपत्यं स्वमस्तके धारयामास । परन्तु यदा ततोऽपि ऊर्ध्वं जलमागच्छत्तदा तदपत्यमधस्तात् स्थापयित्वा तदुपरि स्वयं स्थिताऽऽत्मानं ररक्ष । तद्वीक्ष्य दिल्लीपतिः परं संतुष्ट आत्मा-

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



नमेव सर्वेभ्यः प्रियं मन्वानस्तं चतुरं प्रधानामात्यं परं प्रशशंस। वाचकाः! एषाऽऽख्यायिका, परन्तु आत्मनि निरतिशयं निरपेक्षं च प्रेमेत्यत्र न कस्यापि संदेहः। तथा च व्यापके सर्वाधारेऽस्मिन्नात्मनि सुखसत्तां परिकल्प्य तत्संबंधभास्ये वस्तुजाते सुखसत्ताभासेनैव सर्वसामंजस्येऽनन्तसुखसत्ताकल्पनाया असामंजस्यात्। यथा जपासंनिकृष्टे स्फटिके रक्तं रूपं भिन्नं नांगीक्रियते किंतु जपानिष्ठरूपस्यैव तत्र भासः स्वीक्रियते, तथैव प्रकृतेऽपि बोध्यं। ननु स्फाटिके रक्तरूपस्य बाधः प्रत्यक्षसिद्धः। न तु तथा विषयेषु सुखस्य बाधः। उच्यते। सुखदुःखयोः परस्परविरुद्धत्वादन्यतरस्वरूपकल्पनायां दुःखस्वरूपकल्पनैव युक्ता। क्षयित्वाद्विषयाणां। मानवं हि विषयाणां क्षयित्वकल्पनैव दुःखयति। तत्र विषयनिष्ठं क्षयित्वं यद्यात्मनिष्ठं भवेन्नूनं तज्ज्ञातमेव न स्यात्। उभयोरपि क्षयित्वात्। ज्ञायते तु ज्ञात्रा ज्ञेयनिष्ठं क्षयित्वं। तस्माज्ज्ञेयस्य दुःखरूपत्वं। ज्ञाता हि अक्षय्यत्वात् सुखरूप एव। अक्षय्यं च सुखं, न ततोऽन्यत्किमपि। तस्मादात्मैवाखण्डानंदाचिन्मयः। तस्य विषयैस्तथा मनआदिभिः साधनैः साकं संबंधो मायिकोऽनिर्वचनीयोऽनुपपन्नत्वादिति तत्त्वं। एतदेव ज्ञानं परमप्रकर्षपर्यन्तं ब्रह्मज्ञानपदेन शास्त्रे व्यवह्रियते। ननु इदमात्मज्ञानं कथं ब्रह्मज्ञानपदेन निगद्यते। उच्यते। आत्मैव ब्रह्म न ततोऽन्यत्किमपि। यदा हि जीवो देहाध्यक्षमात्मानमिन्द्रियादीनां स्वामित्वशालिनं च मन्यते तदा स आत्मेति व्यपदिश्यते। अथ शास्त्रादीनां तथा गुरूणामुपदेशतो यदा व्यापकमात्मानं जानाति तदा स एव ब्रह्मपदेन व्यपदिश्यते। आत्मब्रह्मपदाभ्यां व्यपदिश्यमानमेकमेव चैतन्यं तत्त्वं नान्यत्किमपीति न दोषः। ननु यथा देहे तारुण्यवृद्धत्वादयोऽवस्थाविशेषा जायन्ते तथैवात्मनोऽपि बंधमोक्षादयोऽवस्था इति स्वीकारे का हानिरिति चेदुच्यते। देहस्य वृद्धिक्षयभाक्त्वेन तत्रावस्थाः संभवन्ति। आत्मनश्चाखण्डत्वेन तत्रावस्थानां संभव एव न। न चात्मनि जडवत् परिणामित्व-

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



मानुभाविकं किंतु कूटस्थत्वमेवेति न तत्र कथमपि अवस्थानां संभवः। तस्माद्बंधस्य स्वाभाविकत्वे मोक्षस्य कल्पितत्वं। मोक्षस्य नित्यत्वे बंधस्य कल्पितत्वं स्वीकर्तव्यं। मोक्षं च परमपुरुषार्थं ख्यापयच्छास्त्रं मोक्षस्य नित्यत्वेऽनुकूलं, बंधस्य कल्पितत्वे च। किं च—यथा मोक्षं स्तौति शास्त्रमेवं बन्धं न स्तौति प्रत्युत निन्दति, 'मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति'—इत्यादिभिः। तस्माद्बंधो मिथ्याकल्पित इति ज्ञेयं। एतेनेश्वरकृपया स्वसुखस्याविर्भावो मुक्तिरिति केषांचिन्मतमपास्तं। अजन्यत्वान्मोक्षस्य। यद्धि कारणजन्यं तद्धिनश्वरमिति व्याप्तेः। न हीश्वरकृपा कारणधर्मंमत्येति। किं चेश्वरकृपया यत् सुखस्य प्रतिबंधकं तदपनेयं। तत् किमिति विचारयामः। विषयेषु सुखदत्वभावनेति चेत् तथा सति अज्ञानमेव तत्। न हीश्वरकृपयाऽज्ञानं दूरीकर्तुं शक्यं। अविरोधित्वात्। ज्ञानस्याज्ञानविरोधित्वं तु न्याय्यमिति आत्मज्ञानेनैवाज्ञानं निवर्तते नान्येन केनापि हेतुना। यच्चोक्तं वैकुण्ठलोकं गत्वा तत्र भगवता समं दिव्यभोगलाभो मोक्ष इति, तत् केवलं श्रद्धामात्रं। ये च दिव्या भोगाः, ये च वैकुण्ठादयो लोकास्तेषां सर्वेषां क्षयित्वाद्दुःखदत्वमेव। तेषां च दिव्यत्वं लौकिकसुखदायिभोगापेक्षयाऽधिककालसुखदायित्वेन न तु अक्षयत्वेन। असंभवात्। ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते। आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥ इत्यादिना भोगसामान्यस्याद्यन्तवत्त्वात् क्षयित्वं। तथैव वैकुण्ठादयो लोका अपि अधिककालस्थायिनोऽपि न अक्षयाः। केवलमात्मतत्त्वं विहायान्यत्किमपि अक्षयं भवितुं नार्हतीत्यनुभवसिद्धमिति बोध्यं। ननु श्रुत्यादिषु वैकुण्ठादिलोकानां अक्षयत्वं प्रदर्शितमिति तेषां क्षयित्वानुमानं न प्रमाणमिति चेदुच्यते। न हि श्रुतिरपि वस्तुस्वभावमन्यथयितुं शक्नोति। अत एव शालग्रामे विष्णुबुद्धिर्भावनाजन्या न वस्तुतंत्रा। पाषाणबुद्धिस्तु वस्तुतंत्रा। न त्वेवमात्मतत्त्वे नित्यत्वबुद्धिः श्रुतिश्रुतबोधजनितभावनाजन्या। वस्तुतंत्रा सा। तस्मा-

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



च्छ्रुतिशतविरुद्धाऽपि वस्तुतंत्रा बुद्धिः स्वतःप्रमाणमिति ज्ञेयं। ननु मुक्तस्य सर्वकर्मणां क्षयात् कथं जीवित्वं, कथं च ततो बोधादिसंभव इति चेन्न। ज्ञानेन हि प्रारब्धातिरिक्तकर्मणां क्षयो भवति। अवश्यमेतदंगीकर्तव्यं। अन्यथा ज्ञाने जाते देहे पतिते मोक्षमार्गोपदेशः केवलमन्धपरंपरा स्यात्। न चैतन्न्याय्यं। तस्मात्प्रारब्धकर्मातिरिक्तस्य कृत्स्नस्य कर्मणो नाशकत्वं ज्ञानस्य कल्पनीयं। ननु ब्रह्मज्ञानोत्तरं कर्मणः संभवोऽस्ति न वा? यदि नास्ति तदा पाषाणवदविशेषः स्यान्मुक्तस्य। अथ यद्यस्ति तदा तत्कर्म बन्धाय कुतो नेति चेन्न। अज्ञानसहकृतं हि कर्म बन्धाय भवति न केवलं कर्म। अन्यथा गोहत्यादिजन्यं पापं व्याघ्रादीनामपि स्यात्। न च तदज्ञानकृतं। व्याघ्रस्वाभाव्याद्गोहत्यायाः। तस्मात् ज्ञानोत्तरं क्रियमाणं कर्म बंधाय नालं। ननु तत्कीदृशं कर्म भवेदिति चेदवशिष्टदेहारंभककर्मजातभोगमनुसृत्यैव तानि कर्माणि भवेयुः। तत्र नेत्थं नियमः, इत्थमेव स्यात् ईदृशमेव स्यादित्यादिः। ननु लोकसंग्रहात्मकं कर्म स कुर्यान्न वा? उच्यते। मुक्त इत्थं कुर्यादिति केनापि वक्तुमशक्यं। ननु अद्वैतसिद्धान्ते कर्मणां संन्यासो ज्ञानेनेत्युक्तं? सत्यमुक्तं। न तु कर्मणामभावः। किंतु आसक्तिरूपस्याज्ञानस्याभावेन तानि क्रियमाणान्यपि कर्माणि बन्धाय नालं भवन्तीति तेषां कर्मणामकर्मत्वव्यपदेशः। न तु पाषाणवदवस्थितिर्ज्ञानिनामसंभवादिति बोध्यं। एषा जीवन्मुक्तावस्था कीदृशीति भगवता भगवद्गीतासु—

प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते॥ इत्यादिना प्रतिपादिता

न च तस्यामीदृश्यामवस्थारूपायां मुक्तौ किं सुखं स्यादिति वाच्यं। आनन्दवल्लीषु ब्रह्मानन्दस्य स्वरूपं सविस्तरं निरूपितमिति तत एवावगन्तव्यं। किं च ये खलु हीनमतयो जीवा दुःखरूपान् विषयान् सुखदत्वबुद्ध्या सततं समुपासमानाः सुखाभासं लब्ध्वाऽऽत्मानं कृतकृत्यं वदन्ति

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


तेभ्यो यदि सत्यं सुखं दीयेत तदा कियत् सुखं भवेदिति स्वमत्यैव तर्कणीयं। न तत्र निरूपणस्यावश्यकता। अतो ब्रह्मानन्दात्मस्वरूपलाभ एव मोक्ष इति सिद्धं।

७

निरूपितं सर्वं प्रमेयं। इदानीं तत्र प्रमाणानि वक्तव्यानि। यद्यपि स्वतःसिद्धत्वादात्मतत्त्वस्यान्यस्य ज्ञेयस्य सिद्धान्तेऽप्रमेयत्वादितरदर्शनवदत्र दर्शने प्रमाणनिरूपणस्य नास्त्यावश्यकता, तथापि अविद्यावस्थायां प्रमाणप्रमेयभावस्य सत्त्वेन तदपि निरूपणीयं। तत्र प्रत्यक्षं नामेन्द्रियसंनिकर्षजन्यं ज्ञानमिति यदुक्तं तन्न सम्यक्। प्रत्यक्षं हि निःसंदिग्धं ज्ञानं। न चेन्द्रियसंनिकर्षजन्यं ज्ञानं निःसंदिग्धं भवितुमर्हति। संदेहस्यापीन्द्रियसंनिकर्षजन्यत्वात्। तस्माद्यदसंदिग्धं ज्ञानं तदेव प्रत्यक्षपदेन वक्तुमुचितं। असंदिग्धं च वस्तु जगति केवलमात्मतत्त्वमेवेति पूर्वमेव निरूपितं। तथा च तदेव प्रत्यक्षं प्रमाणं च। ननु तत्प्रमेयं? सत्यं। तथापि तस्य प्रमाणत्वे न काऽपि क्षतिः। वस्तुतस्तु न प्रमाणं नापि प्रमेयमात्मतत्त्वमिति तु प्रागेवोक्तं। इदं च श्रुत्याऽपि प्रमाणीकृतं 'यत्साक्षादपरोक्षाद्ब्रह्मेति'। ननु व्यावहारिकप्रत्यक्षप्रमायाः कारणं किं तद्वक्तव्यमिति चेन्न। न वयं व्यवहारमुपपादयितुं प्रवृत्ताः किंतु मोक्षसाधनं ब्रह्मज्ञानं निरूपयितुं। अस्तु। शब्दश्च वैदिकोऽपि अपौरुषेयोऽपि अनित्य एव। ब्रह्मातिरिक्तस्य सर्वस्याऽपि अनित्यत्वस्वीकारात्। अयमत्राद्वैतदर्शने विशेषः। ब्रह्मसत्त्वे वा जगन्मिथ्यात्वे वा तानि तानि प्रमाणानि उपयुञ्जाना अपि ते विशेषतोऽनुभवे विश्वसन्ति। सोऽयमनुभवो नेन्द्रियसंनिकर्षजन्यः, नापि वृत्तिजन्यः, किंतु स्वयं चैतन्यस्वरूप एव। यस्य भासा सर्वमिदं विभातीति श्रुत्या तदेव निःसंदिग्धं प्रमाणं नान्यदिति स्वीकृतं, आत्मा च निःसंदिग्ध इति स एव प्रमाणं। स एवानुभवपदेन निगद्यत इति संक्षेपः।

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

# उपसंहारः

## (तत्र)

## समन्वयः

एवं क्रमेण चार्वाकमारभ्योत्तरमीमांसादर्शनपर्यन्तं सर्वेषां दर्शनानां संक्षेपेण प्रमेयजातं निरूपितं। इदानीमेतेषु सर्वेषु किमभिमतामिति विचारयामहे। तत्र केचन दर्शनमर्मानभिज्ञा वदन्ति—इमानि भिन्नान्येव दर्शनानि सन्ति। नैतेषु एकवाक्यता। इदं च प्रत्यक्षतोऽपि सिध्यति। चार्वाकदर्शने देह आत्मा, अद्वैतदर्शने देहस्य मिथ्यात्वं सर्वस्य दृश्यमानस्य जगतो बाधितत्वं च। यद्यनयोरपि एकवाक्यता स्यात्तदा कयोर्न जगत्येकवाक्यता? तथा च विसंगतिः कुत्रापि न स्यात्। किं च—एतेषां भिन्नभिन्नविषयप्रतिपादकानां भिन्नभिन्नकर्तॄणां भिन्नभिन्नकालिकानां दर्शनानामेकवाक्यताग्रहेण को वा लाभः। यथाऽन्यत्र तेषु तेषु शास्त्रेषु भिन्ना भिन्ना मतिस्तेषां तेषां ग्रंथकाराणां दृश्यते, न च तत्र कोऽपि एकवाक्यताविधानाय प्रयतते, तथैव प्रकृतेऽपि विधेयं। यस्य मतं यस्मै रोचते स तदंगीकरोतु यच्च न रोचते तत् स जहातु। का वा हानिः। न चैतावता दर्शनस्य कस्याऽपि बाधितत्वं। सर्वसंमतस्यैकस्य वस्तुनोऽभावे निर्विवादे कतिपयसम्मतवस्तुप्रतिपादकत्वेनैव कस्यापि दर्शनस्य प्रामाण्यं वक्तव्यं। तच्च सर्वत्रैव निराबाधं। अतोऽसंगतमेतद्यत्सर्वेषां दर्शनानामेकवाक्यताविधानं। यद्येतदपि शक्यं तदा तेजस्तमसोरपि एकीकरणं शक्यमिति विद्वांस एव विदांकुर्वन्त्विति। तदेतत् केषांचित् प्रतिपादनमापातरमणीयं मन्दबुद्धीनां संतोषकरं प्रायः सर्वत्रैव विद्वदभिमानिषु जनेषु बाहुल्येन प्रसृततरं च। तथापि ये कृतबुद्धयो यथावच्छास्त्रेषु कृतपरिश्रमा गुरुकृपया शास्त्रप्रमेयेषु लब्धावसरास्ते नैवं मन्यन्ते। तेषामयमाशयः—यदि

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


प्रतिपादितानि दर्शनशास्त्राणि स्वातंत्र्येण परस्परविरोधिज्ञानप्रतिपादकानि भवेयुस्तदा सुन्दोपसुन्दन्यायेनैतेषां प्रामाण्यं व्याहन्येत । कस्यापि एकस्यापि दर्शनस्य तत्त्वज्ञानं न प्रमाणं भवेत् । तथा चेमानि सर्वाणि दर्शनशास्त्राणि कविकल्पनावत् कल्पनामात्राणि स्युः । न च का हानिरिति वाच्यं । तथा सति सर्वस्वनाश एव । तथाहि । इह खलु मर्त्यलोके बुद्धिमान् मानवः स्वबुद्ध्यतिरेकेण नानाविधानि सुखसाधनानि संपाद्य तेभ्यो यथेच्छमिन्द्रियसुखं भुञ्जानस्तस्य सुखस्याधिक्येन लाभाय रात्रिंदिवं प्रयतत इति सर्वेषां विदितमेव । शर्करास्वादसुखं यावत्कालं ततोऽपि आधिक्येन सुखलाभाय मानवेन शष्कुली विरचिता । यया स शनैः शनैः शर्कराया आस्वादं समधिककालमलभत । एवं प्रयतमाना मानवा अनादिकालात् सुखस्य स्थैर्यं वाञ्छन्तो विषयेषु नानाविधान् प्रकारान् विदधतोऽपि नैव यशस्विनोऽजायन्त । तेन दुःखाकुलाः कतिपये विचारशीला इत्थं विचारयामासुः । यदिदं विषयेभ्यः सुखं जायते, यस्य स्थैर्यार्थं वयं रात्रिंदिवं प्रयतामहे तत् सुखं कुतो भवतीति प्रथमं विचारयामः । तद्यदि विषयेष्वेव स्यात्तदा विषयाणां स्थिरीकरणेन सुखमपि स्थिरं भवेत् । अथ यदि सुखं न तेषु तदा तत् कस्य धर्म इति विचारयाम इति । तत्र श्रीखण्डभक्षणेन सुखं जायत इति सर्वेषामनुभवः । परन्तु यदि शैत्यं किंवा ज्वराक्रान्तिस्तदा न रोचते तदेव श्रीखण्डं । यदि श्रीखण्डरूपे विषय एव सुखं तदा तदाश्रयिणा श्रीखण्डेन सततं प्रियेणैव भाव्यं । न च तथाऽनुभवः । तस्मान्न सुखं श्रीखण्डस्य धर्मः । एतेन श्रीखण्डोदाहरणेन सर्वेषु विषयेषु न सुखमिति निरूपितं वेदितव्यं । प्रकृतमनुसरामः । अथ सुखं कस्य धर्म इति जिज्ञासायां प्रवृत्तायां शरीरे सुस्थे सर्वमेव सुखं संजायत इत्यनुभवबलेन शरीरस्यैव सुखं धर्म इति अमन्यन्त । परन्तु विषयाभावे केवलस्य शरीरस्य न सुखमित्यपि जायमानमनुभवं प्रमाणीकृत्योभयसंयोगात् सुखमिति निरचिन्वन् । तथापि

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


सुषुप्तौ विषयाभावेऽपि जाग्रच्छरीरस्याभावेऽपि सुखस्यानुभवात् सुखं न शरीरस्य तथा विषयाणां धर्म इति पुनर्विचारे समारब्धे- नूनं सुखमहंपदवाच्यस्य धर्म इति निश्चित्य कोऽसौ अहंपदवाच्य इति जिज्ञासायां प्रवृत्तायां विविधान् प्रामाणिकाननुभवान् प्रमाणीकृत्य विचारयतां भाग्यशालिनां जीवानां विचारभूतानि एतानि दर्शनानि न कल्पनाप्रभवाणि। यदि कल्पनाप्रभववत्त्वं दर्शनानां तदा 'अभयं वै जनक प्राप्तोऽसि। सोऽहं शोचामि। तं मा भगवान् शोकस्य परं पारं तारयतु' इत्यादीनि वचनानि कथं संगच्छेरन्। केवलं नाटकेषु यथा कल्पितपात्राणां भाषणानि सन्ति तद्वदेवेमानि न भवितुमर्हन्ति। तथा सति कस्यापि जीवस्य दर्शनोक्तसिद्धान्तानुसारि समाचरणफलं न स्यात्। न हि रामवाक्यान्युच्चारयतो नटस्य रामवद्धर्षशोकौ संभवतः। न च न भवत्येव फलमिति वाच्यं। तथा सति नैष्फल्यादनुष्ठानमेव न स्यात्। न च तदनुसारिणो मूढकल्पा इति साम्प्रतं। कथं वा त्वया विषयकर्दमलोलुपेन दर्शनसिद्धान्तानुसारिणां मूढत्वं ज्ञातं। वस्तुतस्तु- विषयवासनातो दुःखं विषयवासनानाशात् सुखमिति सर्वतंत्रसिद्धान्तं प्रमाणीकृत्य यः प्रवर्तते स दुःखं न लभते, क्रमेण च वासनासु नष्टासु सुखी भवतीत्यत्र बहूनि निदर्शनानि। पुरा खलु आलेक्झांडरनामा परमशूरो यवनराजो बभूव। स च पराक्रमेण समग्रं भुवनं जित्वा जेतव्याभावं पश्यन् रुरोद। सुप्रसिद्धो महंमदगिझनवीनामा महंमदीयो भूपालो बहुशो भारतभुवं निर्लुण्ठ्यागणितां संपदं स्वदेशं निनाय। अथ वार्धक्यजर्जरितकलेवरो मृत्युं समुपस्थितकल्पं समुत्प्रेक्षमाणः स्वसेवकैः सर्वामपि संपदमेकत्रीचकार। तां चाक्ष्णा पश्यन् तया सह स्ववियोगं कल्पयन् नेत्राभ्यामविरतं जलौघं मुञ्चन् महता कष्टेन बभाषे—इयं च संपदत्रैव स्थास्यति। मादृशोऽन्यो वा लुण्ठकोऽपहरिष्यति। अहं तु वृथा तेषां तेषां दीनानां निहतानां पापभारेण समाकृष्यमाणः परलोकं यामि। अधुनाऽनया संपदा न मे

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



कोऽपि लाभ इति । सुप्रसिद्धः साधुवरस्तुकारामस्तु सर्वदैव ज्ञाननिर्धूत-कल्मषः सततं भगवद्भक्तौ मग्नो न कदाऽपि रुरोद । प्रत्युत हसन्नेव शरीरं जहौ । वाचकाः यदि मृत्युः सर्वत्रैव समानो न कमपि मुञ्चति तदाऽन-योर्मध्ये एको हसन् मृत्युं लभते, अन्यो रुदन् । अयं विशेषः किंनिमित्त इति वक्तव्यं । न चोन्मत्तवदयमुन्मादनिमित्त इति वक्तव्यं । संतोषस्य लाभो यद्युन्मादेन तदा तादृशोन्मादलाभाय सर्व एव प्रयतेरन् । वस्तुतस्तु—अयं विशेषो वासनातिरेकतस्तथा वासनानां नाशत इति बोध्यं । तथाहि । वासना नाम विषयभोगजन्यश्चेतसि वर्तमानः सुखस्य दृढः संस्कारः । स च विषयेभ्य एव सुखमिति दृढमतिं विना नोत्पद्यते । सैव दृढमतिः संस्कारद्वारा भूयोभूयो विषयसंपादनेन मानवं दुःखयति । दुःखं च न कस्यापीष्टं । तस्मात्तत्कारणीभूतवासनाजनिका सा विषय-सुखलालसाऽनिष्टेति न्यायप्राप्तमेव । फलं त्वनिष्टं कारणं त्विष्टमित्यपमार्गः । न हि संभवति विषात् पुष्टिर्दुग्धाद्वा मरणं । तस्मात् फलीभूतस्य दुःख-स्यानिष्टत्वे तत्कारणीभूताया विषयसुखलालसाया अपि अनिष्टत्वमंगी-कार्यमेव । ततश्चैतासां वासनानां नाशार्थं तत्त्वज्ञानमवश्यमेषणीयं । तादृश-तत्त्वज्ञानोत्पत्त्यर्थमभ्यासोऽनुष्ठानापरपर्याय आवश्यक इति गले पतितमेव । तथा च यद्यदनुष्ठानार्हं तन्न कविकल्पनासममिति एकवाक्यताया आवश्यता समागतैव । किं च—तत्त्वज्ञानं वस्तुविषयकं । तद्यदि प्रमा तदा तेन वस्तु-तंत्रेण भाव्यं । अन्यथा तस्य प्रमात्वमनुपपन्नं भवेत् । प्रमात्वस्य वस्तु-तंत्रत्वात् । न च विकल्पोऽपि प्रमाविषयः । न हि संभवति घटे घटो वा पटो वेति विकल्पस्य प्रमात्वं । तस्मात्तत्त्वज्ञानेन यदि दुःखं नश्यति नान्येन केनाप्युपायेनेति सिद्धान्तस्तदा तत्र तत्त्वज्ञाने एकवाक्यता परमावश्यिकीति बोध्यं । अथ किं तत् तत्त्वं यत्र ज्ञाते दुःखं नश्येत् सर्वेषामैकमत्यं च भवेदिति विचार्यमाणे प्रथमतः सर्वेषां दर्शनानामभिमताः सिद्धान्ताः समुपस्थापनीयाः । येन तत्त्वज्ञानस्यैकाकारत्वस्थापनं सुकरं

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



भवेत् । तत्र 'अज्ञानात्-बंधः दुःखरूपः, ज्ञानाच्च मोक्षः दुःखनिवृत्तिः सुखं वेति सर्वसंमतं । ज्ञानेन जायमानाया दुःखनिवृत्तेर्नित्यत्वं न दुःखस्य पुनरुत्पत्तिरिति सर्वसंमतं । एतेन विषयेषु विद्यमानं ममत्वं भोग्यत्वापरपर्यायं केवलमज्ञानकल्पितं न वास्तविकमिति सर्वसंमतमिति प्राप्तमेव । युक्ततरं चेदं । कथमन्यथा तद्धानार्थं सर्वेषां शास्त्राणामुपदेशोऽन्वर्थो भवेत् । न हि अग्नेरौष्ण्यस्य परिहानार्थं कृताः प्रयत्नास्तथोपदेशाश्च सार्था दृष्टचराः । तस्मात् सर्वस्मिन्नपि जगतीतले तेषु पदार्थेषु जीवेन स्वीकृतं ममत्वं भोग्यत्वमज्ञानकल्पितमित्यत्रैकमत्यं । अथ यदि भोग्यत्वं कल्पितं तदा स्वस्मिन् वर्तमानं भोक्तृत्वमपि कथं वास्तवमिति विचारणीयं । यत्र हि विशिष्टबुद्धिस्तत्रान्यतरस्य घटकीभूतस्यैकस्य मिथ्यात्वे सर्वमिथ्यात्वं गले पतितमेव । तथाहि। भोक्तृत्वं भोगो भोग्यत्वमिति त्रयः पदार्थाः परस्परं संबद्धाः 'अहमिदं भक्षयामि' इति ज्ञाने। तत्र भोग्यत्वस्येदन्त्वानिष्ठस्य कल्पितत्वे भोगस्तथा भोक्तृत्वं कल्पितमिति बालोऽपि वदेत्। ननु भोगस्य सत्यत्वे का हानिरिति चेदुच्यते । भोग्यस्य कल्पितत्वाभावे तस्य वास्तविकत्वेन तन्निवृत्तिर्गगनकुसुमायमाना कल्पिता भवेत् । तथा च सकलभोग्यान्तर्गतस्य दुःखस्य वास्तविकत्वे दुःखनिवृत्तिर्न स्यात् । तदभावे तदुपदेशकारीणि शास्त्राणि विफलानि भवेयुः । प्रत्यक्षविरोधश्च । सततमापतितेषु दुःखेषु केवलं विचारेण दुःखजातस्य न्यूनीकरणं सामग्र्येण निवृत्तिर्वा जायत इत्यनुभवविरोधश्च । भोग्यत्वस्य कल्पितत्वेऽवशिष्टं भोक्तृत्वं भोगश्च कल्पित इत्यत्र न विवाद इति बोध्यं। ननु यथा हलस्य वहने नियुक्तो वृषभः सायंकाले स्वामिना मुक्तोऽन्यत्र तिष्ठति । हलश्च तथा वहनकाष्ठमपि । तथैव असंबद्धा भोक्तृभोगभोग्यास्त्रयः पदार्थाः पार्थक्यं भजन्तः स्वातंत्र्येण कुतो न तिष्ठेयुरिति चेत् । उच्यते। यथा हलो वृषभस्तथा वहनकाष्ठमिति त्रयः पदार्थाः स्वातंत्र्येण सिद्धास्तथा नात्र भोक्तृत्वभोग्यत्वभोगादयः किंतु एते परस्परं नित्यसंबंधिनः।

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



न हि भोगं विना भोग्यं विना च कस्यापि जीवस्य भोक्तृत्वं । एवं भोगं विना न भोग्यत्वं तथा भोक्तृत्वं । सापेक्षा इमे पदार्था न कस्यापि स्वरूपीभूताः । अतो नैतेषां पार्थक्येन सिद्धिः । किं च द्वितीयदिने पुनरपि स वृषभो हलस्य समाकर्षणे यथा स्वामिना नियुज्यते तथा पुनरपि जीवः कुतो न दुःखस्य भोगे नियुज्यते । मुक्तस्यापुनरावृत्तिं सर्वे ऐकमत्येन वदन्ति । अतोऽज्ञानकल्पिता एवेमे पदार्था इति निःसंदिग्धं स्वीकर्तव्यं । नन्वेवं शांकरमतमेव प्रामाणिकं । अन्यानि च सर्वाण्यपि दर्शनानि अप्रामाणिकानीति प्राप्तं । तच्चायुक्तं । सर्वाण्यपीमानि दर्शनानि सर्वज्ञकल्पमुनिवरप्रणीतानीति चेत् । अत्र ब्रूमः । आत्मविचारा हि अनुभवावसाना न कर्तृविशेषगृहीतप्रामाण्याः । यथा हि अयं मधुर आम्र इति गुरुणोक्तमिति आम्लोऽपि आम्रो मधुरो भवति ? किंतु स स्वभावसिद्धाम्लरस आम्ल एव, तथैव सर्वप्रत्ययसाक्षिचैतन्येन प्रकाशितमनुभवं यदि शंकराचार्या वदन्ति वदन्तु, तावता तादृशानुभवप्रामाण्यं न तदुक्तत्वेन किंतु अनुभूतत्वेन । एतदुक्तं भवति—सर्वसाक्षिचैतन्यं प्रमाणीकृत्य यथाऽनुभवो भवेत्तथा पदार्थाः स्वीकरणीयाः, न तत्र व्यक्तीनां माहात्म्यं प्रयोजकं । एतदेव शंकराचार्यैः स्वभाष्ये लिखितं—'या तु माणवकेऽग्निबुद्धिः सा पुरुषतंत्रत्वान्न प्रमाणं । या तु प्रसिद्धेऽग्नावग्निबुद्धिः सा प्रमाणं वस्तुतंत्रत्वादिति' । अयं ह्यत्र गूढो भावः । सर्वानुभवसिद्धं प्रमाणीभूतं पदार्थं कश्चिद्वदेत्तदा तदुक्तत्वं न तस्य पदार्थस्य प्रामाण्ये प्रयोजकं, किंतु वस्तुस्वभाव एव तत्प्रामाण्ये प्रयोजक इति । ननु भोक्तृत्वादिकं सर्वमपि धर्मजातं तथा भोग्यं कृत्स्नं जगद्यदि आत्मनि कल्पितं तथाऽऽत्मा यदि शुद्धबुद्धमुक्त एक इति सर्वेषामनुभवस्तदा स प्रथमत एव चार्वाकेण कुतो नोक्तः । कथं च द्वादशदर्शनानामुत्पत्तिरभूदिति चेत् । अत्रोच्यते । इदं हि महतामपि दुरधिगमं तत्त्वं न सहसा बुद्धिविषयो भवितुमर्हति । यदा हि चक्षुषा दृष्टमपि रत्नं रत्नमर्मज्ञेन पुनः पुनरवलोक्यते तदा तस्य योग्यतां स निश्चेतुं पारयति नैव

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



सकृदवलोकनेन । प्रत्यक्षं दृश्य इयमवस्था तदा सच्चिदानन्दरूपस्यैकस्यात्मनोऽवगतौ प्रयत्नविशेष आवश्यक इति किमु वक्तव्यं । अस्मिन् विषयेऽस्त्येका गुरुपरंपरागता कथा । आसीत् कस्मिन्नपि नगरे धनातिरेकाधरीकृतकुबेरः कश्चित् श्रेष्ठी । स च चरमे वयसि बालकं लेभे । चतुर्मासे बालके स श्रेष्ठी स्वस्यान्तकालं समुपस्थितमवलोक्य सर्वमिदं धनमस्य बालकस्य कथं भवेदिति चिन्तातुरः स्वामिभक्तं स्वकीयसर्वव्यवहारज्ञं सेवकमुख्यमाहूय रहसि जगाद—सेवकश्रेष्ठ ? अहं ह्यचिरादेव परलोकं यास्यामि । वंशाधारश्च मे शिशुः । तत्तथा वर्तस्व यथाऽयं प्राप्तयौवनः सर्वं मदीयं धनराशिं लभेतेति । कथं मया वर्तितव्यमिति सेवकेन पृष्टः स श्रेष्ठी प्रत्युवाच । यद्यपि अस्य कृत्स्नस्य धनराशेरयमेव स्वामी, तथापि यथाऽयमेतन्न जानीयात्तथा प्रथमं वर्तस्व । एनं दीनबालकमिव साधारणं पालय । यदा चायं ज्ञातकर्तव्यो विदितधनसंपादनपरिश्रमो भवेत् तदा सत्यं वृत्तं निवेद्यास्मै सर्वं समर्पयेति । सोऽपि स्वामिभक्तः सर्वं तथेति प्रतिजज्ञे । अथ शीघ्रमेव स श्रेष्ठी परलोकमगात् । स सेवकश्रेष्ठस्तं बालकं कस्याअपि धात्र्यै समर्प्य तां जीवनपर्याप्तधनदानेन समतोषयत् । साऽपि धात्री तं बालकमपत्यं ख्यापयन्ती पुपोष । अवर्धत च स बालकः क्रमेण । अथ दशवर्षं तमवलोक्य स्वसेवायां न्ययुंक्त स स्वामिभक्तः सेवकः । तत्र नानाकर्माणि इतरसेवकवत् तं कारयामास । क्रमेण च लब्धवैचक्षण्यं तं स्वव्यवहारस्य मुख्यं सेवकमकरोत् । एकदा रहसि तं श्रेष्ठिपुत्रमाहूय व्यवहारं पश्यति तस्मिन् स्वामिभक्ते सेवके स श्रेष्ठिपुत्रस्तदीयैश्वर्यदर्शनलुब्धचेताः स्वकर्मणि स्खलनं चक्रे । तेन क्रुद्धः स स्वामिभक्तोऽभूत् । परन्तु यदा स श्रेष्ठिपुत्रः सनमनं क्षमामयाचत तदा दयार्द्रचेताः सर्वं क्षन्त्वोवाच । वत्स ! यदि त्वमेवास्य कृत्स्नस्यैश्वर्यस्य स्वामी स्यास्तदा कथं वर्तिष्यसे' इति । 'अहं च धर्मेण वर्तिष्ये' इति सत्यमेव तन्मुखाद्वचनं निशम्य स स्वामिभक्तस्तमाह । वत्स ! त्वमेवास्य

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


स्वामी, अहं तु सेवक इत्युक्त्वा सर्वं वृत्तं निवेदयामास। वाचकाः! यद्येवं स स्वामिभक्तोऽवर्तमानो यदि बालाय प्रथमतः सत्यं वृत्तमकथयिष्यत्तदा किमभविष्यत्। इदमेवाभविष्यद्यत् स बालः सर्वां संपदं विनाश्य दारिद्र्यमलप्स्यतेति। तथैव प्रकृतेऽपि अनधिकारिणो जीवस्य सकृन्महातत्त्वोपदेशोऽशक्य इति तत्र सोपानपरंपरा कृता। यथा खलु उच्चैःस्थानमारोढुमशक्तानां बालानां कृते सोपानपरंपरा क्रियते, यया च क्रमेण गच्छन्तः सुखेन तदुच्चैःस्थानमारोहन्ति बालाः, तथैव मुख्यं तत्त्वं दुरधिगमं मन्वानाः प्राचीना मुनिवरा इमानि सोपानानीव दर्शनानि विचारप्रधानानि अग्रथयन्। एतदुक्तं भवति। आत्मतत्त्वं विचारयतां जनानां विचारस्थानदर्शकानि एतानि दर्शनानि, न पृथक्ध्येयभूतानीति। अपि च—यथा खलु क्रमेण भुञ्जानस्य मानवस्योदरपूर्तिश्चरमेण ग्रासेन भवतीत्यनुभूयते परन्तु तत्र पूर्वभुक्तानां ग्रासानां कारणत्वमस्त्येव, तथैव क्रमेण जायमानैर्विचारैरेवायं चरमो विचारः प्रामाण्यं प्रापित इति न पूर्वेषामसाधनत्वं। तथा च बंधस्य मिथ्यात्वमात्मनश्च सत्यत्वं यद्यपि श्रीमदाचार्याणां सिद्धान्तस्तथापि स पूर्वं पूर्वं विचारितेषु दर्शनविचारेषु संवृत्तेषु सिद्धो नाकस्मादिति ज्ञेयं। यथा च शास्त्रेऽरुन्धतीदर्शनमनुरुध्य प्रथमतो यास्तारका दर्शितास्तासां तारकाणां दर्शनं नान्यथासिद्धं। तत्कृत्याया अरुंधत्या दर्शने तासां कारणत्वादित्यलमतिविचारेण। तत्कृत्स्नस्य बंधस्य तथा तन्मूलकस्य दुःखस्याज्ञाननिबंधनत्वं तथा ज्ञाननाश्यत्वमिति सर्वदर्शनकारसंमतमिति दर्शनसमन्वयो ज्ञेय इति संक्षेपः।

इत्थं दर्शनशास्त्राणां आत्मविद्याप्रदायिनां।
समन्वयं विधायाथ स्थेयं वा सौख्यसागरे॥
परस्परविरोधेन हित्वा प्रामाण्यमात्मदं।
घोरे संसारदावाग्नौ विचार्यममलैर्बुधैः॥१॥

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

# उपसंहारः

## ( तत्र )

## तत्त्वज्ञानस्योपयोगः

निरूपितो दर्शनसिद्धान्तः। समन्वयश्च समुपपादितः। अधुना तत्त्वज्ञानस्योपयोगं प्रतिपादयितुमुपक्रमे। तद्धि परमावश्यकं। प्रायः सर्व एवेन्द्रियसुखलोलुपाः पशुप्राया जनास्तत्त्वज्ञानमपहसन्ति। आधिक्येन तु लौकिकविज्ञानपारंगता द्विषन्ति। तेषां निराकरणार्थं तथा सरलमतीनामनुग्रहार्थं तत्त्वज्ञानस्योपयोगो वक्तव्य एव। तत्र लौकिकानामयं मुख्य आक्षेपो यत्तत्त्वज्ञानस्य जगति उपयोग एव नास्तीति। ते हि वदन्ति-लोके खलु यत् स्वास्थ्यमपेक्ष्यते, यच्च ततः सुखं वा ऐश्वर्यादिलाभो वा, तत् सर्वं लौकिकसाधनेभ्य एव संपद्यते। न हि तत्र तत्त्वज्ञानस्योपयोगः। प्रत्युत तत्तस्य प्रतिबंधकं। तथाहि। पुनर्जन्मादिकल्पनाभिर्मानवोऽपहृतधैर्यः सहसा साहसिकं शत्रुं निराकर्तुं न शक्नोति। स हि तत्त्ववित् प्रथमतः पुण्यं वा पापं ततो भवेदिति प्रथमं विचारयति, तेन दुर्बलमनाः स प्रतीकाराक्षमः सबलैर्निहन्यते। निहन्यमानश्च स्वपुत्रकलत्रादिकं तथा धनक्षेत्रादिकं लौकिकसुखसाधनमपि रक्षितुमसमर्थः शाश्वतं सुखं लभेतेति का प्रत्याशा। तस्माल्लौकिकस्वास्थ्यं विहाय परलोकसुखस्य वा मोक्षसुखस्य वा विचारणा बुद्धिमान्द्यं दर्शयति। न तत्रादरो बुद्धिमतां। ननु लौकिकं स्वास्थ्यं हि लौकिकसुखस्य कारणं, तस्य कारणत्वेन वयं तत्त्वज्ञानं तथा धर्मं स्वीकुर्मः। यद्येतद्भवान्न मन्यते तदा तस्य कारणं किमिति वक्तव्यं। उच्यते। तस्य कारणं बलशालित्वं। बलशालिभ्यो हि सर्वे बिभ्यति। चौरो हि यथा दण्डिनो राजपुरुषाद्बिभेति नैवं समाधिमग्नान्मुनेर्वा भस्मच्छुरितभालतलाद्गंगातीरे तपस्यतो विप्रवरात्।

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


तस्माद्बलमेकं विहाय नान्यत्किमपि लौकिकस्वास्थ्यस्य कारणं । नन्वेवं सर्वत्र प्रसृतानां विद्यालयानां क उपयोगः ? उच्यते । बलं हि विविधं । दुर्जनस्य बलिष्ठस्य निराकरणार्थं शारीरं बलमुपयुज्यते परन्तु दुर्बलस्यापि शस्त्रास्त्रसंपन्नस्य दुर्जनस्य निराकरणे तन्नोपयोगीति तन्निराकरणार्थं सज्जनेन शस्त्रास्त्रबलमपि अपेक्ष्यते । तादृशशस्त्रास्त्राणां निष्पत्तये धनं बहुलमपेक्ष्यत इति तस्य धनस्य लाभाय वाणिज्यं कर्तव्यं । तदर्थं नाना वस्तुनिर्माणं तदर्थं च वस्तुस्वभावज्ञानमावश्यकं । तल्लाभाय चेमे विद्यालयाः । एवं विद्यालयेभ्यः प्राप्तं ज्ञानबलमपि लौकिकस्वास्थ्यकारणमिति वेदितव्यं । अत एव सायन्सेत्यादिशास्त्राणामस्ति परमावश्यकता । दुर्बल एकोऽपि मानवः शस्त्रसंपन्नोऽशस्त्रान् सहस्रशो योधयतीति प्रत्यक्षं दृश्यते । तस्माद्यथा यथा शास्त्रीयप्रयोगाननुसृत्य नूतनानां शस्त्राणां वाऽऽस्त्राणां वाऽऽविष्कारो भवेत्तथा तेषां संग्रहं कृत्वा मानवेन सबलानां दुर्जनानां प्रतीकाराय बलं संपादनीयं । एष एव शान्तेः समाजस्वास्थ्यापरपर्यायायाः कारणमिति निश्चितं । ननु प्रतिदिनं शतशः सायन्सशास्त्रत आविष्कारा भवन्ति । अद्य पंचगव्यूतिस्थायिनां सैनिकानां नाशयित्र्यः शतघ्न्यो वर्तन्ते, श्वः दशगव्यूतिस्थायिनां नाशिकाः शतघ्न्य आविष्करिष्यन्ते। नूतनानां क्रयणं तु आवश्यकं । अन्यथा पारतंत्र्यमापतेत् । नूतनानां क्रयणे प्राचीनानां त्याग आवश्यकः । तदर्थमनुष्ठितो धनव्ययो भस्मनि हुतमिव निरर्थकः। न चैवंरीत्या कोऽपि समाजो वा राष्ट्रं वा धनव्ययं कर्तुं शक्नुयात् । तस्मान्नैष शान्तेरुपाय इति चेदत्र ब्रूमः । उपरिदर्शितं बलाभिक्यं विना शान्तेरन्य उपायो नास्त्येव । सिद्धे चैतस्मिंस्तत्साधनाय धनव्ययः करणीय एव । अन्यथा पारतंत्र्यं लब्ध्वा पशुवद्वा स्थेयं नान्या गतिः । तत्र ये स्वसर्वस्वव्ययेन स्वीयं स्वातंत्र्यामृतं रक्षितुमिच्छन्ति ते व्ययीकुर्वन्त्येव । व्ययीकृत्य च धनराशिं दुर्बलान् जित्वा तान् पशुवत् स्ववशे निधाय ततो धनातिरेकं लभन्ते । पुनरपि स्वसामर्थ्यं वर्धयन्ति । एवं

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


ह्यनादिकालतः प्रचलितमग्रेऽपि प्रचलिष्यति। न चैतादृशधनलाभोऽशक्य इति मन्तव्यं। ये खलु स्वातंत्र्यसंपन्ना उद्योगिनो बलशालिनस्ते प्रभूतं धनराशिं लभन्ते। दुर्बलानां दरिद्राणामियं चिन्ता तूचितैव। अतो बलातिशयसंपादनं विना नान्य उपायः समाजस्वास्थ्यस्य रक्षणायेति निःसंदिग्धं। तत्साधनाभावात्तथा तद्विरोधित्वाच्च तत्त्वज्ञानस्य नास्त्युपयोगः। प्रत्युतालस्यवर्धकत्वाद्धेयतैव। तथाहि। ये खलु तत्त्ववित्त्वेन प्रसिद्धास्ते सदैवात्मानमुदासीनान् दर्शयन्तः समाजव्यापारे उदासते। केवलं वाङ्मात्रेण सर्वं मिथ्या वदन्तोऽपि आहारविहारादिकं सर्वमनुतिष्ठन्त्येव। अत्यल्पमिदमुक्तं। वस्तुतस्तु गृहस्थानामपेक्षयाऽमीषामेव वैषयिकसौख्यलालसाऽऽधिक्येन दृश्यते। भारते वर्षे तेषु तेषु स्थानेषु वर्तमानास्तेषां साधुब्रुवाणां सौधास्तथा तेषु वर्तमानानि भोगसाधनानि वीक्ष्य साधारणो जनो विस्मयमूढचेताः सत्यमेव विविधसौख्यदायी तत्त्वज्ञानोपदेशमार्गः समीचीन इति मन्यते। तस्मादाहारादिकस्य कर्मकलापस्य सर्वजनसाधारण्यात्तत्त्वज्ञानिमानिनामपि संसारकार्यं समाजसेवादिकमावश्यकं। तदकृत्वा केवलं यथेच्छं भुञ्जानाः सालसाः समाजस्य भारभूता इति अवश्यं बहिष्काराहाः। प्राय एते तत्त्वज्ञानोपदेशमिषेण बुद्धिहीनान् मंदमतीन् वा विमोहयन्तस्तैः संपादितं वा तत्पूर्वजैरर्जितं वा धनभूम्यादिकं स्वाधीनं कुर्वन्तः समाजं व्याकुलयन्ति। अतो न तत्त्वज्ञानं नाम किंचित्, नापि तेन संसारस्य कोऽप्युपयोग इति सुनिश्चितं। अत्रोच्यते। सर्वेऽप्येते आक्षेपास्तत्त्वज्ञानस्य स्वरूपाज्ञानप्रयुक्ता इति। तथाहि। समाजस्वास्थ्यस्य कारणं समाजघटकीभूतानां जनानां शान्तिप्रियत्वं न्यायमार्गेण वर्तने बद्धादरत्वमिति हालिकोऽपि जानाति। तत्रापि प्रथमं परमावश्यकं। तत्र समाजसौख्यकारणीभूतशान्तिस्वरूपस्य निरूपणात् पूर्वं तत्त्वज्ञानस्य स्वरूपं निरूपणीयं। येन तत् सहसैव ज्ञातं भवेत्। तत्र तत्त्वज्ञानं नाम न कश्चित् पदार्थविशेषः किंतु सत्यज्ञानं।

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



अबाधितं ज्ञानमिति यावत् । तत्र घटपटादिविषयकं यज्ज्ञानं, यच्च स्त्रीपुत्रगृहादिविषयकं ज्ञानं तदबाधितं वा बाधितं वेति प्रथमं विचारयामः । मानवो घटपटादीन् समग्रान् विषयान् महता कष्टेन संपादयति । कष्टेन संपादितान् तान् रक्षति, तत्र प्रयोजनमिदमेव यदहमेभिः साधनीभूतैः सुखं संपादयिष्यामीति । तत्र घटस्य संपादयितुर्यज्ज्ञानं घटादयः सुखसाधनमिति तत्तत्त्वज्ञानं वा बाधितं ज्ञानं वा? यदि सत्यज्ञानं तदाऽपहृतेषु वा नष्टेषु वा कथमेतेभ्य एव दुःखं । ननु कदाचित् सुखसाधनानि कदाचित् दुःखसाधनानीति न सुखसाधनत्वज्ञानं बाधितं । यथा हि शीतकाले हिमं दुःखाकरोति, तदेव च पुनर्निदाघसमये सुखाकरोति । कालस्य भेदात् । तथा च यथा हिमं समये सुखसाधनं तथा समये दुःखसाधनमपीति सत्यज्ञानमेव । न तत्र कस्यापि एकस्य बाधः? उच्यते । कालेऽपि तस्मिन् प्रकृतौ विकृतौ सत्यां न सुखमिति कालस्याऽपि स एव दोषः । ननु प्रकृतिर्देहसंस्थानपर्यायाऽनुकूलाऽपेक्षितेति चेदायातं मार्गेण । संभावितस्याकीर्तिभीरोः प्रकृतावनुकूलायामपि द्वेषदर्शनात् कुतस्तस्या अपि सुखसाधनत्वं । ननु तत् किं सुखसाधनत्वं नास्त्येवेति वक्तुमध्यवसितोऽसि । तथा च सुखार्थं तत्साधनीभूतविषयाणां संपादने प्रवृत्तस्य सर्वस्य लोकस्य का गतिरिति चेदुच्यते । सुखसाधनत्वं विषयलालसाशून्यस्य सर्वावस्थातीतस्यात्मन एव । तथैव सुषुप्तावनुभवात् । सुषुप्तौ जाग्रद्विषयाणां तथा स्वाप्नविषयाणामभावः सुप्रसिद्धः । तत्र यदि सुखं विषयेभ्य एव जायते तदा कथं सुषुप्तौ सुखानुभवः? न च स सुखानुभवो विश्रान्तिमूलकः । बहुसमयं कार्यकारिभिरिन्द्रियादिभिर्विश्रान्तिरपेक्ष्यते । तत्र तानि विश्राम्यन्तीति सुखं भासत इति चेत् । सत्यं । परन्तु विश्रान्तिर्नाम परिश्रमाभावः । सोऽपि तत्र यदि वर्तते तदा कुतो न भासते । तस्मान्न स विश्रान्तिमूलकः सुखावभासः किंतु विषयाणां तथा तत्तद्विषयवासनानामभावमूलक इति अवश्यमंगीकरणीयं । एवं सति

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



विषयेभ्यः सुखमिति सिद्धान्तो बाधित इति न तादृशं ज्ञानं तत्त्वज्ञानं। किं च यान् विषयान् भवान् सुखसाधनत्वेन मन्यते ते नैकस्वरूपाः किंतु परिवर्तनशीलाः। न्यूनाधिक्येन सर्वत्र वर्तमानाः सर्वत्र दुःखातिरेकमेव सुवते। तथाहि। कश्चिद्राजपथे पादाभ्यां संचारी मोटारशकटेन गच्छन्तं सुखिनं मन्यते, परन्तु स मोटारशकटस्वामी अन्यस्यातिवेगशालि मोटारशकटं स्वीयं च मध्यमवेगं वीक्ष्य दुःखायमानो न मोटारशकट-गमनसौख्यमनुभवति। प्रत्युतान्यदीयमोटारशकटाक्रमणासामर्थ्यं मनसि कुर्वाणो दुःखायते। एवमपि सर्वत्र सर्वेषु विषयेषु ज्ञेयं। अस्त्यस्मिन्विषये गुरुपरंपराप्राप्ता कथा। आसीत्कश्चिद्धनाढ्यः सकलैश्वर्यशाली सुरूप-शीलभार्यः वलभीनगरे श्रेष्ठी। स च भगवन्तं पूजयितुं कंचन विप्रवरं स्वगृहे स्थापयामास। स च विप्रवरोऽतिहीनरूपभार्यः क्षणमपि गृह-सौख्यमलभमानः पूर्णं स्वस्वामिनः सौख्यं वीक्ष्य तत्कारणत्वेन तद्भार्यायाः सौन्दर्यमेव निरचिनोत्। निश्चित्य चैवं सुन्दर्या भार्याया लाभार्थं तपश्चरितुं समारेभे। तस्य तीव्रेण तपसा संतुष्टा भगवती तस्मै वरत्रयं विततार। स च विप्रः संतुष्टः प्रथमेन वरेण स्वभार्याया अलौकिकं सौन्दर्यं वव्रे। देवीवरबलेन सा तस्य विप्रस्य भार्या तदानीमेव दिव्य-सौन्दर्यशालिनी बभूव। तस्मिन्नेव समये तस्य देशस्य राजा पर्यटंस्तत्रैवा-गतस्तां विलोक्य मुग्धमतिरनुकूलां तां स्वरथे संस्थाप्य राजप्रासादमानयत्। अथ ब्राह्मण एनां वार्तां श्रुत्वा कुपितो द्वितीयेन वरेण तस्या वानरीत्व-मियेष। साऽपि महती वानरीभूता राजाज्ञया यथापूर्वं तस्यैव ब्राह्मणस्य गृहमानीय राजसेवकैर्मुक्ता। ब्राह्मणस्तु तस्याः सकाशादुपद्रवातिरेकं प्राप्योद्विग्नस्तृतीयेन वरेण स्वभार्यायाः याथापूर्व्यं ययाचे। साऽपि यथापूर्वं रूपं लेभे। वाचकाः! अनेन वरत्रयेण तथा तत्सम्पादनार्थं कृतेन तपस्यापरिश्रमेण को वा लाभस्तस्य विप्रस्याभूत्। न कोऽपीति स्पष्टमेव, तथैव विषयसौख्यलाभार्थं प्रयतमानानां विषयाणां न्यूनाधिक्येन द्वेषाति-

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



रेकदग्धमनसां दुःखं विहाय नान्यस्य कस्याऽपि लाभः। नन्वेतावता तत्त्वज्ञानस्य किमायातं। अस्तु विषयेभ्यो दुःखं। सन्तु च विषयाणां न्यूनाधिक्येन द्वेषस्योत्पत्त्यादयोऽनर्थाः, परन्तु तत्त्वज्ञानेन तादृशं विषय-दुःखं न्यूनीकर्तुं न पार्यते। तथा च तत्त्वज्ञानस्य क उपयोगः? यथा मत्स्यार्थिनः कंटका अपरिहार्याः, एवं विषयसौख्यलाभाय तत्संपादन-दुःखमपि अपरिहार्यमेव। उच्यते। तत्त्वज्ञानं हि विषयलालसादुःखं न्यूनीकर्तुमित्थमुपयोगि। तथाहि। सर्वं हि लौकिकं दुःखं विषयेषु सुखदत्त्वमतिमूलकलोभातिरेकजनितमिति सर्वेषां विदितमेव। यथा हि धनेन विषया लभ्यन्ते ततश्च सुखं, तथैव मानेनाऽपि सुखं जायते। यावद्धि धनमधिकं तावत् सुखमिति गणितशास्त्रसिद्धान्तवशीकृतचेतसो जना महता परिश्रमेण धनमर्जयन्ति। तस्मिन् धनार्जने दीनाः पीडिता भवन्ति। तेन दीनपीडनेन द्वेषः संजायते। संरूढमूले द्वेषे परस्परप्रहारैः परां काष्ठामारूढो दुःखस्य प्रवाहः। तथाहि। कश्चनेभ्यः पित्रार्जितं धनं व्ययीकृत्य वयनयंत्रशालां निर्माति। तत्र चैकेन सेवकेनानेकानि यंत्राणि प्रचाल्य प्रभूतानि वस्त्राण्युत्पाद्य तानि विक्रीय स बहुधनराशिं लभते। तस्मै सेवकाय स्वल्पं वेतनं वितरति। यत्र चासंख्यैस्तन्तुवा-यैरसंख्यानि वस्त्राणि वयनीयानि, तत्रैकेन तन्तुवायेन तेषां वयनेऽवशि-ष्टास्तन्तुवायाः कर्महीना इतस्ततः पर्यटन्तस्तस्मिन्यंत्रालये कर्मसक्तांस्त-न्तुवायान् द्विषन्ति, अधिकवेतनलाभार्थमुत्तेजयन्ति। तेऽपि स्वपरिश्रमेण स्वामिनो धनातिरेकं समुत्प्रेक्षमाणाः संहत्याऽधिकवेतनदानार्थं प्रार्थयन्ते। यंत्रालयस्वामी तु धनमदोन्मत्तस्तान् क्षुद्रान् मन्यमानोऽन्यतो दीनांस्तन्तु-वायानानीय स्वीयं कर्म समारभमाणस्तान् क्षुधाव्याकुलान् विदधाति। तेन क्रुद्धास्ते कलहायन्ते। तान् कलहायमानान् वीक्ष्य राजपुरुषास्तेषां कलहोपशमनाय नानायत्नान् साधून् वाऽसाधून् वा प्रयुंजते। तत्र यस्य पक्षस्य संतोषः स द्वितीयं विगर्हते। तेन स निभृतं द्विषन्नन्तर्गतकोपज्वालः

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


प्रतिकूलं समयं यापयन्ननुकूलं समयं प्रतीक्षते । तं च लब्ध्वा विजयिनं पराजयते । एवमनिशमिदं चक्रं विपरिवर्तते । तेन जगति दुःखमिति अनुभवः। तत्र यदि तत्त्वज्ञानेन धने सुखदत्वमतिं विहाय स वयनयंत्रालयस्वामी सर्वानपि सेवकानात्मवन्मन्यमानस्तेषां सुखाय यतेत नूनं कलह एव न स्यात्। नष्टे च कलहे कुतो दुःखमिति तत्त्वज्ञानस्य दुःखनाशकत्वं। नन्वियं विचारसरणिरापातमनोहारिणी कविकल्पनां नातिशेते । यदि स इभ्यस्तत्त्ववित्तदा प्रथमतो वयनयंत्रालयमेव न विरचयेत्। दूरे च धनागमवार्ता । स हि मन्येत किं धनेन मे। धनेन च सुखं यदि नास्ति तदा किमेतेन लब्धेन तल्लाभमूलकप्रयासेन च । तथा च मूलमेव नष्टं जीवनस्य दूरे च द्वेषस्य दूरीकरणं । तथा च न तत्त्वज्ञानेनाभिलषितसिद्धिरिति चेत्। भ्रान्तोऽसि। तत्त्वज्ञानं हि न जनं पाषाणवत् कर्तव्यमूढं विधत्ते किंतु विवेकशालिनं । यदि तत्त्वज्ञानं मानवं पाषाणवन्निश्चेष्टं कुर्यात्तदा तद्रोगत्वेन व्यवह्रियमाणं जनैः परिह्रीयेत। शास्त्रेषु च महता प्रयत्नेन तत् संपादनीयमिति न स्तूयेत । स्तूयते तु। तस्मान्न तत्त्वज्ञानं मानवं जडं तनोति, किंतु अज्ञानमपनयत्तस्य कर्तव्यबुद्धिं वर्धयति । तथाहि । स इभ्यो धनातिरेकलाभमदोन्मत्तः प्रथमतो यथेच्छं वर्तमानो यथेच्छविषयोपभोगक्षीणशक्तिर्दुःखराशिमग्न आसीत्, स एव तत्त्वज्ञानेनापनीतविषयसुखमतिः परोपकारलब्धसंतोषातिरेकः स्वीयमायुः सुखेन यापयति । स्वकर्मदाक्षिण्यं तेन च धनलाभं न निरुणद्धि तत्त्वज्ञानं, किंतु तस्य विषयोपभोगे दुरुपयोगं निराकृत्य सदुपयोगे तं योजयति । ननु यदि श्रेष्ठिनस्तेन धनेन न लाभस्तदा किमर्थं तस्य संपादनाय स चेष्टेत। उच्यते। प्राणिनो हि चेष्टाऽदृष्टानुसारिणी सदा प्रवर्तत एव । न हि कोऽपि क्षणमात्रमकर्मकृत्तिष्ठति। ‘जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्’ इति च गीतोक्तिः । समानायां प्रवृत्तौ तत्त्वज्ञानं धनोपयोगमिन्द्रियोपभोगपरत्वेन निराकृत्य परोपकारपरत्वेन विदधातीत्यस्ति विशेषः । ननु

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


तत्त्वज्ञानं परोपकारपरं मानवं विधत्त इति निष्कर्षः संप्राप्तः । अयं च तदा संभवेद्यदा येषामुपकारो विधेयस्ते यदि सत्याः स्युः । सर्वं जगन्मायाकल्पितं मिथ्येति तत्त्वज्ञानं कथं परोपकारविधायकमिति चेन्न। मिथ्याशब्दार्थं न जानाति भवान् । अयं मिथ्याशब्दो नासति शशशृंगे तथा सर्वप्रसिद्धे सत्यात्मनि निरूढः, किंतु सत्यसति जगति । अयं भावः। विचारेणासति प्रत्यक्षं दृश्यमाने जगति मिथ्याशब्दो रूढः । यथा ह्यात्मनः सत्त्वं तथा नास्य। विपरिणमनात् । नापि शशशृंगवदत्यंतासत्त्वं । दृश्यमानत्वात् । तथा च जगत इदं मिथ्यात्वं प्राप्तं । तत्र नाटके गृहीतशकुंतलावेषो नटो यथा शकुंतलाऽनटत् तथैव नटति, दुष्यन्तमाश्लिषति, तथैव नेत्रविलासादिकं करोति । नैव तदानीं मनसि मनागपि कुरुते–अहमस्मि अमुकशर्माऽमुकगोत्रोत्पन्नः पुरुष इति । एवं नटन्नपि प्रेक्षकैरभिनंद्यमानोऽपि स पुरुषो यथा न भ्रान्तः स्वपुरुषत्वे, एवमेव जगन्मिथ्येति मन्यमानोऽपि तत्त्ववित् व्यवहारकाले सर्वं व्यवहरन् परोपकारं विधातुं शक्नोत्येव । वस्तुतस्तु तत्त्वविदेव परोपकारं विधातुं शक्नोति नान्यो धर्मवित् वा नीतिपरायणो वा । स च स्वात्मानं परोपकारविषयेभ्यो दीनेभ्यो भिन्नं सत्यं च मन्वानो मनागपि स्वार्थलेशेन स्पृश्यत एव । अद्वैती तु परानपि स्वानेव मन्यमानो यथाऽज्ञः स्वसंतोषायानुपदिष्टोऽपि प्रवर्तते, एवं परेषां संतोषाय प्रवर्तत इति निश्चितमेव । तत्रांशतोऽपि स्वार्थस्यासंभवात् । अत एव सर्वाणि शास्त्राणि तत्त्वविदं स्तुवन्ति । वदन्ति सर्वथा तं प्रमाणयितुं । अत एव याज्ञवल्क्यस्मृतौ–

चत्वारो वेदधर्मज्ञाः पर्षत्त्रैविद्यमेव वा ।
सा ब्रूते यं स धर्मः स्यात् एको वाऽध्यात्मवित्तमः ।

इत्यनेन श्लोकेन तत्त्वविदो वाक्यं प्रमाणं धर्माचरण इत्युक्तं । उचितमपीदं। स्वार्थलेशस्यात्यन्तमभावात् । तस्मात्तत्त्वज्ञानं विषयेषु सुख-

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


दत्वमतिमपनयत्तन्मूलिकां सर्वानर्थकारणं परस्परद्वेषसंततिं शामयत् परं समाजस्य शान्तिमुपकरोतीति सर्वथा समाजे शान्तेः कारणं तत्त्वज्ञानमेव। तदेव शान्तिकामैरादरणीयं। न च तत्त्वविदः केवलं वाचैव संलपन्तः शरीरेण सर्वं व्यवहरन्तोऽलसाः समाजभारभूता इत्युक्तं साम्प्रतं। न ते तत्त्वविदः किंतु तत्त्वविदाभासाः। ये च जगति सन्मानलाभाय नटा इव तत्त्वविदाभासा नटन्ति, तेऽवश्यं समाजेन दण्डनीयाः। प्रायोऽस्मिन् संसारे नास्ति तादृशं किमपि वस्तु, यदसत्येन नाच्छादितं। सत्यमौक्तिकविभ्रमकारीणि कृत्रिमाणि मुक्ताफलानि दृश्यन्ते। तानि सत्यानि मन्वाना अज्ञा विप्रलभ्यन्ते। नैष अपराधोऽकृत्रिमस्य सत्यस्य मुक्ताफलस्य। सत्यासत्यनिर्णये तैः सावधानैर्भाव्यं। सत्यासत्यनिर्णयार्थं खलु तत्त्वज्ञानमपेक्ष्यते। ननु तत्त्वज्ञानलाभो गुरूपदेशादेव। तथा च च गुरुर्वा गुर्वाभासो वेति प्रथमं ज्ञानं कथं स्यादिति चेदुच्यते। यत् खलु स्वानुभवविरोधि तत्तत्त्वज्ञानमेव नेति तस्योपदेशको गुर्वाभासो ज्ञेयः। यथा नाटके नटन्तं वीक्ष्य 'अयं नटो वा सत्यो रामो वा' इति बालकोऽपि जानाति, तथैवायं सत्यमुपदिशति असत्यं वेति सर्व एव जानाति। न तत्र कस्यापि विभ्रम इत्यास्तां तावत्। तस्मात्तत्त्वविदाभासा वर्तन्त इति तत्त्वज्ञानमुपेक्षणीयमिति न संगच्छते वचनं। यत्तूक्तं-समाजे शान्तिः सर्वस्य सुखस्य कारणमिति तन्निर्विवादं। परं च तस्याः कारणं बलसंपादनमिति यदुक्तं तच्चारोग्यार्थमपथ्यसेवनमिवात्यन्तमसंगतं। तथाहि। प्रबलस्य दुर्जनस्य नाशाय दुर्बलेन सज्जनेन शस्त्रसामर्थ्यं संपादनीयमिति कथनमापातरमणीयं। दुर्जनो हि न प्राण्यन्तरं किंतु सोऽपि मानव एव। परन्तु स विषयलोभातिरेकेण जनान् पीडयन् दुर्जनः संवृत्तः। चौरो हि मानव एव। सोऽपि सुखदुःखादिसंवेदनां जानीते। किंबहुना। चौर्यं ह्यनुचितं कर्मेत्यपि स वेत्ति। येन भीतभीतः स रात्रौ धनिकस्य गृहं प्रविशति न दिवा। दिवाऽपि निर्जनं

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



प्रविशति न तु जनाकीर्णं । केवलं धनलोभलुब्धमना निहतसदसद्वि-वेकबुद्धिस्तच्चौर्यात्मकं कुकर्म कुरुते । एतेन दुर्जनत्वस्य निराकरणं परमावश्यकमिति प्राप्तं । तच्च दुर्जनत्वं बुद्धिकृतं कथं खलु शस्त्रबलेन प्रतिविधातुं शक्यं । शस्त्रबलभीतश्चौरस्तावदेव तूष्णीं तिष्ठेत् यावत् स कारागारे बद्धः। मुक्तश्च पुनरपि कुकर्म अनुष्ठास्यत्येव । तस्माच्छस्त्रबल-भीत्या दुर्जनस्य कुकर्मनिवृत्तिर्न शाश्वतिकी । सायन्सेत्यादीनि लौकिकविषयोपभोगप्रधानध्येयानि शास्त्राणि प्रतिदिनं नूतनाविष्कारान् कुर्वन्ति । तत् कथं मानवो न विषयलोभाकृष्टः स्यात् । लोभातिरेके च परस्परसंघर्षेऽपरिहार्ये शान्तेर्नामाऽपि कुतः । अतो विषयलालसा यथा न वर्धेत तथैव प्रयतनीयं । तथात्वे एव शान्तेः संभवः । नन्वेवं जीवनमपि दुर्लभं स्यात्। विषयेच्छां विना जीवितस्याशक्यत्वादिति चेत् । उच्यते । केवलं शरीरसंरक्षणार्थं तथा समाजस्य सौख्यवर्धनार्थं यावदपेक्ष्यते तावत्तु क्रियत एव । न ततस्तावान् संघर्षः । संभूतोऽपि स स्वल्पेनैव कालेन शाम्यति । यथा हि खलु विषं विना कानिचित् औषधानि न संभवन्तीति विषमावश्यकमिति तन्न साधारणं भवितुमर्हति। तथा सति मृत्युरेव सर्वेषां भवेत् । तथैव विषयं विना जीवनं न संभवतीति न विषयलालसा वर्धनीया । तथा सति दुःखातिरेक एव । अस्ति अस्मिन्विषय एका कथा। एकदा भगवान् बुद्धदेवः शिष्यैः समं किमपि विचारयन् संतोषेण सालवने स्थितः । तत्र च तस्य शिष्यीभूतः कश्चन क्षत्रियकुलजो नर-पतिस्तं वन्दितुमाययौ । स च नरपतिः स्वक्षत्रियजात्युचितानि अने-कानि शस्त्राणि बिभ्रत् सविनयं प्रणनाम । तं च शुभेनाशीर्वचनेनानु-गृह्य विविधशस्त्रसंभारदर्शनसंजातकुतूहलो भगवान् बुद्धदेवः क्रमेण तस्य तस्य शस्त्रस्योपयोगं पप्रच्छ । सोऽपि यथोचितं सर्वमाचख्यौ । ततो बुद्धदेवो जगाद । नृपते ! तव शरीरेण संलग्नस्य शत्रोर्निराकरण-पराणि शस्त्राणि वर्तन्ते । परन्तु कश्चन रिपुविशेषस्तव शरीरमाविश्यत्तदा

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.


तस्य निराकरणाय समर्थं शस्त्रमस्ति वा ? इति । स तु भगवतो बुद्धस्याशयमविदित्वा तूष्णीं तस्थौ ।। अथ दयालुर्बुद्धदेवः प्रत्युवाच। राजन् ! येऽद्यपर्यन्तं ते शत्रवः संजातास्ते त्वन्मनोवर्तमानकामक्रोधादिमूलका न वा ? यद्येतत्सत्यं तदा तानेव स्वशरीरे वर्तमानान् रिपून् नाशय। तेषु नष्टेषु किमित्येते प्रादुर्भवेयुः । न मेऽस्ति कोऽपि शत्रुः । एताननाशयित्वा बाह्यानां शत्रूणां निर्दलनार्थं वृथा शस्त्रसंभारं वहसीति। राजाऽपि भगवतो वाक्यं सत्यं मन्वानः शमरतिरभूत् । वाचकाः ! शान्तेः साधनं शस्त्रास्त्रसंपादनं वा विषयलालसातिरेकत्यागो वेति भवद्भिरेव विचारणीयं । वस्तुतः शस्त्रास्त्रबलसंपादनं शान्तेः साधनमित्यभ्युपेतेऽपि तदशक्यमिति तत् खपुष्परूपमेव। तथाहि। प्रतिदिनं शास्त्रविज्ञानकुशला नूतनानामधिकविध्वंसकारिणां शस्त्राणां वाऽस्त्राणां वाऽऽविष्कारं कुर्वन्ति । तत्र यदि नूतनानामाविष्कृतानां शस्त्राणां संग्रहो न क्रियते तदा येन स कृतः स विजयेत। अस्य पराजयस्य भीत्या नूतनशस्त्रास्त्रसंग्रहः कार्य एव। तथा च प्राचीनः परित्यक्तव्यः । नूतनानां संग्रहार्थं धनव्ययो नूतनः कार्यः, प्राचीनस्य कृते कृतो व्यर्थ एव । एवमहर्निशं चक्रे परिवर्तमाने प्रजानामुपरि करभारोऽसह्यो भवेत् । शस्त्रास्त्रसंपादनदुर्बला दासीकृता अपि जना मनसि दुःखाकुलास्तस्य नाशं वाञ्छन्त्येव। एवमन्ततस्तथा बाह्यतोऽसन्तुष्टजनद्रोहाकुलं बलाढ्यमपि तद्राज्यं नश्यत्येव। तस्मादनुपायः खलु शस्त्रास्त्रबलसंपादनं समाजशान्तेः संपादनस्येति विद्वांसो विदांकुर्वन्तु । ननु तत्किं शस्त्रास्त्रसंपादनं निरर्थकमेव, केवलेन तत्त्वोपदेशेन शान्तिः स्यादिति मन्यसे ? उच्यते । तत्त्वोपदेशेन तथा तदनुकूलाचारेण न्यूनीकृतासु विषयवासनासु साधारणरीत्या जीवनं यापयत्सु नागरिकेषु शान्तेरस्ति संभावना । तत्र ये खलु प्राचीनकुकर्मसंस्कारवशाः समाजकंटका जनाः प्रादुर्भवन्ति तेषां दण्डनाय खलु शस्त्रबलसंपादनमावश्यकं । यथा क्षेत्रे हलेन समाकृष्टे तत्र गोधूमबीजानां

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.



वापे ये कंटकवृक्षांकुराः प्रादुर्भवन्ति तेषामुद्धाराय खनित्रादिकमावश्यकं । न तु खनित्रमेव प्राधान्येन संपादनीयं, तथैव समाजे तत्त्वोपदेशेन तदनुकूलाचारधर्माचारैः सुवृत्ते कृते ये खलु तादृशा दुष्टा जनाः प्रादुर्भवेयुस्तेभ्यः समाजस्य तथा तच्छान्तेः संरक्षणाय कारागारमिव शस्त्रबलमपेक्ष्यते । इदमत्र हृदयं । शस्त्रबलं न प्राधान्येन शान्तेः कारणं किंतु गौणत्वेन । प्राधान्येन तु तत्त्वोपदेशस्तदनुकूलाचारधर्माचरणमेव शान्तेः कारणमिति । ननु धर्मोपदेशेन तत्त्वोपदेशोऽन्यथासिद्धो भवेन्न वा ? मैवं ? धर्मस्याचाररूपस्य तत्त्वनिष्ठत्वेन प्रामाण्यात् । अयमाचारः साधुः अयमाचारोऽसाधुरित्यत्र प्रमाणं त्वात्मैव । तस्मात्तत्त्वोपदेशो बीजमिव फलप्राप्तेः शान्तेः प्रधानं कारणं । तदनुकूलधर्माचरणं च बीजस्य पुष्ट्यै गोमयादिवत् सहायं । कण्टकशाखावरणवत्तु शस्त्रास्त्रसंपादनमिति विद्वांसः कृतमतयो विदांकुर्वन्त्वित्यलमतिविस्तरेण । तस्मादस्ति तत्त्वज्ञानस्य महानुपयोग इति तदेव संपादनीयं तदेवोपदेष्टव्यमिति ज्ञेयम् ।

द्रव्याधिक्यात्सुखाधिक्यमिति येषां दृढा मतिः ॥
तैर्विधेयं रहः स्थित्वा स्वीयावस्थानिरीक्षणं ॥१॥
तत्रापि सैव बुद्धिश्चेत् प्रमा जाता तदा बुधाः ॥
तत्त्वज्ञानविचाराय दीयतां च तिलांजलिः ॥२॥
यदि नैवं तदाऽगत्या शरणीकृत्य सद्गुरुं ॥
तत्त्वज्ञानस्य लाभाय यत्यतां स्थिरया धिया ॥३॥
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिं ॥
इति गीतावचः स्मृत्वा यतनीयं पुनः पुनः ॥४॥

---

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तीश्च भास्यन्ते येन सक्षिणा ।
प्रमाणीकृत्य तं देवं ग्रंथोऽयं रचितो मया ॥१॥ इति शम् ।

॥ समाप्त ॥

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

# मोक्षमंदिरस्य

## दर्शनसोपानक्रमप्रदर्शकं पत्रम् ।

| सोपानम् | नाम | अवस्था | दर्शनविचारप्रवर्तकानुभवः | सिद्धान्तः |
|---|---|---|---|---|
| १ | चार्वाकः | जाग्रत् | अहं सर्वं घटपटादिकं जानामीति ज्ञातृज्ञेयज्ञानरूपा त्रिपुटी प्रत्यक्षसिद्धा । | अनेन प्रत्यक्षेण ज्ञाताऽहं देहः, घटपटादिकं ज्ञेयं, अनयोः संबंधकारि ज्ञानं ममत्वस्योत्पादकं । स्वतंत्रे पुत्रे ममत्वमारोप्य दुःखी भवामि । विचारेण ममत्वस्य त्यागे दुःखरहितो भविष्यामीति । १ |
| २ | ( बौद्ध ) ( २–५ ) वैभाषिकः | स्वप्नः | स्वप्नेऽपि त्रिपुटीयमनुभवसिद्धा । | स्वप्नेऽस्यास्त्रिपुट्या अनुभवेन देहस्य ज्ञातृत्वं न, किंतु अहमाख्यायाश्चित्तवृत्तेरेव । सा च प्रतिक्षणपरिणामिनीति क्षणिकरूपा । तथा च ज्ञेयमपि क्षणिकमेव । तत्र स्थिरत्वविज्ञानाद्दुःखं । क्षणिकत्वविज्ञानात्तस्य नाश इति । २ |
| ३ | सौत्रान्तिकः | ,, | स्वप्नजाग्रत्स्था त्रिपुटी दुःखरूपा सुखरूपा वा । | न केवलं क्षणिकत्वमेव ज्ञातृज्ञेययोः, किंतु दुःखरूपत्वमपि । अतो दुःखक्षणिकविज्ञानरूपो ज्ञाता । सुखरूपत्वज्ञानाद्दुःखं । दुःखविज्ञानस्वरूपज्ञानाद्दुःखनाश इति । ३ |

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| ४ | योगाचारः | ,, | उभयत्रिपुट्यां यः प्रकाशो ज्ञाननामा भासते स कस्य ? ज्ञातुर्वा ज्ञेयस्य वा । | स प्रकाशो न विषयस्य नापि ज्ञातुस्तयोरसत्त्वात् । किंतु ज्ञानमेव ज्ञातृज्ञेयरूपेण भासते । अत एव वृत्तीनां न दुःखरूपत्वं वा सुखरूपत्वं वा । केवलं स्वयंप्रकाशा वृत्तय एव क्षणिकाः सन्ति । ईदृशस्वयंप्रकाशत्वज्ञानाद्दुःखनाशः । ४ |
| ५ | माध्यमिकः | सुषुप्तिः | यदि जाग्रत्स्वप्नावस्थात्रिपुट्योः सत्त्वं तदा सुषुप्तावुभयत्रिपुट्या ज्ञानं कुतो न । 'न किंचिदवेदिषम्' इत्यनुभवः । | यतो हि सुषुप्तावुभयत्रिपुटी न भासतेऽतः सा नास्ति । किं तर्हि शून्यं । तथा चानुभवः 'न किंचिदवेदिषम्' इति ज्ञानसामान्याभावात्मकः । इदमेव तत्त्वं । अस्य ज्ञानाद्दुःखनाशः । ५ |
| ६ | जैनः | जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यवस्थात्रयं | सुषुप्तावपि त्रिपुट्या भानमस्ति । तथा चानुभवः 'सुखमहमस्वाप्सम्' । | जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिरूपावस्थात्रयस्य ज्ञाता सुखदुःखभाक् नानाविधशरीरपरिमाणो परिणामी आत्माऽहंपदवाच्यो ज्ञाता । अस्य यथार्थज्ञानाद्दुःखनाशः । ६ |
| ७ | नैयायिकः | ,, | एतासु तिसृषु अवस्थासु यदि भिन्नोऽहं तदा कुतो मेऽतीतस्य स्मरणं । | यदा जन्ममरणभेदेनाहं भिन्नः, यदा चावस्थाभेदेन सुखदुःखभोगी अहं भिन्नस्तदा कुतो मे स्मरणं । नान्यदृष्टमन्यः स्मरति । तस्मादहं इच्छाद्वेषसुखदुःखादिगुणवानखण्डः सन्नेवात्मा । एतत्स्वरूपज्ञानात् दुःखनाशः । ७ |
| ८ | वैशेषिकः | ,, | यद्यपीच्छाद्वेषसुखदुःखज्ञानादयो धर्मा मयि भान्ति तथापि किं मे वास्तविकं स्वरूपं ? | यद्यपीच्छादयो मयि भान्ति तथापि वास्तविकं मम रूपं ज्ञानमेव । तथा च तेन रूपेणैवात्मज्ञानं दुःखनाशकमिति बोध्यं । ८ |

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

| सोपानम् | नाम | अवस्था | दर्शनविचारप्रवर्तकानुभवः | सिद्धान्तः |
|---|---|---|---|---|
| ९ | सांख्यः | जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यवस्थात्रयं | तदिदं ज्ञानं किं विषयेन्द्रियसंयोगजन्यं किंवा ज्ञातृस्वरूपं नित्यं। चक्षुषा घटं पश्यामि केवलोऽहमिति चोभयथापि अनुभवः। | यच्च ज्ञानमात्मनि धर्मत्वेन भासते तद्वृत्तिपदेन कथ्यते। तच्च विषयेन्द्रियसंयोगजन्यं। तत्र ज्ञानपदस्य गौणः प्रयोगः। मुख्यस्तु ज्ञातुः स्वरूपे। तच्च नित्यं सर्वस्य पदार्थजातस्य भासकमपि विशेषतस्तु सुषुप्त्यवभासकं। तत्साक्षात्कारात् दुःखनाशः। ९ |
| १० | योगी | ” | यद्येवमहमखण्डस्वयंप्रकाशस्तदा कुतो मे शोकः? अज्ञानादिति चेत्। कथमस्याज्ञानस्य नाशः। स्वरूपसाक्षात्कारादिति चेत् कः खलु मामीदृशं स्वरूपं समुपदेक्ष्यति? | यः खलु सृष्टेः कर्ता जगदीश्वरः स एव शरणीकृतस्त्वां तादृशं स्वरूपं समुपदेक्ष्यति। स परमदयालुः सदैव शरणागतान् दुःखसागरात्समुद्धरति। तत उपदेशं प्राप्य स्वस्वरूपसाक्षात्कारे दुःखनाशः। १० |
| ११ | पूर्वमीमांसकः | ” | तादृशेश्वरसत्त्वे प्रमाणं वेद एव। स त्वपौरुषेयः। तथा च कुत ईश्वरः, कुतश्च मे उपदेशः, कुतश्च दुःखनिस्तारः। | ईश्वराभावेऽपि अपौरुषेयाद्वेदादेव कर्तव्यं ज्ञात्वा तव दुःखनाशः स्यात्। अदृष्टं खलु दुःखस्य कारणं। तच्च सकामकर्मजन्यं। निष्कामकर्माचरणाददृष्टाभावे दुःखनाशः स्यादेवेति। ११ |
| १२ | उ.मीमांसकाः श्रीमध्वाचार्याः | ” | ननु वेदोऽचेतनः। स कथं मामात्मस्वरूपं समुपदिशेत्। किं च अचेतनं चेतनाधिष्ठितं कार्यं करोतीति सर्वत्रानुभवः। किं च योऽयं प्रेमातिशय आत्मनि भासते स किंमूलकः? | उपनिषन्नामनि ज्ञानकाण्डाख्ये वेदभागेऽस्ति जगतः कर्ता नित्यशुद्धबुद्धस्वरूप इति प्रतिपादितं। स एव शरणीकृतस्ते वास्तविकं सच्चिदानन्दात्मकं स्वरूपं दर्शयिष्यति। ततो दुःखनाशः। |

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

| | | | |
|---|---|---|---|
| श्रारामानुजाचार्याः | ,, | स ईश्वरः किं लौकिकगुरुवन्मत्तोऽत्यन्तं भिन्न उताभिन्नः । | स भिन्नोऽभिन्नोऽपि । यथा वनमिति वृक्षा इति व्यपदेशस्तथैव तस्येश्वरस्य त्वं शरीरमिति अभेदोऽपि संभवति । |
| श्रीवल्लभाचार्याः | ,, | ननु अहं कथं चेतनः तस्य शरीरं । अचेतनं लोके शरीरमुच्यते । | स ईश्वरोऽस्य जगत उपादानं । सुवर्णमिवालंकाराणां । त्वमपि तस्यैव परिणामभूतः । अतः स एव सततमनेन रूपेणाराधितः दुःखं नाशयेत् । |
| श्रीशंकराचार्याः | ,, | ननु परिणामोऽपि जडः । यच्च विपरिणम्यते तदपि जडं । तथा सति कुत उपदेशलाभः । | एतासु तिसृषु अवस्थासु या भिन्ना भिन्ना त्रिपुटी भासते सा न सती । व्यभिचारात् । किंतु यः प्रकाशः स एव सन् । अव्यभिचारात् । तथा च सति स्वयंप्रकाशेऽखण्ड एव प्रेमातिशय इति त्वमेव सच्चिदानन्दात्मकोऽसि । नास्ति ते दुःखस्य संभावनाऽपि । अत एव न त उपदेशस्यावश्यकता । परन्तु यदि असतोऽज्ञानादात्मानं दुःखिनं मन्यसे तदा शान्तेन मनसा भूयो भूयोऽन्वयव्यतिरेकाभ्यामुपरिनिर्दिष्टं सच्चिदानन्दात्मकं स्वस्वरूपं विचारय । गुरुं च शरणीकुरु । तत एव ते दुःखानि नामशेषाणि भविष्यन्तीति मंगलं । १२ |

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi

In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation Delhi.

Padma Shri Rama Kant Shukla Collection at Deva Vani Parishad, Uttam Nagar New Delhi